भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में पत्र-पत्रकारों का योगदान

(Contribution of Newspaper and Journalists in Indian Freedom Movement)

HICKY's
BENGAL GAZETTE;
OR THE ORIGINAL
Calcutta General Advertiser.

हरिजन सेवक

About That Letter
Young India
A Weekly Journal
Edited by M. K. Gandhi
Vol. XII Ahmedabad: Thursday, March 6, 1930 No. 10
Penal Sections of the Salt Act

अमित तिवारी

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में पत्र-पत्रकारों का योगदान

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में पत्र-पत्रकारों का योगदान

(Contribution of Newspaper and Journalists in Indian Freedom Movement)

अमित तिवारी

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-6388-0

प्रथम संस्करण : 2022

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

जेम्स ऑगस्टन हिक्की ने 29 जनवरी, 1780 में पहला भारतीय समाचार पत्र बंगाल गजट कलकत्ता से अंग्रजी में निकाला। इसका आदर्श वाक्य था–सभी के लिये खुला फिर भी किसी से प्रभावित नहीं। अपने निर्भीक आचरण और विवेक पर अड़े रहने के कारण हिक्की को इस्ट इंडिया कंपनी का कोपभाजन बनना पड़ा। हेस्टिंगस सरकार की शासन शैली की कटु आलोचना का पुरस्कार हिक्की को जेल यातना के रूप में मिली। हिक्की ने अपना उद्देश्य ही घोषित किया था–अपने मन और आत्मा की स्वतंत्रता के लिये अपने शरीर को बंधन में डालने में मुझे मजा आता है। समाचार पत्र की शुरूआत विद्रोह की घोषणा से हुई। हिक्की भारत के प्रथम पत्रकार थे जिन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता के लिये ब्रिटिश सरकार से संघर्ष किया।

उत्तरी अमेरिका निवासी विलियम हुमानी ने हिक्की की परंपरा को समृद्ध किया। 1765 में प्रकाशित बंगाल जनरल जो सरकार समर्थक था, 1791 में हुमानी के संपादक बन जाने के बाद सरकार की आलोचना करने लगा। हुमानी की आक्रामक मुद्रा से आतंकित होकर सरकार ने उसे भारत से निष्कासित कर दिया। जेम्स बंकिघम ने 2 अक्टूबर 1818 को कलकत्ता से अंग्रजी का कैलकटा जनरल प्रकाशित किया। जो सरकारी नीतियों का निर्भीक आलोचक था। पंडित अंबिका प्रसाद ने लिखा कि इस पत्र की स्वतंत्रता व उदारता पहले किसी पत्र में नहीं देखी गयी। कैलकटा जनरल उस समय के एंग्लोइंडियन पत्रों को प्रचार-प्रसार में पीछे छोड़ दिया था। एक रूपये मूल्य के इस अखबार का दो वर्ष में सदस्य संख्या एक हजार से अधिक हो गयी थी।

जेम्स बंकिघम को प्रेस की स्वतंत्रता का प्रतीक माना जाता था। सन् 1823 में उन्हें देश निकाला दे दिया गया। हालांकि इंगलैंड जाकर उन्होंने ओरियंटल हेराल्ड निकाला जिसमें वह भारतीय समस्याओं और कंपनी के हाथों में भारत का शासन बनाये रखने के खिलाफ लगातार अभियान चलाता रहा।

1961 के इंडियन कांउसिल एक्ट के बाद समाज के उपरी तबकों में उभरी राजनीतिक चेतना से भारतीय व गैर-भारतीय दोनों भाषा के पत्रों की संख्या बढ़ी। 1861 में बंबई में टाइम्स ऑफ इंडिया की 1865 में इलाहाबाद में पायनियर 1868 में मद्रास मेल की 1875 में कलकत्ता स्टेटसमैन की और 1876 में लाहौर में सिविल ऐंड मिलटरी गजट की स्थापना हुई। ये सभी अंग्रेजी दैनिक ब्रिटिश शासनकाल में जारी रहे।

टाइम्स ऑफ इंडिया ने प्राय: ब्रिटिश सरकार की नीतियों का समर्थन किया। पायनियर ने भूस्वामी और महाजनी तत्त्वों का पक्ष तो मद्रास मेल ने यूरोपीय वाणिज्य समुदाय का पक्षधर था। स्टेटसमैन ने सरकार और भारतीय राष्ट्रवादियों दोनों का ही आलोचना की थी। सिविल एण्ड मिलिटरी गजट ब्रिटिश दाकियानूसी विचारों का पत्र था। स्टेटसमैन टाइम्स ऑफ इंडिया सिविल एण्ड मिलिटरी गजट पायनियर और मद्रास मेल जैसे प्रसिद्ध पत्र अंग्रेजी सरकार और शासन की नीतियों एवं कार्यक्रम का समर्थन करते थे।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास**	**1**
	समाचार पत्र का इतिहास	2
	बीसवीं सदी व वर्तमान परिप्रेक्ष्य	5
	भारत में समाचार पत्रों का इतिहास	7
	प्रथम साप्ताहिक अखबार	9
	समाचार पत्र अधिनियम	12
	समाचार-पत्रों का विकास	14
	राजा राममोहन राय	19
2.	**ब्रिटिशकालीन साहित्यिक पत्रकारिता**	**27**
	साहित्यिक पत्रकारिता के नए आयाम	45
3.	**भारतेन्दु हरिश्चन्द्र**	**51**
	जीवन परिचय	51
	हिंदी पत्रकारिता का दूसरा युग	52
	निबंध संग्रह	56
	साहित्यिक सेवाएँ	57
	प्रगतिशील लेखक	58
	सभी विधाओं में लेखन	58
	साहित्य में योगदान	59

4. बाल गंगाधर जांभेकर **60**
शुरूआती जीवन 60
पत्रकारिता 61
सामाजिक कार्य 61
5. प्रताप नारायण मिश्र **63**
सरस्वती, जून-1935, सं.-देवीदत्त शुक्ल, श्रीनाथ सिंह 63
जीवनी 71
रचनाएँ 73
6. बाबूराव विष्णु पराड़कर **76**
पत्रकारिता के प्रेरणा स्रोत 82
पत्रकार जीवन 82
हिंदी की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा 84
7. गणेश शंकर विद्यार्थी **87**
जीवन परिचय 88
8. भीमराव अंबेडकर **94**
जीवन परिचय 100
छुआछूत के विरुद्ध संघर्ष 103
मीडिया के प्रति डॉ. अंबेडकर का नजरिया 105
लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका और अंबेडकर 106
9. बाल गंगाधर तिलक **112**
जीवन परिचय 112
शिक्षा 113
सार्वजनिक सेवा 113
विद्यालय की स्थापना 114
प्लेग की बीमारी 114
इंडियन होमरूल लीग की स्थापना 118
स्मरणोत्सव आंदोलन 119
राजद्रोह का मुकदमा 123
एस्टन की वकालत 130
तिलक का दृष्टिकोण 134

10. सत्यदेव विद्यालंकार **138**
राष्ट्रवादी पत्रकार 138
11. श्री कृष्णदत्त पालीवाल **140**
परिचय 140
पत्रकारिता 140
12. शिशिर कुमार घोष **142**
परिचय 142
निडर पत्रकार 142
सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्ति 143
13. शिवराम महादेव परांजपे **144**
परिचय 144
जन-जागरण 144
संपूर्ण स्वतंत्रता के समर्थक 145
प्रभावपूर्ण लेखनी 145
14. लाला जगत नारायण **146**
जीवन परिचय 146
स्वतंत्रता संग्राम में भाग 147
15. रामानन्द चौटर्जी **149**
परिचय 149
सम्पादन कार्य 149
प्रधानाचार्य का पद 150
16. रामहरख सिंह सहगल **151**
परिचय 151
योगदान 151
17. अमरनाथ विद्यालंकार **153**
परिचय 153
विभिन्न गतिविधियाँ 153
18. मेहता लज्जाराम शर्मा **155**
परिचय 155
पत्रकारिता 155

19. नरसिंह चिन्तामन केलकर **157**
परिचय 157
पत्रकारिता 157
मराठा साहित्यकार 158
20. दत्तात्रेय विष्णु आप्टे **159**
21. सखाराम गणेश देउसकर **161**
परिचय 161
शिक्षा 161
लेखन तथा सम्पादन कार्य 162
22. श्री नारायण चतुर्वेदी **165**
जन्म एवं शिक्षा 165
हिंदी का प्रचार 166
लेखन कार्य 166
23. काका कालेलकर **168**
जीवन-परिचय 168
साहित्यिक परिचय 169
काका कालेलकर की कृतियाँ 169
24. इन्द्र विद्या वाचस्पति **171**
जीवनी 171
कृतियाँ 172
राजनीति तथा पत्रकारिता 172
25. सी. वाई. चिन्तामणि **174**
परिचय 174
उदारवाद के समर्थक 174
मालवीय जी से मतभेद 175
26. गंगा प्रसाद वर्मा **176**
जीवन परिचय 176
राजनीतिक परिचय 176
लखनऊ के निर्माता 177
27. महाशय राजपाल **178**
जीवन परिचय 178

मांस भक्षण पर शास्त्रार्थ 181
कर्मचारियों से व्यवहार 181
हिन्दी प्रकाशन का शुभारम्भ 183
राजपाल एण्ड सन्स की स्थापना 184
अच्छे लेखक एवं कुशल सम्पादक 186
28. मोहम्मद अली जौहर 190
जन्म 190
शिक्षा 190
व्यावसायिक शुरुआत 191
29. देशबंधु गुप्त 193
जन्म 193
शिक्षा 193
आन्दोलन तथा गिरफ्तारी 194
लालाजी का साथ 194
संगठन क्षमता 194
30. राजा लक्ष्मण सिंह 196
जीवनी 196
31. राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' 198
जीवन परिचय 198
हिन्दी और देवनागरी का समर्थन 199
32. शिव प्रसाद गुप्त 202
जीवनी 202
राष्ट्रवादी 203
महत्त्वपूर्ण कार्य 203
33. मुंशी दया नारायण निगम 204
जन्म तथा शिक्षा 204
सम्पादक व समाज सुधारक 204
प्रेमचन्द से मित्रता 205
34. शिवपूजन सहाय 207
जन्म और शिक्षा 207
सेवाएँ 207

लेखन कार्य 208
विशिष्ट स्थान 208
35. हरिशंकर शर्मा 212
जन्म 212
शिक्षा 212
व्यक्तित्त्व 213
उच्च कोटि के पत्रकार 214
महापुरुषों के कथन 214
36. रामवृक्ष बेनीपुरी 217
जीवन परिचय 217
रचनाएँ 222
37. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 225
जीवन परिचय 225
प्रकाशित कृतियाँ 226
वर्ण्य विषय 227
भाषा 227
पत्रकारिता में योगदान 229
38. ब्रिटिशकालीन समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएँ 238
सरस्वती 238
सम्पादक 239
बनारस अखबार 241
भारतमित्र 244
लीडर 244
हिन्दोस्थान 246
कवि वचन सुधा 246

1

पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास

इक्कीसवीं सदी की हमारी दुनिया आज इतनी छोटी हो गई है कि इसे ग्लोबल विलेज कहा जाने लगा है। दुनिया को इतना छोटा बनाने का काम जिस अकेली चीज ने सबसे ज्यादा किया है उसे कहते हैं, सूचना तकनीक। क्षण भर में इंटरनेट के जरिए, फोन के जरिए आप दुनिया के किसी दूसरे कोने में बैठे व्यक्ति से बातें कर सकते हैं। उस तक समाचार पहुँचा सकते हैं, उसका समाचार जान सकते हैं। लेकिन संचार क्रान्ति की इस मंजिल तक पहुँचने की एक लम्बी यात्रा रही है। प्रागएतिहासिक काल में भित्ति चित्रों के जरिए अपने मन की बात को संप्रेषित करने की कला को ही संचार इतिहास की प्रारम्भिक कड़ी माना जा सकता है। चित्रों के बाद शब्दों और फिर लिपि के जरिए चलते-चलते जब मनुष्य की विकास यात्रा मुद्रण कला तक पहुँची तो संचार के इतिहास में एक बड़ी घटना घटी, यह घटना थी समाचार पत्रों का जन्म।

मुद्रण का इतिहास 175 ईस्वी के आस-पास तक जाता है। चीन में इस काल के ठप्पे से मुद्रित कुछ पुरावशेष मिले हैं। लेकिन धातु के टाइप अक्षरों का विकास होते-होते लगभग साढ़े बारह सौ वर्ष और बीत गए। जर्मनी में धातु के टाइप के जरिए छपाई की शुरूआत 1450 ईस्वी में हुई। 1466 में फ्रांस, 1477 में इंग्लैण्ड और 1495 में पुर्तगाल तक यह कला पहुँच चुकी थी। भारत में मुद्रण कला पुर्तगाल के ईसाई धर्म प्रचारकों के साथ 1550 में गोवा पहुँची। लेकिन इसका विधिवत विकास 1778 में कोलकाता में पहला प्रेस खुलने के बाद ही होना शुरू हुआ। चीन से 'पेकिंग गजट' और नीदरलैंड के 'न्यूजाइटुंग' (1526) को समाचार पत्रों का प्रारम्भिक रूप माना जा सकता है।

समाचार पत्र का इतिहास

आज लगभग 500 वर्ष की लम्बी यात्रा में पत्रकारिता ने अनेक ऊँचाईयाँ छू ली है, अनेक कीर्तिमान स्थापित किए हैं और मनुष्यता, स्वतंत्रता और विश्व बंधुत्व की दिशा में मानव समाज को सर्वदा सकारात्मक दिशा पर चलते रहने की प्रेरणा प्रदान की है।

ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी में रोम में राज्य की ओर से संवाद लेखक नियुक्त किये जाने के प्रमाण इतिहास में मिलते हैं। इन संवाद लेखकों का काम राजधानी से दूर के नगरों में जाकर हाथ से लिख कर राज्य के आदेशों का प्रचार करना होता था। ईसा पूर्व 60 सन् में जब जूलियस सीजर ने रोम की गद्दी संभाली तो उसने 'एक्टा डिउर्ना' (cta Diurna) नामक दैनिक समाचार बुलेटिन शुरू करवाया। इसमें मूल रूप से राज्य की घोषणाएं होती थी और इन्हें प्रतिदिन रोम शहर में सार्वजनिक स्थानों पर चिपकाया जाता था।

यूरोप में 16वीं सदी में मेलों व उत्सवों के दौरान दुकानों में बिकने वाली चीजों में ऐसे हस्तलिखित पर्चे भी होते थे जिनमें युद्ध की खबरें, दुर्घटनाएं, राज दरबारों के किस्से आदि लिखे होते थे। भारत में मुगल साम्राज्य में भी राज्य की ओर से वाकयानवीस अथवा कैफियतनवीस नियुक्त किये जाते थे। वाकयानवीस राज्य के अलग-अलग स्थानों से विशेष घटनाएं संग्रहीत कर धावकों और हरकारों के जरिए बादशाह तक भेजते थे।

समाचार पत्रों का प्रारम्भिक रूप 1526 में प्रकाशित नीदरलैण्ड के 'न्यूजाइटुंग' में मिलता है। 1615 में जर्मनी से 'फ्रैंकफुर्टेक जर्नल', 1631 में फ्रांस से 'गजट द फ्रांस', 1667 में बैल्जियम से 'गजट वैन गट', 1666 में इंग्लैण्ड से 'लन्दन गजट' और 1690 में अमेरिका से 'पब्लिक ऑकरेंसज' को प्रारम्भिक समाचार पत्र माना जाता है।

प्रारम्भिक दैनिक समाचार पत्रों में 11 मार्च 1702 को लन्दन से प्रकाशित 'डेली करेंट' का नाम प्रमुख है। इसी के बाद राबिन्सन क्रूसो के लेखक डेनियल डीफो ने कुछ साथियों के साथ मिलकर 1719 में 'डेली पोस्ट' नामक एक दैनिक निकाला, मगर ब्रिटिश पत्रकारिता की वास्तविक शुरूआत 1769 में हुई। जब लन्दन से ही 'मार्निंग क्रानिकल' नामक अखबार का प्रकाशन शुरू हुआ। एक जनवरी 1785 से लन्दन से ही 'डेली यूनिवर्सल रजिस्टर' नामक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ। 1788 में इसका नाम बदल कर 'टाइम्स' कर दिया गया।

'टाइम्स' को ब्रिटिश पत्रकारिता के इतिहास का एक मजबूत स्तम्भ माना जाता है। डेली टेलीग्राफ, स्काट्स मैन भी प्रारम्भिक ब्रिटिश समाचार पत्रों में शुमार किये जाते हैं।

1690 में जब अमेरिका से 4 पृष्ठों का 'पब्लिक ऑकरेसेज' नामक अखबार निकाला गया तो यह ब्रिटेन के बाहर प्रकाशित होने वाला पहला समाचार पत्र था। हालांकि 1622 में लन्दन से प्रकाशित 'न्यूज वीक' पत्रिका की प्रतियां समुद्री पोतों के जरिए अमेरिका तक पहले से ही भेजी जाने लगी थीं। 1704 में अमेरिका के बोस्टन शहर से 'न्यूज लेटर' और 1719 से 'वीकली मर्करी' का प्रकाशन शुरू हुआ। अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के दौर में वहां समाचार पत्रों का बहुत तेजी से विकास हुआ। 1775 के अमेरिका में 37 समाचार पत्र प्रकाशित होते थे जिनमें 23 स्वतंत्रता समर्थकों के पक्षधर थे। आज अमेरिका का समाचार पत्रों की छपाई और कमाई में विश्व में पहला स्थान हो गया है।

सितम्बर 1778 में कोलकाता के कौंसिल हॉल व अन्य सार्वजनिक स्थानों पर एक हस्तलिखित पर्चा चिपका देखा गया था। इसमें वोल्टाज नामक एक व्यक्ति ने आम जनता से कहा था कि उसके पास ब्रिटिश राज से जुड़ी ऐसी लिखित जानकारियां हैं, जिसमें हर नागरिक की दिलचस्पी हो सकती है। पर्चो में वोल्टाज ने यह भी लिखा था कि चूंकि कोलकाता में छपाई की समुचित व्यवस्था नहीं है इसलिए वोल्टाज ने ऐसी सामग्री पढ़ने या नकल करने के इच्छुक लोगों को अपने घर पर आमंत्रित भी किया था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों में इस पर्चो को लेकर बड़ी खलबली मच गई और उन्होंने वोल्टाज को बंगाल छोड़ कर यूरोप वापस लौट जाने का हुक्म सुना दिया। इस घटना को भारत में आधुनिक पत्रकारिता की शुरूआती घटना माना जाता है। इसके 12 वर्ष बाद 29 जनवरी 1780 को कलकत्ता से पहले भारतीय अखबार 'कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर' या हिकीज गजट का प्रकाशन हुआ। इसके मालिक सम्पादक जेम्स ऑगस्टस हिक्की को भी ब्रिटिश अधिकारियों ने भ्रष्टाचार के खिलाफ लिखने की बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। पहले पोस्टआफिस के जरिये भेजे जाने वाले उसके अखबारों पर रोक लगा दी गई और फिर उस पर मुकदमा चला कर एक साल की कैद व 200 रूपये का जुर्माना ठोंक दिया गया। हिक्की का अखबार बन्द कर दिया गया, हिक्की को भारत में स्वतंत्र पत्रकारिता को जन्म देने वाला भी कहा जाता है क्योंकि उसने कंपनी के

अधिकारियों से भ्रष्टाचार के खिलाफ लिखने में कोई समझौता नहीं किया बल्कि उसने लिखा, 'अपने मन और आत्मा की स्वतंत्रता के लिए अपने शरीर को बन्धन में डालने में मुझे आनन्द आता है।'

भारतीय भाषाओं का पहला अखबार 'दिग्दर्शन' भी कोलकाता से ही 1818 में बांग्ला में प्रकाशित हुआ था। आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता के उद्‌भव का श्रेय भी कोलकाता को ही जाता है। 'उदन्त मार्तण्ड' नामक इस साप्ताहिक पत्र को 30 मई 1826 को कोलकाता के कालू टोला मोहल्ले से युगल किशोर शुक्ल ने निकाला था। आर्थिक संकट के कारण यह पत्र 4 दिसम्बर 1827 को बन्द हो गया। इसके अंतिम अंक में संपादक युगल किशोर ने लिखा–

''आज दिवस लो उग चुक्यो, मार्तण्ड उदन्त।
अस्ताचल को जात है, दिनकर दिन अब अन्त॥''

कोलकाता से ही 10 मई 1829 को 'हिन्दू हेराल्ड' का प्रकाशन शुरू हुआ। हिन्दी, बांग्ला, फारसी व अंग्रेजी में प्रकाशित इस अखबार के संपादक राजा राममोहन राय थे, देवनागिरी लिपि में प्रकाशित हिन्दी का पहला अखबार जनवरी 1845 में बनारस से शुरू हुआ। 'बनारस अखबार' नामक इस पत्र के संपादक राजा शिव प्रसाद सितारेहिन्द थे।

1850 में बनारस से 'सुधाकर' निकला और 1852 में आगरा से मुंशी सदासुख लाल ने 'बुद्धि प्रकाश' अखबार निकाला। 1854 में कोलकाता से ही हिन्दी का पहला दैनिक समाचार 'सुधावर्षण' निकला। 8 फरवरी 1857 को अजीमुल्ला खां ने दिल्ली से 'पयामे आजादी' नामक अखबार निकाला। इसे भारतीय स्वाधीनता संग्राम का पहला अखबार माना जाता है।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद के दौर में 1867 में बनारस से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कवि वचन सुधा,' 1877 में बालकृष्ण भट्ट ने इलाहाबाद से 'हिन्दी प्रदीप' का प्रकाशन शुरू किया। 1878 में कोलकाता से 'भारत मित्र' 1885 में कालाकांकर से 'हिन्दोस्थान' आदि महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। इस दौर के प्रायः सभी पत्रों में जातीयता व स्वाभिमान की भावना साफ-साफ देखी जा समती है। छपाई की सीमाओं, वितरण की समस्याओं और संसाधनों की कमी के बावजूद इन सभी का भारतीय पत्रकारिता के विकास में उल्लेखनीय योगदान है।

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में प्रायः सभी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में ब्रिटिश राज के प्रति कोई बड़ा विरोध या आक्रोश नहीं दिखता। हालांकि भारत

में पत्रकारिता का आरम्भ ही कम्पनी के अधिकारियों के भ्रष्टाचार के खिलाफ मुहिम के साथ हुआ था। इस दौर के सभी पत्रों ने सामाजिक सुधारों की दिशा में काफी योगदान दिया। राजा राम मोहन राय जैसे समाज सुधारक इस दौर के सम्पादकों में शामिल थे। लेकिन इस सदी के दूसरे भाग में आजादी के पहले संग्राम की छाप भारतीय पत्रकारिता पर साफ देखी जा सकती है।

बीसवीं सदी व वर्तमान परिप्रेक्ष्य

सन् 1900 का वर्ष हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण वर्ष है। इस वर्ष हिन्दी की युगान्तरकारी पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन शुरू हुआ था। इसके प्रकाशक चिन्तामणि घोष थे। सरस्वती का उद्देश्य हिन्दी भाषी क्षेत्र में सांस्कृतिक जागरण करना था। राष्ट्रीय जागरण तो उसका अंग था ही। सरस्वती के प्रकाशन के बाद देश की आजादी तक हिन्दी का समाचार जगत विविध प्रकार की पत्र पत्रिकाओं से समृद्ध होता चला गया था। 1925 के बाद गाँधी युग में हिन्दी पत्रकारिता ने चौमुखी विकास किया। इसी युग में राष्ट्रीय पत्रकारिता से अलग हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता ने भी अपना स्वतंत्र रूप विकसित कर लिया। इस युग ने हिन्दी को गणेश शंकर विद्यार्थी और बाबूराव विष्णु पराडकर जैसे पत्रकार भी दिए और स्वराज्य, अभ्युदय व प्रताप जैसे पत्र भी।

1907 में पण्डित मदन मोहन मालवीय ने अभ्युदय के जरिए उत्तर प्रदेश में जन जागरण का जर्बदस्त कार्य शुरू किया। शहीद भगत सिंह की फांसी के बाद प्रकाशित अभ्युदय के फांसी अंक ने तो हलचल ही मचा दी थी। 13 अप्रैल 1907 से नागपुर से निकला हिन्द केसरी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था कि इसमें लोकमान्य तिलक के प्रसिद्ध अखबार 'केसरी' के लेखों का हिन्दी अनुवाद होता था और इसमें वही सामग्री होती थी जो एक सप्ताह पूर्व केसरी में छप चुकी होती थी। हजारों की संख्या में छपने वाले इस अखबार ने अल्पकाल में ही उत्तर भारत के युवाओं में खासी पैठ बना ली थी। इलाहाबाद के 'स्वराज' की तरह 1910 में कानपुर से निकला 'प्रताप' भी एक ओजस्वी अखबार था। गणेश शंकर विद्यार्थी के इस अखबार का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में एक क्रान्तिकारी कदम था। विद्यार्थी भारतीय पत्रकारिता में एक अमर हस्ताक्षर माने जाते हैं। 1917 में कोलकाता से शुरू हुए विश्वमित्र को इस वजह से महत्तवपूर्ण माना जाता है क्योंकि वह हिन्दी का पहला दैनिक था जो कि एक

साथ 5 शहरों से प्रकाशित होता था। 5 सितम्बर 1920 को बनारस से शुरू 'आज' को भी इसी कड़ी का अंग माना जा सकता है।

भारत में पत्रकारिता के शुरुआती दिनों से ही उस पर सरकार की ओर से कड़े प्रतिबन्ध लगाए गए थे। कई दमनकारी कानून अखबारों और पत्रकारों का मुंह बन्द करने को समय-समय पर बनाए गए थे। 1878 का वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट भी इसी तरह का एक कानून था। लेकिन इसका सभी तत्कालीन समाचार पत्रों ने एकजुट विरोध किया था और यह बेहद दमनकारी कानून भी भारतीय पत्रकारिता के उफान को रोक नहीं पाया। 12 मई 1883 को कलकत्ता के 'उचित वक्ता' यह टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है। ''देशीय सम्पादको। सावधान!! कड़ी जेल का नाम सुनकर कर्तव्यविमूढ़ मत हो जाना। यदि धर्म की रक्षा करते हुए यदि गवर्नमेंट को सत्परामर्श देते हुए जेल जाना पड़े तो क्या चिन्ता है।''

इस वैचारिक परम्परा की छाया में विकसित बीसवीं सदी के आरम्भिक दशकों की हिन्दी पत्रकारिता में धर्म और समाज सुधार के स्वर कुछ घीमे पड़ गए और जातीय चेतना ने साफ-साफ राष्ट्रीय चेतना का रूप ले लिया। देश की आजादी इस दौर की पत्रकारिता का एक मात्र ध्येय हो गया था। उत्तराखण्ड की पत्रकारिता में भी हम इन स्वरों को साफ देख सकते हैं। 'शक्ति' और 'गढ़वाली' तो इसके प्रतीक ही हैं। इस दौर की पत्रकारिता पर गांधी की विचार धारा की छाप भी साफ देखी जा सकती है।

हालाँकि आजादी के बाद से धीरे-धीरे पत्रकारिता मिशन के बजाय व्यवसाय बनती चली गई लेकिन यह भी सत्य है कि आजादी के बाद ही भारत में पत्रकारिता के विकास का एक नया अध्याय भी आरम्भ हुआ। आजादी के वक्त जहां देश भर में प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्रों की संख्या 500 से कुछ ही अधिक थी, आज यह बढ़ कर 10 हजार से अधिक हो चुकी है। पत्र-पत्रिकाओं के कुल पाठकों की संख्या करोड़ों में पहुँच चुकी है। 1975 में आपातकाल में लागू कड़ी सेंसरशिप के दौर को छोड़ दिया जाए तो राज्य के दमन के दुश्चक्र से भी पत्रकारिता सामान्यतः मुक्त ही रही है। आपातकाल में लगभग 40 प्रिंटिंग प्रेस सील कर दी गई थीं। कुछ अखबारों का प्रकाशन तो हमेशा के लिए बन्द ही हो गया। लेखन व पत्रकारिता से जुड़े 7000 से अधिक लोग गिरफ्तार कर लिए गए थे।

इस काले अध्याय के बाद 1984 में बिहार में बिहार प्रेस बिल, और 1987 में राजीव गांधी द्वारा एंटी डिफेमेशन बिल लाकर मीडिया पर अंकुश

लगाने की कोशिशें हुई मगर पत्रकार बिरादरी के तीव्र विरोध के कारण ये दोनों ही बिल वापस ले लिए गए।

80 के दशक में कम्प्यूटर टैक्नोलॉजी का इस्तेमाल मीडिया के क्षेत्र में व्यापक रूप से शुरू हो जाने के बाद तो भारतीय मीडिया का चेहरा ही बदल गया। इसके क्रान्तिकारी परिणाम हुए और आज देश का मीडिया विश्व भर में अपनी अलग पहचान बना चुका है। पत्र-पत्रिकाओं के युग से आगे बढ़ कर वह टीवी और इंटरनेट समाचारों के युग में पहुँच चुका है और उत्तरोत्तर प्रगति ही करता जा रहा है।

भारत में समाचार पत्रों का इतिहास

भारत में समाचार पत्रों का इतिहास यूरोपीय लोगों के भारत में प्रवेश के साथ ही प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम भारत में प्रिंटिग प्रेस लाने का श्रेय पुर्तगालियों को दिया जाता है। 1557 ई. में गोवा के कुछ पादरी लोगों ने भारत की पहली पुस्तक छापी। 1684 ई. में अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी भारत की पहली पुस्तक की छपाई की थी। 1684 ई. में ही कम्पनी ने भारत में प्रथम प्रिंटिग प्रेस (मुद्रणालय) की स्थापना की।

भारत में पत्रकारिता का आरंभ

छापे की पहली मशीन भारत में 1674 में पहुँचायी गयी थी। मगर भारत का पहला अखबार इसके 100 साल बाद, 1776 में प्रकाशित हुआ। इसका प्रकाशक ईस्ट इंडिया कंपनी का भूतपूर्व अधिकारी विलेम बॉल्ट्स था। यह अखबार स्वभावत: अंग्रेजी भाषा में निकलता था तथा कंपनी व सरकार के समाचार फैलाता था।

सबसे पहला अखबार, जिसमें विचार स्वतंत्र रूप से व्यक्त किये गये, वह 1780 में जेम्स ओगस्टस हिक्की का अखबार 'बंगाल गजेट' था। अखबार में दो पन्ने थे और इस में ईस्ट इंडिया कंपनी के वरिष्ठ अधिकारियों की व्यक्तिगत जीवन पर लेख छपते थे। जब हिक्की ने अपने अखबार में गवर्नर की पत्नी का आक्षेप किया तो उसे 4 महीने के लिये जेल भेजा गया और 500 रुपये का जुर्माना लगा दिया गया। लेकिन हिक्की शासकों की आलोचना करने से परहेज नहीं किया और जब उसने गवर्नर और सर्वोच्च न्यायाधीश की आलोचना की

तो उस पर 5000 रुपये का जुर्माना लगाया गया और एक साल के लिये जेल में डाला गया। इस तरह उसका अखबार भी बंद हो गया।

1790 के बाद भारत में अंग्रेजी भाषा की और कुछ अखबार स्थापित हुए जो अधिक्तर शासन के मुख्यपत्र थे, पर भारत में प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्र थोड़े-थोड़े दिनों तक ही जीवित रह सके।

1819 में भारतीय भाषा में पहला समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ था। वह बंगाली भाषा का पत्र–'संवाद कौमुदी' (बुद्धि का चांद) था। उसके प्रकाशक राजा राममोहन राय थे।

1822 में गुजराती भाषा का साप्ताहिक 'मुंबईना समाचार' प्रकाशित होने लगा, जो दस वर्ष बाद दैनिक हो गया और गुजराती के प्रमुख दैनिक के रूप में आज तक विद्यमान है। भारतीय भाषा का यह सबसे पुराना समाचार-पत्र है।

1826 में 'उदंत मार्तंड' नाम से हिंदी के प्रथम समाचार-पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह साप्ताहिक पत्र 1827 तक चला और पैसे की कमी के कारण बंद हो गया।

1830 में राममोहन राय ने बड़ा हिंदी साप्ताहिक 'बंगदूत' का प्रकाशन शुरू किया। वैसे यह बहुभाषीय पत्र था, जो अंग्रेजी, बंगला, हिंदी और फारसी में निकलता था। यह कोलकाता से निकलता था जो अहिंदी क्षेत्र था। इससे पता चलता है कि राममोहन राय हिंदी को कितना महत्त्व देते थे।

1833 में भारत में 20 समाचार-पत्र थे, 1850 में 28 हो गए और 1953 में 35 हो गये। इस तरह अखबारों की संख्या तो बढ़ी, पर नाम-मात्र को ही बढ़ी। बहुत से पत्र जल्द ही बंद हो गये। उनकी जगह नये निकले। प्रायः समाचार-पत्र कई महीनों से लेकर दो-तीन साल तक जीवित रहे।

उस समय भारतीय समाचार-पत्रों की समस्याएं समान थीं। वे नया ज्ञान अपने पाठकों को देना चाहते थे और उसके साथ समाज-सुधार की भावना भी थी। सामाजिक सुधारों को लेकर नये और पुराने विचार वालों में अंतर भी होते थे। इसके कारण नये-नये पत्र निकले। उनके सामने यह समस्या भी थी कि अपने पाठकों को किस भाषा में समाचार और विचार दें। समस्या थी–भाषा शुद्ध हो या सबके लिये सुलभ हो? 1846 में राजा शिव प्रसाद ने हिंदी पत्र 'बनारस अखबार' का प्रकाशन शुरू किया। राजा शिव प्रसाद शुद्ध हिंदी का प्रचार करते थे और अपने पत्र के पृष्ठों पर उन लोगों की कड़ी आलोचना की जो बोल-चाल की हिंदुस्तानी के पक्ष में थे। लेकिन उसी समय के हिंदी लेखक

भारतेंदु हरिशचंद्र ने ऐसी रचनाएं रचीं जिनकी भाषा समृद्ध भी थी और सरल भी। इस तरह उन्होंने आधुनिक हिंदी की नींव रखी और हिंदी के भविष्य के बारे में हो रहे विवाद को समाप्त कर दिया। 1868 में भरतेंदु हरिशचंद्र ने साहित्यिक पत्रिका 'कविवचन सुधा' निकालना प्रारंभ किया। 1854 में हिंदी का पहला दैनिक 'समाचार सुधा वर्षण' निकला।

प्रथम समाचार पत्र

भारत में पहला समाचार पत्र कम्पनी के एक असंतुष्ट सेवक 'विलियम वोल्ट्स' ने 1766 ई. में निकालने का प्रयास किया, लेकिन अपने इस कार्य में वह असफल रहा। इसके बाद भारत में प्रथम समाचार पत्र निकालने का श्रेय 'जेम्स ऑगस्टस हिक्की' को मिला। उसने 1780 ई. में 'बंगाल गजट' का प्रकाशन किया, किन्तु इसमें कम्पनी सरकार की आलोचना की गई थी, जिस कारण उसका प्रेस जब्त कर लिया गया।

इस दौरान कुछ अन्य अंग्रेजी अखबारों का प्रकाशन भी हुआ, जैसे- बंगाल में 'कलकत्ता कैरियर', 'एशियाटिक मिरर', 'ओरियंटल स्टारश्य मद्रास में 'मद्रास कैरियर', 'मद्रास गजट', बम्बई में 'हेराल्ड', 'बांबे गजट' आदि। 1818 ई. में ब्रिटिश व्यापारी 'जेम्स सिल्क बकिंघम' ने 'कलकत्ता जनरल' का सम्पादन किया। बकिंघम ही वह पहला प्रकाशक था, जिसने प्रेस को जनता के प्रतिबिम्ब के स्वरूप में प्रस्तुत किया। प्रेस का आधुनिक रूप जेम्स सिल्क बकिंघम का ही दिया हुआ है। हिक्की तथा बकिंघम का पत्रकारिता के इतिहास में महत्पूर्ण स्थान है। इन दोनों ने तटस्थ पत्रकारिता एवं स्वतंत्र लेखन का उदाहरण प्रस्तुत कर पत्रकारों को पत्रकारिता की ओर आकर्षित किया।

प्रथम साप्ताहिक अखबार

पहला भारतीय अंग्रेजी समाचार पत्र 1816 ई. में कलकत्ता में गंगाधर भट्टाचार्य द्वारा 'बंगाल गजट' नाम से निकाला गया। यह साप्ताहिक समाचार पत्र था। 1818 ई. में मार्शमैन के नेतृत्व में बंगाली भाषा में 'दिग्दर्शन' मासिक पत्र प्रकाशित हुआ, लेकिन यह पत्र अल्पकालिक सिद्ध हुआ। इसी समय मार्शमैन के संपादन में एक और साप्ताहिक समाचार पत्र 'समाचार दर्पण' प्रकाशित किया गया। 1821 ई. में बंगाली भाषा में साप्ताहिक समाचार पत्र 'संवाद कौमुदी' का प्रकाशन हुआ। इस समाचार पत्र का प्रबन्ध राजा राममोहन

राय के हाथों में था। राजा राममोहन राय ने सामाजिक तथा धार्मिक विचारों के विरोधस्वरूप 'समाचार चंद्रिका' का मार्च, 1822 ई. में प्रकाशन किया। इसके अतिरिक्त राय ने अप्रैल, 1822 में फारसी भाषा में 'मिरातुल' अखबार एवं अंग्रेजी भाषा में 'ब्राह्मनिकल मैंगजीन' का प्रकाशन किया।

अंग्रेजों द्वारा सम्पादित समाचार पत्र

समाचार पत्र	स्थान	वर्ष
टाइम्स ऑफ इंडिया	बम्बई	1861 ई.
स्टेट्समैन	कलकत्ता	1878 ई.
इंग्लिश मैन	कलकत्ता	–
फ्रेण्ड ऑफ इंडिया	कलकत्ता	–
मद्रास मेल	मद्रास	1868 ई.
पायनियर	इलाहाबाद	1876 ई.
सिविल एण्ड मिलिटरी गजट	लाहौर	–

प्रतिबन्ध

समाचार पत्र पर लगने वाले प्रतिबंध के अंतर्गत 1799 ई. में लॉर्ड वेलेजली द्वारा पत्रों का 'पत्रेक्षण अधिनियम' और जॉन एडम्स द्वारा 1823 ई. में 'अनुज्ञप्ति नियम' लागू किये गये। एडम्स द्वारा समाचार पत्रों पर लगे प्रतिबन्ध के कारण राजा राममोहन राय का मिरातुल अखबार बन्द हो गया। 1830 ई. में राजा राममोहन राय, द्वारकानाथ टैगोर एवं प्रसन्न कुमार टैगोर के प्रयासों से बंगाली भाषा में 'बंगदूत' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। बम्बई से 1831 ई. में गुजराती भाषा में 'जामे जमशेद' तथा 1851 ई. में 'रास्त गोफ्तार' एवं 'अखबारे सौदागार' का प्रकाशन हुआ।

लॉर्ड विलियम बैंटिक प्रथम गवर्नर-जनरल था, जिसने प्रेस की स्वतंत्रता के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया। कार्यवाहक गर्वनर-जनरल चार्ल्स मेटकॉफ ने 1823 ई. के प्रतिबन्ध को हटाकर समाचार पत्रों को मुक्ति दिलवाई। यही कारण है कि उसे 'समाचार पत्रों का मुक्तिदाता' भी कहा जाता है। लॉर्ड मैकाले ने भी प्रेस की स्वतंत्रता का समर्थन किया। 1857-1858 के विद्रोह के बाद भारत में समाचार पत्रों को भाषाई आधार के बजाय प्रजातीय आधार पर विभाजित किया गया। अंग्रेजी समाचार पत्रों एवं भारतीय समाचार पत्रों के

दृष्टिकोण में अंतर होता था। जहाँ अंग्रेजी समाचार पत्रों को भारतीय समाचार पत्रों की अपेक्षा ढेर सारी सुविधाएं उपलब्ध थीं, वही भारतीय समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध लगा था।

सभी समाचार पत्रों में 'इंग्लिश मैन' सर्वाधिक रूढ़िवादी एवं प्रतिक्रियावादी था। 'पायनियर' सरकार का पूर्ण समर्थक समाचार-पत्र था, जबकि 'स्टेट्समैन' कुछ तटस्थ दृष्टिकोण रखता था।

पंजीकरण अधीनियम

1857 ई. में हुए विद्रोह के परिणामस्वरूप सरकार ने 1857 ई. का 'लाईसेंसिग एक्ट' लागू कर दिया। इस एक्ट के आधार पर बिना सरकारी लाइसेंस के छापाखाना स्थापित करने एवं उसके प्रयोग करने पर रोक लगा दी गई। यह रोक मात्र एक वर्ष तक लागू रही।

1867 ई. के 'पंजीकरण अधिनियम' का उद्देश्य था, छापाखानों को नियमित करना। अब हर मुद्रित पुस्तक एवं समाचार पत्र के लिए यह आवश्यक कर दिया कि वे उस पर मुद्रक, प्रकाशक एवं मुद्रण स्थान का नाम लिखें। पुस्तक के छपने के बाद एक प्रति नि:शुल्क स्थानीय सरकार को देनी होती थी। वहाबी विद्रोह से जुड़े लोगों द्वारा सरकार विरोधी लेख लिखने के कारण सरकार ने 'भारतीय दण्ड संहिता' की धारा 124 में 124-क जोड़ कर ऐसे लोगों के लिए आजीवन निर्वासन, अल्प निर्वासन व जुर्माने की व्यवस्था की।

विभिन्न समाचार पत्र अधिनियम

अधिनियम	वर्ष	व्यक्ति
समाचार पत्रों का पत्रेक्षण अधिनियम	1799 ई.	लॉर्ड वेलेजली
अनुज्ञप्ति नियम	1823 ई.	जॉन एडम्स
अनुज्ञप्ति अधिनियम	1857 ई.	लॉर्ड केनिंग
पंजीकरण अधिनियम	1867ई.	जॉन लॉरेंस
देशी भाषा समाचार पत्र अधिनियम	1878 ई.	लॉर्ड लिंटन
समाचार पत्र अधिनियम	1908 ई.	लॉर्ड मिण्टो द्वितीय

भारतीय समाचार पत्र अधिनियम	1910 ई.	लॉर्ड मिण्टो द्वितीय
भारतीय समाचार पत्र (संकटकालीन शक्तियाँ) अधिनियम	1931 ई.	लॉर्ड इरविन

स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव

1857 ई. के संग्राम के बाद भारतीय समाचार पत्रों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई और अब वे अधिक मुखर होकर सरकार के आलोचक बन गये। इसी समय बड़े भयानक अकाल से लगभग 60 लाख लोग काल के ग्रास बन गये थे, वहीं दूसरी ओर जनवरी, 1877 में दिल्ली में हुए 'दिल्ली दरबार' पर अंग्रेज सरकार ने बहुत ज्यादा फिजूलखर्ची की। परिणामस्वरूप लॉर्ड लिंटन की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के खिलाफ भारतीय अखबारों ने आग उगलना शुरू कर दिया। लिंटन ने 1878 ई. में 'देशी भाषा समाचार पत्र अधिनियम' द्वारा भारतीय समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता नष्ट कर दी।

वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट

'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' तत्कालीन लोकप्रिय एवं महत्त्वपूर्ण राष्ट्रवादी समाचार पत्र 'सोम प्रकाश' को लक्ष्य बनाकर लाया गया था। दूसरे शब्दों में यह अधिनियम मात्र 'सोम प्रकाश' पर लागू हो सका। लिंटन के वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट से बचने के लिए 'अमृत बाजार पत्रिका' (समाचार पत्र), जो बंगला भाषा की थी, अंग्रेजी साप्ताहिक में परिवर्तित हो गयी। सोम प्रकाश, भारत मिहिर, ढाका प्रकाश, सहचर आदि के खिलाफ मुकदमें चलाये गये। इस अधिनियम के तहत समाचार पत्रों को न्यायालय में अपील का कोई अधिकार नहीं था। वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट को 'मुंह बन्द करने वाला अधिनियम' भी कहा गया है। इस घृणित अधिनियम को लॉर्ड रिपन ने 1882 ई. में रद्द कर दिया।

समाचार पत्र अधिनियम

लॉर्ड कर्जन द्वारा 'बंगाल विभाजन' के कारण देश में उत्पन्न अशान्ति तथा 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' में चरमपंथियों के बढ़ते प्रभाव के कारण अखबारों के द्वारा सरकार की आलोचना का अनुपात बढ़ने लगा। अतः सरकार ने इस स्थिति से निपटने के लिए 1908 ई. में समाचार पत्र अधिनियम लागू

किया। इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई कि जिस अखबार के लेख में हिंसा व हत्या को प्रेरणा मिलेगी, उसके छापाखाने व सम्पत्ति को जब्त कर लिया जायेगा। अधिनियम में दी गई नई व्यवस्था के अन्तर्गत 15 दिन के भीतर उच्च न्यायालय में अपील की सुविधा दी गई। इस अधिनियम द्वारा नौ समाचार पत्रों के विरुद्ध मुकदमें चलाये गये एवं सात के मुद्रणालय को जब्त करने का आदेश दिया गया।

1910 ई. के 'भारतीय समाचार पत्र अधिनियम' में यह व्यवस्था थी कि समाचार पत्र के प्रकाशक को कम से कम 500 रुपये और अधिक से अधिक 2000 रुपये पंजीकरण जमानत के रूप में स्थानीय सरकार को देना होगा, इसके बाद भी सरकार को पंजीकरण समाप्त करने एवं जमानत जब्त करने का अधिकार होगा तथा दोबारा पंजीकरण के लिए सरकार को 1000 रुपये से 10000 रुपये तक की जमानत लेने का अधिकार होगा। इसके बाद भी यदि समाचार पत्र सरकार की नजर में किसी आपत्तिजनक साम्रगी को प्रकाशित करता है तो सरकार के पास उसके पंजीकरण को समाप्त करने एवं अखबार की समस्त प्रतियाँ जब्त करने का अधिकार होगा। अधिनियम के शिकार समाचार पत्र दो महीने के अन्दर स्पेशल ट्रिब्यूनल के पास अपील कर सकते थे।

अन्य अधिनियम

प्रथम विश्व युद्ध के समय 'भारत सुरक्षा अधिनियम' पास कर राजनीतिक आंदोलन एवं स्वतन्त्र आलोचना पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। 1921 ई. सर तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षता में एक 'प्रेस इन्क्वायरी कमेटी' नियुक्त की गई। समिति के ही सुझावों पर 1908 और 1910 ई. के अधिनियमों को समाप्त किया गया। 1931 ई. में 'इंडियन प्रेस इमरजेंसी एक्ट' लागू हुआ। इस अधिनियम द्वारा 1910 ई. के प्रेस अधिनियम को पुनः लागू कर दिया गया। इस समय गांधी जी द्वारा चलाये गये सविनय अवज्ञा आंदोलन के प्रचार को दबाने के लिए इस अधिनियम को विस्तृत कर 'क्रिमिनल अमैंडमेंट एक्ट' अथवा 'आपराधिक संशोधित अधिनियम' लागू किया गया। मार्च, 1947 में भारत सरकार ने 'प्रेस इन्क्वायरी कमेटी' की स्थापना समाचार पत्रों से जुड़े हुए कानून की समीक्षा के लिए किया।

भारत में समाचार पत्रों एवं प्रेस के इतिहास के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ एक ओर लॉर्ड वेलेजली, लॉर्ड मिण्टो, लॉर्ड एडम्स, लॉर्ड

कैनिंग तथा लॉर्ड लिंटन जैसे प्रशासकों ने प्रेस की स्वतंत्रता का दमन किया, वहीं दूसरी ओर लॉर्ड बैंटिक, लॉर्ड हेस्टिंग्स, चार्ल्स मेटकॉफ, लॉर्ड मैकाले एवं लॉर्ड रिपन जैसे लोगों ने प्रेस की आजादी का समर्थन किया। 'हिन्दू पैट्रियाट' के सम्पादक 'क्रिस्टोदास पाल' को 'भारतीय पत्रकारिता का 'राजकुमार' कहा गया है।

समाचार-पत्रों का विकास

संचार के क्षेत्र में छपाई हेतु मुद्रण यंत्रों यानी प्रेस के आ जाने से विचारों के आदान-प्रदान एवं संप्रेषण तथा ज्ञानार्जन की प्रकिया न केवल कम खर्चीली हो गई, बल्कि उनकी पहुँच भी और व्यापक हो गयी। अंग्रेजी और देशी भाषा के समाचार-पत्रों में अनेक प्रतिबंधों के बावजूद तेजी से वृद्धि होने से औपनिवेशिक प्रशासन् के अत्याचारों के विरुद्ध सशक्त जनमत तैयार हुआ, जिसने राष्ट्रवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय समाचार-पत्रों का इतिहास यूरोपीय लोगों के आने के साथ ही आरंभ हुआ।

भारत में प्रिटिंग प्रेस की शुरुआत 16 वीं सदी में उस समय हुई जब गोवा के पुर्तगाली पादरियों ने सन् 1557 में एक पुस्तक छापी। ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपना पहला प्रिटिंग प्रेस सन् 1684 में बंबई में स्थापित किया। लगभग 100 वर्षों तक कंपनी के अधिकार वाले प्रदेशो में कोई समाचार-पत्र नहीं छपा क्योंकि कंपनी के कर्मचारी यह नहीं चाहते थे कि उनके अनैतिक, अवांछनीय तथा निजी व्यापार से जुड़े कारनामों की जानकारी ब्रिटेन पहुँचे। इसलिए भारत में पहला समाचार-पत्र निकालने का प्रयास कंपनी के असंतुष्ट कर्मचारियों ने ही किया था। सन् 1766 में कंपनी के असंतुष्ट कर्मचारी विलियम बोल्ट्स ने अपने द्वारा निकालने गए समाचार-पत्र में कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स की नीतियों के विरुद्ध लिखा, लेकिन, बोल्ट्स को शीघ्र ही इंग्लैंड भेज दिया गया।

कालांतर में भारत में स्वतंत्र तथा तटस्थ पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रथम प्रयास जेम्स आगस्टन हिक्की द्वारा सन् 1780 में किया गया। उसके द्वारा प्रकाशित प्रथम समाचार-पत्र का नाम 'बंगाल गजट' अथवा 'द कलकत्ता जरनल एडवरटाइजर' था। शीघ्र ही उसकी निष्पक्ष शासकीय आलोचनात्मक पत्रकारिता के कारण उसका मुद्रणालय जब्त कर लिया गया। सन् 1784 में कलकत्ता गजट,1785 में बंगाल जरनल तथा द ओरियंटल मैंगजीन ऑफ कलकत्ता अथवा द कलकत्ता एम्यूजमेंट, 1788 में मद्रास कुँरियर इत्यादि अनेक

समाचार-पत्र निकलने आरंभ हुए। जब कभी कोई समाचार-पत्र कंपनी के विरुद्ध कोई समाचार प्रकाशित करता तो कंपनी की सरकार कभी-कभी पूर्व -सेंसरशिप की नीति भी लागू कर देती थी और तथाकथित अपराधी संपादक को निर्वासन् की सजा सुना दिया करती थी।

गंगाधर भट्टाचार्य द्वारा सन् 1816 में प्रकाशित बंगाल गजट किसी भी भारतीय द्वारा हिन्दी में प्रकाशित पहला समाचार-पत्र 'उदन्त मार्तण्ड था, जिसका प्रकाशन सन् 1826 में कानपुर से जुगल किशोर ने किया। सन् 1818 में मार्शमैन द्वारा बांग्ला भाषा में 'दिग्दर्शन नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया गया। राजा राममोहन राय प्रथम भारतीय थे, जिन्हें राष्ट्रीय प्रेस की स्थापना का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने सन् 1821 में अपने साप्ताहिक पत्र 'संवाद कौमुदी' और सन् 1822 में फारसी पत्र 'मिरात-उल अखबार' का प्रकाशन कर भारत में प्रगतिशील राष्ट्रीय प्रवृति के समाचार-पत्रों का शुभारंभ किया। सन् 1851 में दादा भाई नौरोजी के संपादकत्व में बंबई से एक गुजराती समाचार-पत्र 'रफ्त गोफ्तार' का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसी समय 19 वीं शताब्दी के महान भारतीय पत्रकार हरिश्चंद्र मुखर्जी ने कलकत्ता से 'हिन्दू पैट्रियाट(Hindu Patriot) नामक पत्र का प्रकाशन किया। एक अन्य साप्ताहिक समाचार-पत्र 'चंद्रिका' हिन्दू समाज के रूढ़िवादी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता था।

भारतीय स्वामित्व वाले समाचार-पत्रों की संख्या और प्रभाव में 19 वीं शताब्दी के परवर्ती काल में तेजी से वृद्धि हुई। प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों में शिशिर कुमार घोष तथा मोतीलाल घोष द्वारा संपादित 'अमृत बाजार पत्रिका' तथा मद्रास से प्रकाशित 'हिन्दू' प्रभावशाली पत्र थे। देशी भाषाओं के प्रेस पर लगे प्रतिबंध से बचने के लिए अमृत बाजार पत्रिका तत्काल एक अंग्रेजी का समाचार-पत्र बन गयी। प्रख्यात समाज-सुधारक ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने सन् 1859 में बंगाली भाषा में 'सोम प्रकाश' का संपादन किया। यही पहला ऐसा समाचार-पत्र था जिसके विरुद्ध लिंटन का वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट लागू हुआ था। बाल गंगाधर तिलक ने बंबई से अंग्रेजी में 'मराठा' और मराठी में 'केसरी' का प्रकाशन किया। प्रारंभ में 'केसरी' का संपादन अगरकर तथा 'मराठा' का संपादन केलकर किया करते थे।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अंग्रेजी और भाषाई पत्रकारिता की भूमिका

जेम्स ऑगस्टन हिक्की ने 29 जनवरी 1780 में पहला भारतीय समाचार पत्र बंगाल गजट कलकत्ता से अंग्रजी में निकाला। इसका आदर्श वाक्य था-सभी के लिये खुला फिर भी किसी से प्रभावित नहीं।

अपने निर्भीक आचरण और विवेक पर अड़े रहने के कारण हिक्की को इस्ट इंडिया कंपनी का कोपभाजन बनना पड़ा। हेस्टिंगस सरकार की शासन शैली की कटु आलोचना का पुरस्कार हिक्की को जेल यातना के रूप में मिली।

हिक्की ने अपना उद्देश्य ही घोषित किया था-अपने मन और आत्मा की स्वतंत्रता के लिये अपने शरीर को बंधन में डालने में मुझे मजा आता है। समाचार पत्र की शुरूआत विद्रोह की घोषणा से हुई।

हिक्की भारत के प्रथम पत्रकार थे जिन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता के लिये ब्रिटिश सरकार से संघर्ष किया।

उत्तरी अमेरिका निवासी विलियम हुमानी ने हिक्की की परंपरा को समृद्ध किया। 1765 में प्रकाशित बंगाल जनरल जो सरकार समर्थक था, 1791 में हुमानी के संपादक बन जाने के बाद सरकार की आलोचना करने लगा। हुमानी की आक्रामक मुद्रा से आतंकित होकर सरकार ने उसे भारत से निष्कासित कर दिया। जेम्स बंकिघम ने 2 अक्टूबर 1818 को कलकत्ता से अंग्रजी का कैलकटा जनरल प्रकाशित किया। जो सरकारी नीतियों का निर्भीक आलोचक था। पंडित अंबिकाप्रशाद ने लिखा कि इस पत्र की स्वतंत्रता व उदारता पहले किसी पत्र में नहीं देखी गयी। कैलकटा जनरल उस समय के एंग्लोइंडियन पत्रों को प्रचार-प्रसार में पीछे छोड़ दिया था। एक रूपये मूल्य के इस अखबार का दो वर्ष में सदस्य संख्या एक हजार से अधिक हो गयी थी।

जेम्स बंकिघम को प्रेस की स्वतंत्रता का प्रतीक माना जाता था। सन् 1823 में उन्हें देश निकाला दे दिया गया। हालांकि इंगलैंड जाकर उन्होंने ओरियंटल हेराल्ड निकाला जिसमें वह भारतीय समस्याओं और कंपनी के हाथों में भारत का शासन बनाये रखने के खिलाफ लगातार अभियान चलाता रहा।

1961 के इंडियन कांउसिल एक्ट के बाद समाज के उपरी तबकों में उभरी राजनीतिक चेतना से भारतीय व गैर-भारतीय दोनों भाषा के पत्रों की संख्या बढ़ी। 1861 में बंबई में टाइम्स ऑफ इंडिया की 1865 में इलाहाबाद में

पायनियर 1868 में मद्रास मेल की 1875 में कलकत्ता स्टेटसमैन की और 1876 में लाहौर में सिविल ऐंड मिलटरी गजट की स्थापना हुई। ये सभी अंग्रेजी दैनिक ब्रिटिश शासनकाल में जारी रहे।

टाइम्स ऑफ इंडिया ने प्राय: ब्रिटिश सरकार की नीतियों का समर्थन किया। पायनियर ने भूस्वामी और महाजनी तत्त्वों का पक्ष तो मद्रास मेल ने यूरोपीय वाणिज्य समुदाय का पक्षधर था। स्टेटसमैन ने सरकार और भारतीय राष्ट्रवादियों दोनों का ही आलोचना की थी। सिविल एण्ड मिलिटरी गजट ब्रिटिश दाकियानूसी विचारों का पत्र था। स्टेटसमैन टाइम्स ऑफ इंडिया सिविल एण्ड मिलिटरी गजट पायनियर और मद्रास मेल जैसे प्रसिद्ध पत्र अंग्रेजी सरकार और शासन की नीतियों एवं कार्यक्रम का समर्थन करते थे।

अमृत बाजार पत्रिका, बांबे क्रानिकल बांबे सेंटिनल, हिन्दुस्तान टाइम्स, हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड फ्री प्रेस, जनरल नेश्नल हेराल्ड, नेश्नल काल अंग्रेजी में छपने वाले लक्ष्य प्रतिष्ठित राष्ट्रवादी दैनिक और साप्ताहिक पत्र थे। हिन्दू लीडर इंडियन सोशल रिफार्मर माडर्न रिव्यू उदारपंथी राष्ट्रीयता की भावना को अभिव्यक्ति देते थे। इंडियन नेशनल कांग्रेस की नीतियों और कार्यक्रमों को राष्ट्रीय पत्रों ने पूर्ण और उदारपंथी पत्रों ने आलोचनात्मक समर्थन दिया था। डान मुस्लिम लीग के विचारों का पोषक था। देश के विद्यार्थी संगठनों के अपने पत्र थे जैसे स्टूडेंट और साथी।

सुरेंद्रनाथ बनर्जी का बंगाली पन (1879 अंग्रेजी में)

भारत के राष्ट्रीय नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने 1874 में बंगाली (अंग्रेजी) पत्र का प्रकाशन व संपादन किया। इसमें छपे एक लेख के लिये उनपर न्यायालय की अवज्ञा का अभियोग लगाया गया था। उन्हें दो महीने के कारावास की सजा मिली थी। बंगाली ने भारतीय राजनीतिक विचारधारा के उदारवादी दल के विचारों का प्रचार किया था।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की राय पर दयाल सिंह मजीठिया ने 1877 में लाहौर में अंग्रेजी दैनिक ट्रिब्यून की स्थापना की। पंजाब की उदारवादी राष्ट्रीय विचारधारा का यह प्रभावशाली पत्र था।

लार्ड लिंटन के प्रशासन काल में कुछ सरकारी कामों के चलते जनता की भावनाओं को चोट पहुँची जिससे राजनीतिक असंतोष बढ़ा और अखबारों की संख्या में वृद्धि हुई। 1878 में मद्रास में वीर राधवाचारी और अन्य देशभक्त

भारतीयों ने अंग्रेजी सप्ताहिक हिन्दू की स्थापना की। 1889 से यह दैनिक हुआ। हिन्दू का दृष्टिकोण उदारवादी था। लेकिन इसने इंडियन नेशनल कांग्रेस की राजनीति की आलोचना के साथ ही सका समर्थन भी किया।

राष्ट्रीय चेतना का समाज सुधार के क्षेत्र में भी प्रसार हुआ। बंबई में 1890 में इंडियन सोशल रिफार्मर अंग्रेजी साप्ताहिक की स्थापना हुई। समाज सुधार ही इसका मुख्य लक्ष्य था।

1899 में सच्चिदानंद सिन्हा ने अंग्रेजी मासिक हिन्दुस्तान रिव्यू की स्थापना की। इस पत्र का राजनैतिक और वैचारिक दृष्टिकोण उदारवादी था।

1900 के बाद

1900 में जी ए नटेशन ने मद्रास से इंडियन रिव्यू का और 1907 में कलकत्ता से रामानन्द चटर्जी ने मॉडर्न रिव्यू का प्रकाशन शुरू किया। मॉडर्न रिव्यू देश का सबसे अधिक विख्यात अंग्रेजी मासिक सिद्ध हुआ। इसमें सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विषयों पर लेख निकलते थे और अंतराष्ट्रीय घटनाओं के विषय में भी काम की खबरें होती थी। इसने इंडियन नेशनल कांग्रेस में प्रायः दक्षिणपंथियों का समर्थन किया।

1913 में बी. जी. हार्नीमन के संपादकत्व में फिरोजशाह मेहता ने बांबे क्रॉनिकल निकाला। 1918 में सर्वेंटस ऑफ इंडिया सोसायटी ने श्रीनिवास शास्त्री के संपादकत्व में अपना मुख्य पत्र सर्वेंट ऑफ इंडिया निकालना शुरू किया। इसने उदारवादी राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देश की समस्याओं का विश्लेषण और समाधान प्रस्तुत किया। 1939 में इसका प्रकाशन बंद हो गया। 1919 में गांधी ने यंग इंडिया का संपादन किया और इसके माध्यम से अपने राजनीतिक दर्शन कार्यक्रम और नीतियों का प्रचार किया। 1933 के बाद उन्होंने हरिजन (बहुत सी भाषाओं में प्रकाशित साप्ताहिक) का भी प्रकाशन शुरू किया। पंडित मोतीलाल नेहरू ने 1919 में इलाहाबाद से इंडीपेंडेंट (अंग्रेजी दैनिक) का प्रकाशन शुरू किया।

स्वराज पार्टी के नेता ने दल के कार्यक्रम के प्रचार के लिये 1922 में दिल्ली में के. एम. पन्नीकर के संपादकत्व में हिन्दुस्तान टाइम्स (अंग्रेजी दैनिक) का प्रकाशन शुरू किया। इसी काल में लाला लाजपत राय के फलस्वरूप लाहौर से अंग्रेजी राष्ट्रवादी दैनिक प्यूपल का प्रकाशन शुरू किया गया। 1923 के बाद धीरे-धीरे समाजवादी, साम्यवादी विचार भारत में फैलने लगे। वर्कर्स एंड प्लेसंट पार्टी ऑफ इंडिया का एक मुख्य पत्र मराठी साप्ताहिक

क्रांति था। मर्ट कांसपीरेसी केस के एम जी देसाई और लेस्टर हचिंसन के संपादकत्व में क्रमशः स्पार्क और न्यू स्पार्क (अंग्रेजी साप्ताहिक) प्रकाशित हुआ।

मार्क्सवाद का प्रचार करना और राष्ट्रीय स्वतंत्रता एवं किसानों मजदूरों के स्वतंत्र राजनीतिक आर्थिक संघर्षों को समर्थन प्रदान करना इनका उद्देश्य था। 1930 और 1939 के बीच मजदूर किसानों के आंदोलनों का विस्तार हुआ और उनकी ताकत बढ़ी। कांग्रेस के नौवजवानों के बीच सामाजवादी साम्यवादी विचार विकसित हुए। इस तरह स्थापित कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने अधिकारिक पत्र के रूप में कांग्रेस सोशलिस्ट का प्रकाशन किया।

कम्युनिस्ट के प्रमुख पत्र नेशनल फ्रंट और बाद में प्यूपलस् वार थे। ये दोनों अंग्रेजी सप्ताहिक पत्र थे। एम. एन. रॉय के विचार अधिकारिक साम्यवाद से भिन्न थे। उन्होंने अपना अलग दल कायम किया जिसका मुख्य पत्र था इंडीपेंडेंट इंडिया।

राजा राममोहन राय

राजा राममोहन राय ने सन् 1821 में बंगाली पत्र संवाद कौमुदी को कलकत्ता से प्रकाशित किया। 1822 में फारसी भाषा का पत्र मिरात उल अखबार और अंग्रेजी भाषा में ब्रेहेनिकल मैंगजीन निकाला। राजा राममोहन राय ने अंग्रेजी में बंगला हेराल्ड निकाला। कलकत्ता से 1829 में बंगदूत प्रकाशित किया जो बंगला, फारसी, हिन्दी, अंग्रेजी भाषाओं में छपता था। संवाद कौमुदी और मिरात उल अखबार भारत में स्पष्ट प्रगतिशील राष्ट्रीय और जनतांत्रिक प्रवृति के सबसे पहले प्रकाशन थे। ये समाज सुधार के प्रचार और धार्मिक–दार्शनिक समस्याओं पर आलोचनात्मक वाद–विवाद के मुख्य पत्र थे।

राजा राममोहन राय की इन सभी पत्रों के प्रकाशन के पीछे मूल भावना यह थी ... मेरा उद्देश्य मात्र इतना है कि जनता के सामने ऐसे बौद्धिक निबंध उपस्थित करूं जो उनके अनुभव को बढ़ावें और सामाजिक प्रगति में सहायक सिद्ध हो। मैं अपनी शक्ति भर शासकों को उनकी प्रजा की परिस्थितियों का सही परिचय देना चाहता हूं और प्रजा को उनके शासकों द्वारा स्थापित विधि व्यवस्था से परिचित कराना चाहता हूं ताकि जनता को शासन अधिकाधिक सुविधा दे सके। जनता उन उपायों से अवगत हो सके जिनके द्वारा शासकों से सुरक्षा पायी जा सके और अपनी उचित मांगें पूरी करायी जा सके।

दिसंबर 1823 में राजा राममोहन राय ने लार्ड एमहस्ट को पत्र लिखकर अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार हेतु व्यवस्था करने का अनुरोध किया ताकि अंग्रेजी को अपनाकर भारतवासी विश्व की गतिविधियों से अवगत हो सके और मुक्ति का महत्त्व समझे।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

विष्णु शास्त्री चिपलणकर और लोकमान्य तिलक ने मिलकर 1 जनवरी 1881 से मराठी में केसरी और अंग्रेजी में मराठा साप्ताहिक पत्र निकाले। तिलक और उनके साथियों ने पत्र–प्रकाशन की उद्घोषणा में कहा–हमारा दृढ़ निश्चय है कि हम हर विषय पर निष्पक्ष ढंग से तथा हमारे दृष्टिकोण से जो सत्य होगा उसका विवेचन करेंगे। नि:संदेह आज भारत में ब्रिटिश शान में चाटुकारिता की प्रवृति बढ़ रही है। सभी ईमानदार लोग यह स्वीकार करेंगे कि यह प्रवृति अवांछनीय तथा जनता के हितों के विरूद्ध है। इस प्रस्तावित समाचार पत्र (केसरी) में जो लेख छपेंगे वे इनके नाम के ही अनुरूप होंगे।

केसरी और मराठा ने महाराष्ट्र में जनचेतना फैलाई तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में स्वर्णिम योगदान दिया। उन्होंने भारतीय जनता को दीन–हीन व दब्बू पक्ष की प्रवृति से उठ कर साहसी निडर व देश के प्रति समर्पित होने का पाठ पढ़ाया। बस एक ही बात उभर कर आती थी –स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।

सन् 1896 में भारी आकाल पड़ा जिसमें हजारों लोगों की मौत हुई। बंबई में इसी समय प्लेग की महामारी फैली। अंग्रेज सरकार ने स्थिति संभालने के लिये सेना बुलायी। सेना घर–घर तलाशी लेना शुरू कर दिया जिससे जनता में क्रोध पैदा हो गया। तिलक ने इस मनमाने व्यवहार व लापरवाही से क्षुब्ध होकर केसरी के माध्यम से सरकार की कड़ी आलोचना की। केसरी में उनके लिखे लेख के कारण उन्हें 18 महीने कारावास की सजा दी गयी।

महात्मा गांधी

गांधीजी ने 4 जून 1903 को इंडियन ओपिनियन साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। जिसके एक ही अंक से अंग्रेजी, हिन्दी, तमिल और गुजराती भाषा में छ: कॉलम प्रकाशित होते थे। उस समय गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में रहते थे।

अंग्रेजी में यंग इंडिया और जुलाई 1919 से हिन्दी-गुजराती में नवजीवन का प्रकाशन आरंभ किया। इन पत्रों के माध्यम से अपने विचारों को जनमानस तक पहुँचाया। उनके व्यक्तित्त्व ने जनता पर जादू सा कर दिया था। उनकी आवाज पर लोग मर-मिटने को तैयार हो गये। इन पत्रों में प्रति सप्ताह महात्मा गांधी के विचार प्रकाशित होते थे। ब्रिटिश शासन द्वारा पारित कानूनों के कारण जनमत के अभाव में ये पत्र बंद हो गये। बाद में उन्होंने अंग्रेजी में हरिजन और हिन्दी में हरिजन सेवक तथा गुजराती में हरिबन्धु का प्रकाशन किया तथा ये पत्र स्वतंत्रता तक छापते रहे।

अमृत बाजार पत्रिका

सन् 1868 में बंगाल के छोटे से गांव अमृत बाजार से हेमेन्द्र कुमार घोष, शिशिर कुमार घोष और मोतीलाल घोष के संयुक्त प्रयास से एक बांगला साप्ताहिक पत्र अमृत बाजार पत्रिका शुरू हुआ। बाद में कलकत्ता से यह बांगला और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में छपने लगी।

1878 के वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट से बचने के लिये इसे पूर्णतः अंग्रेजी साप्ताहिक बना दिया गया। सन् 1891 में अंग्रेजी दैनिक के रूप में इसका प्रकाशन शुरु हुआ।

अमृत बाजार पत्रिका ने तगड़े राष्ट्रीय विचारों का प्रचार किया और यह अत्याधिक लोकप्रिय राष्ट्रवादी पत्र रहा है। सरकारी नीतियों की कटू आलोचना के कारण इस पत्र का दमन भी हुआ। इसके कई संपादकों को जेल की भी सजा भुगतनी पड़ी।

जब ब्रिटिश सरकार ने धोखे से कश्मीर में राजा प्रताप सिंह को गद्दी से हटा दिया और कश्मीर को अपने कब्जे में लेना चाहा तो इस पत्रिका ने इतना तीव्र विरोध किया कि सरकार को राजा प्रताप सिंह को राज्य लौटाना पड़ा।

पयामे आजादी

स्वतंत्रता आंदोलन के अग्रणी नेता अजीमुल्ला खां ने 8 फरवरी 1857 को दिल्ली से पयामे आजादी पत्र प्रारंभ किया। शोले की तरह अपनी प्रखर व तेजस्वनी वाणी से जनता में स्वतंत्रता की भावना भर दी। अल्पकाल तक जीवित रहे इस पत्र से घबराकर ब्रिटिश सरकार ने इसे बंद कराने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

पयामे आजादी पत्र से अंग्रेज सरकार इतनी आतंकित हुई कि जिस किसी के पास भी इस पत्र की कॉपी पायी जाती उसे गद्दार और विद्रोही समझ कर गोली से उड़ा दिया गया। अन्य को सरकारी यातनायें झेलनी पड़ती थी। इसकी प्रतियां जब्त कर ली गयी फिर भी इसने जन–जागृति फैलाना जारी रखा।

युगांतर

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा है-जहां तक क्रांतिकारी आंदोलन का संबंध है भारत का क्रांतिकारी आंदोलन बंदूक और बम के साथ नहीं समाचार-पत्रों से शुरु हुआ।

वारिन्द्र घोष का पत्र युगांतर वास्तव में युगान्तरकारी पत्र था। कोई जान नहीं पाता था कि इस पत्र का संपादक कौन है। अनेक व्यक्तियों ने ससमय अपने आपको पत्र का संपादक घोषित किया और जेल गये। दमनकारी कानून बनाकर पत्र को बंद किया गया।

चीफ जस्टिस सर लारेंस जैनिकसन ने इस पत्र की विचारधारा के बारे में लिखा था–इसकी हर एक पंक्ति से अंग्रेजों के विरुद्ध द्वेष टपकता है। प्रत्येक शब्द में क्रांति के लिये उत्तेजना झलकती है।

युगांतर के एक अंक में तो बम कैसे बनाया जाता है, यह भी बताया गया था। सन् 1909 में इसका जो अंतिम अंक प्रकाशित हुआ उस पर इसका मुल्य था–फिरंगदि कांचा माथा (फिरंगी का तुरंत कटा हुआ सिर)

एक से अधिक भाषा वाले भाषाई पत्र

हिन्दू मुसलमान दोनों सांप्रदायिकता के खतरे को समझते थे। उन्हें पता था कि साम्प्रदायिकता साम्राज्यवादियों का एक कारगर हथियार है। पत्रकारिता के माध्यम से साम्प्रदायिक वैमनस्य के खिलाफ लड़ाई तेज की गयी थी। भाषाई पृथकतावाद के खतरे को देखते हुए एक से अधिक भाषाओं में पत्र निकाले जाते थे। जिसमें द्विभाषी पत्रों की संख्या अधिक थी।

हिन्दी और उर्दू पत्र

- मजहरुल सरुर, भरतपुर 1850
- पयामे आजादी, दिल्ली 1857
- ज्ञान प्रदायिनी, लाहौर 1866

- जबलपुर समाचार, प्रयाग 1868
- सरिश्ते तालीम, लखनऊ 1883
- रादपूताना गजट, अजमेर 1884
- बुंदेलखंड अखबार, ललितपुर 1870
- सर्वाहित कारक, आगरा 1865
- खैर ख्वाहे हिन्द, मिर्जापुर 1865
- जगत समाचार, प्रयाग 1868
- जगत आशना, आगरा 1873
- हिन्दुस्तानी, लखनऊ 1883
- पर्चा धर्मसभा, फर्रुखाबाद 1889
- समाचार सुधा वर्षण, हिन्दी और बांगला, कलकत्ता 1854
- हिन्दी प्रकाश, हिन्दी उर्दू गुरुमुखी, अमृतसर 1873
- मर्यादा परिपाटी समाचार, संस्कृत हिन्दी, आगरा 1873

1846 में कलकत्ता से प्रकाशित इंडियन सन् भी हिन्दू हेरोल्ड की भांति पांच भाषाओं हिन्दी फारसी अंग्रेजी बांगला और उर्दू में निकलता था। 1870 में नागपुर से हिन्दी उर्दू मराठी में नागपुर गजट प्रकाशित होता था।

बंगदूत बांगला फारसी हिन्दी अंग्रेजी भाषओं में छपता था।

गुजराती

बंबई में देशी प्रेस के प्रणेता फरदून जी मर्जबान 1822 में गुजराती में बांबे समाचार शुरु किया जो आज भी दैनिक पत्र के रुप में निकलता है। 1851 में बंबई में गुजराती के दो और पत्रों रस्त गोफ्तार और अखबारे सौदागर की स्थापना हुई। दादाभाई नैरोजी ने रस्त गोफ्तार का संपादन किया। यह गुजराती भाषा का प्रभावशाली पत्र था। 1831 में बंबई से पी एम मोतीबाला ने गुजराती पत्र जामे जमशेद शुरु किया।

मराठी

सूर्याजी कृष्णजी के संपादन में 1840 में मराठी का पहला पत्र मुंबई समाचार शुरु हुआ। 1842 में कृष्णजी तिम्बकजी रानाडे ने पूना से ज्ञान प्रकाश पत्र प्रकाशित किया। 1879–80 में बुरहारनपुर से मराठी साप्ताहिक पत्र सुबोध

सिंधु का प्रकाशन लक्ष्मण अनन्त प्रयागी द्वारा होता था। मध्य भारत में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का विकास मराठी पत्रों के सहारे ही हुआ था।

प्रेस पर लगाए गए प्रतिबंध

प्रेस नियंत्रण अधिनियम, 1799—ब्रिटिश भारत में प्रेस पर कानूनी नियंत्रण की शुरुआत सबसे पहले तब हुई जब लॉर्ड वेलेजली ने प्रेस नियंत्रण अधिनियम द्वारा सभी समाचार- पत्रों पर नियंत्रण (सेंसर) लगा दिया। ततपशचात सन् 1818 में इस प्री-सेंसरशिप को समाप्त कर दिया गया।

भारतीय प्रेस पर पूर्ण प्रतिबंध, 1823—कार्यवाहक गवर्नर जरनल जॉन एडम्स ने सन् 1823 में भारतीय प्रेस पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया। इसके कठोर नियमों के अंतर्गत मुद्रक तथा प्रकाशक को मुद्रणालय स्थापित करने हेतु लाइसेंस लेना होता था तथा मजिस्ट्रेट को मुद्रणालय जब्त करने का भी अधिकार था। इस प्रतिबंध के चलते राजा राममोहन राय की पत्रिका 'मिरात-उल-अखबार' का प्रकाशन रोकना पड़ा।

लिबरेशन ऑफ दि इंडियन प्रेस अधिनियम, 1835—लॉर्ड विलियम बेटिक ने समाचार -पत्रों के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया। इस उदारता को और आगे बढ़ाते हुए चार्ल्स मेटकॉफ ने सन् 1823 के भारतीय अधिनियम को रद्द कर दिया। अत: चार्ल्स मेटकॉफ को भारतीय समाचार- पत्र का मुक्तिदाता कहा जाता है। सन् 1835 के अधिनियम के अनुसार मुद्रक तथा प्रकाशन के लिए प्रकाशन के स्थान की सूचना देना जरुरी होता था।

लाइसेंसिंग अधिनियम, 1857—सन् 1857 के विद्रोह से निपटने के लिए ब्रिटिश सरकार ने एक वर्ष की अवधि के लिए बिना लाइसेंस मुद्रणालय रखने और प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया।

पंजीकरण अधिनियम, 1867—इस अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक मुद्रिक पुस्तक तथा समाचार-पत्र पर मुद्रक, प्रकाशक और मुद्रण स्थान का नाम होना अनिवार्य था तथा प्रकाशन के एक मास के भीतर पुस्तक की एक प्रति स्थानीय सरकार को नि: शुल्क भेजनी होती थी। सन् 1869 -70 में हुए वहाबी विद्रोह के कारण ही सरकार ने राजद्रोही लेख लिखने वालों के लिए आजीवन अथवा कम काल के लिए निर्वासन् या फिर दण्ड का प्रावधान रखा।

वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट, 1878—लॉर्ड लिंटन द्वारा लागू किया गया वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट, 1878 मुख्यत: 'अमृत बाजार पत्रिका' के लिए लाया गया

था जो बांग्ला समाचार-पत्र था। इससे बचने के लिए ही यह पत्रिका रातो-रात अंग्रेजी भाषा की पत्रिका में बदल गई। इस एक्ट के प्रमुख प्रावधान थे–

प्रत्येक प्रेस को यह लिखित वचन देना होगा कि वह सरकार के विरुद्ध कोई लेख नहीं छापेगा।

प्रत्येक मुद्रक तथा प्रकाशक के लिए जमानत राशि जमा करना आवश्यक होगा।

इस संबंध में जिला मजिस्ट्रेट का निर्णय अंतिम होगा तथा उसके खिलाफ अपील नहीं की जा सकेगी।

इस अधिनियम को 'मुँह बंद करने वाला अधिनियम' कहा गया। जिन पत्रों के विरुद्ध इस अधिनियम को लागू किया गया, उनमें प्रमुख थे- सोम-प्रकाश तथा भारत-मिहिर। इस एक्ट को लॉर्ड रिपन ने सन् 1881 में निरस्त कर दिया।

आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1898–इस अधिनियम द्वारा सेना में असंतोष फैलाने अथवा किसी व्यक्ति को राज्य के विरुद्ध काम करने को उकसाने वालों के लिए दण्ड का प्रावधान किया गया।

समाचार-पत्र अधिनयम, 1908–इस अधिनियम के द्वारा मजिस्ट्रेट को यह अधिकार दे दिया गया कि वह हिंसा या हत्या को प्रेरित करने वाली आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित करने वाले समाचार-पत्रों की सम्पत्ति या मुद्रणालय को जब्त कर ले।

भारतीय प्रेस अधिनियम, 1910–इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्नवत थे–

- किसी मुद्रणालय के स्वामी या समाचार-पत्र के प्रकाशन से स्थानीय सरकार पंजीकरण जमानत माँग सकती है, जो कि न्यूनतम रु. 500 तथा अधिकतम रु. 2000 होगी।
- आपत्तिजनक सामग्री के निर्णय का अधिकार प्रांतीय सरकार को होगा न कि अदालत को।

सर तेजबहादुर सप्रू, जो उस समय विधि सदस्य थे, की अध्यक्षता में सन् 1921 में एक समाचार-पत्र समिति की नियुक्ति की गई, जिसकी सिफारिशों पर 1908 और 1910 के अधिनियम निरस्त कर दिए गए।

भारतीय प्रेस (संकटकालीन शक्तियाँ) अधिनियम, 1931–इस अधिनियम के द्वारा प्रांतीय सरकार को जमानत राशि जब्त करने का अधिकार

मिला तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के विषय में समाचार प्रकाशित करना अवैध घोषित कर दिया गया। उपर्युक्त अधिनियमो के अतिरिक्त, सन् 1932 के एक्ट द्वारा पड़ोसी देशों के प्रशासन की आलोचना पर तथा 1934 ई. के एक्ट द्वारा भारतीय रजवाड़ो की आलोचना पर रोक लगा दी गयीं। सन् 1939 में इसी अधिनियम द्वारा प्रेस को सरकारी नियंत्रण में लाया गया।

11 वीं समाचार-पत्र जाँच समिति—मार्च 1947 में भारत सरकार ने एक समाचार-पत्र जाँच समिति का गठन किया और उसे आदेश दिया कि वह संविधान सभा में स्पष्ट किये गए मौलिक अधिकारों के सन्दर्भ में समाचार-पत्र संबंधी कानूनों का पुनरावलोकन करे।

समाचार-पत्र (आपत्तिजनक विषय) अधिनियम, 1951—26 जनवरी, 1950 को नया संविधान लागू होने के बाद सन् 1951 में सरकार ने संविधान के अनुच्छेद 19 (2) में संशोधन किया और फिर समाचार-पत्र (आपत्तिजनक विषय) अधिनियम पारित किया। यह अधिनियम उन सभी समाचार-पत्र संबंधी अधिनियमों से अधिक व्यापक था जो कि उस दिन तक पारित हुए थे। इसके द्वारा केंद्रीय तथा राजकीय समाचार-पत्र अधिनियम, जो उस समय लागू था, समाप्त कर दिया गया। नये कानून के तहत सरकार को समाचार-पत्रों तथा मुद्रणालयों से आपत्तिजनक विषय प्रकाशित करने पर उनकी जमानत जब्त करने का अधिकार मिल गया। परंतु अखिल भारतीय समाचार-पत्र संपादक सम्मेलन तथा भारतीय कार्यकर्ता पत्रकार संघ ने इस अधिनियम का भारी विरोध किया। अत: सरकार ने इस कानून की समीक्षा करने के न्यायाधीश जी. एस. राजाध्यक्ष की अध्यक्षता में एक समाचार-पत्र आयोग नियुक्त किया। एस आयोग ने अपनी रिपोर्ट अगस्त 1954 में प्रस्तुत की, जिसके आधार पर समाचार-पत्रों के पीड़ित संपादक तथा मुद्रणालय के स्वामियों को जूरी द्वारा न्याय माँगने का अधिकार प्राप्त हो गया।

2

ब्रिटिशकालीन साहित्यिक पत्रकारिता

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने वाराणसी से कविता केंद्रित पत्रिका 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन 15 अगस्त, 1867 को प्रारंभ किया था। इस तरह हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के 150 वर्ष पूरे हुए। भारतेंदु 'कवि वचन सुधा' में आरंभ में पुराने कवियों की रचनाएँ छापते थे जैसे चंद बरदाई का रासो, कबीर की साखी, जायसी का पदमावत, बिहारी के दोहे, देव का अष्टयाम और दीन दयाल गिरि का अनुराग बाग। लेकिन जल्द ही पत्रिका में नए कवियों को भी स्थान मिलने लगा। पत्रिका के प्रवेशांक में भारतेंदु ने अपने आदर्श की घोषणा इस प्रकार की थी–

'खल जनन सों सज्जन दुखी मति होंहि, हरिपद मति रहै।
अपधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै॥
बुध तजहि मत्सर, नारि नर सम होंहि, जग आनंद लहै।
तजि ग्राम कविता, सुकविजन की अमृतवानी सब कहै।'

भारतेंदु खलजनों द्वारा पीड़ित किए जानेवाले सज्जनों के प्रति संवेदना जताते हैं, वहीं यह आकांक्षा प्रकट करते हैं कि पाठक अच्छी कविता का रसास्वादन करें। भारतेंदु की यह भी कामना है कि भारत अपने खोए हुए स्वत्व को प्राप्त करे। वे नर-नारी की समानता पर भी बल देते हैं। भारतेंदु स्त्री-पुरुष की समानता के इतने बड़े पैरोकार थे कि 'कवि वचन सुधा' के 3 नवंबर, 1873 के अंक में उन्होंने लिखा, 'यह बात सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश की

कदापि उन्नति नहीं होगी, जब तक यहाँ की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी क्योंकि यदि पुरुष विद्वान होंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्ख तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह होगी।' 1

'कवि वचन सुधा' में साहित्य तो छपता ही था, उसके अलावा समाचार, यात्रा, ज्ञान विज्ञान, धर्म, राजनीति और समाज नीति विषयक लेख भी प्रकाशित होते थे। इससे पत्रिका की जनप्रियता बढ़ती गई। इतनी कि उसे मासिक से पाक्षिक और फिर साप्ताहिक कर दिया गया। प्रकाशन के दूसरे साल 'कवि वचन सुधा' पाक्षिक हो गई थी और 5 सितंबर, 1873 से साप्ताहिक। 'कवि वचन सुधा' के द्वितीय प्रकाशन वर्ष में मस्टहेड के ठीक नीचे छपता था –

'निज-नित नव यह कवि वचन सुधा सकल रस खानि।
पीवहु रसिक आनंद भरि परमलाभ जिय जानि॥
सुधा सदा सुरपुर बसै सो नहीं तुम्हरे जोग।
तासों आदर देहु अरु पीवहु एहि बुध लोग॥'

'कवि वचन सुधा' में सूचना का एक नियमित स्तंभ रहता था। सूचना के अलावा नाना विषयों पर टिप्पणियाँ छपती थीं। 'कवि वचन सुधा' के 8 फरवरी, 1874 के अंक में प्रकाशित एक ऐसी ही टिप्पणी द्रष्टव्य है, 'कुछ काल पहले अंग्रेज लोग जब हिंदुस्थान के विषय में व्याख्यान देते थे तब यही प्रकट करते थे कि हम लोग इस देश के लाभ अर्थ राज्य करते हैं यही चिल्ला-चिल्ला कर सर्वदा कहा करते कि हम सदैव हिंदुस्तान की वृद्धि के निमित्त विचार करते हैं कि हम लोग इस देश की वृद्धि करेंगे और यहाँ के निवासियों को विद्यामृत पिलाएँगे और राज्य का प्रबंध किस भांति करना यह ज्ञान प्रजा को स्वतः हो जाएगा तब हम लोग हिंदुस्तान का सब राज्य प्रबंधन यहाँ के निवासियों को स्वाधीन कर देंगे और अंत को सब राम-राम कह कर जहाज पर पैर रख स्वदेश गमन करेंगे। यह वार्ता हम लोग अपनी गड़ी हुई नहीं कहते। पर इन्हीं अंग्रेजों की और मुख्य करके पाद्रियों के जो व्याख्यान प्रसिद्ध हुए हैं उनसे स्पष्ट प्रकट होता है कि यह प्रकार पाठकजनों के देखने में निस्संदेह आया ही होगा इसमें संदेह नहीं।'

अंग्रेजी शासन के प्रति भारतेंदु की यह टिप्पणी बेहद तात्पर्यपूर्ण है कि भारतीयों के लाभ के लिए अंग्रेजी शासन होने का दावा खोखला था। अंग्रेज किस तरह भारत की संपदा लूट रहे थे, इसका संकेत भारतेंदु ने 'कवि वचन सुधा' के 7 मार्च, 1874 के अंक में अपनी टिप्पणी में दिया, 'सरकारी पक्ष का

कहना है कि हिंदुस्तान में पहले सब लोग लड़ते-भिड़ते थे और आपस में गमनागमन न हो सकता था। यह सब सरकार की कृपा से हुआ। हिंदुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी नहीं। रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है। रेलवे कंपनी वाले जो द्रव्य व्यय किया है, उसका व्याज सरकार को देना पड़ता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग हैं। कुल मिलाकर 26 करोड़ रुपया बाहर जाता है।'

'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित लेख 'भुतही इमली का कन कौआ' पर राजा शिवप्रताप सितारेहिंद ने गवर्नर से शिकायत की। रही-सही कसर 'मर्सिया' के प्रकाशन ने पूरी कर दी। उससे अंग्रेजी शासन का क्रोध और बढ़ गया। भारतेंदु ने 20 अप्रैल, 1874 के अंक में शंका शोधन (स्पष्टीकरण) भी छापा, 'मर्सिया में हमारे अपने ग्राहकों को शंका होगी कि वह राजा कौन था? इससे अब हम उस राजा का अर्थ स्पष्ट करके सुनाते हैं। वह राजा अंग्रेजी फैसन था जो इस अपूर्ण शिक्षित मंडली रूप अँधेर नगरी का राज करता था जब से बंबई और काशी इत्यादि स्थानों में अच्छे-अच्छे लोगों ने प्रतिज्ञा करके अंग्रेजी कपड़ा पहनना छोड़ देने की सौगंध खाई तब से मानो वह मर गया था।'

स्पष्टीकरण का कोई लाभ न हुआ। अंग्रेज सरकार ने 'कवि वचन सुधा' की प्रतियों की खरीद बंद कर दी। सरकार भक्तों ने भी पत्र खरीदना, पढ़ना और अपने घर में रखना बंद कर दिया, इससे 'कवि वचन सुधा' को आर्थिक नुकसान तो बहुत हुआ, किंतु उसकी प्रतिष्ठा बढ़ गई। भारतेंदु ने अंग्रेजी हुकूमत के मानद दंडाधिकारी का पद भी त्याग दिया। यही क्या, उन्होंने अंग्रेज अफसरों से मिलना तक बंद कर दिया। भारतेंदु ने विलायती कपड़ों के बहिष्कार की अपील करते हुए स्वदेशी का जो प्रतिज्ञा पत्र 23 मार्च, 1874 के 'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित किया, वह समूचे हिंदी समाज का प्रतिज्ञा पत्र बन गया। उसमें भारतेंदु ने कहा था, 'हम लोग सर्वांतर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिरेंगे और जो कपड़ा कि पहिले से मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास हैं उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहनेगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहनेगे। हम आशा रखते हैं कि इसको बहुत ही क्या प्रायः सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र को अपनी मनीषा

प्रकाशित करेंगे और सब देश हितैषी इस उपाय के बाद में अवश्य उद्योग करेंगे।'

सात वर्षों तक 'कवि वचन सुधा' का संपादक-प्रकाशन करने के बाद भारतेंदु ने उसे अपने मित्र चिंतामणि धड़फले को सौंप दिया और 'हरिश्चंद्र मैंग्जीन' का प्रकाशन 15 अक्टूबर, 1873 को बनारस से आरंभ किया। 'हरिश्चंद्र मैंग्जीन' के मुख्यपृष्ठ पर उल्लेख रहता था कि यह 'कवि वचन सुधा' से संबद्ध है। 'हरिश्चंद्र मैंग्जीन' के प्रवेशांक में एक निबंध छापा-'हिंदूज क्वश्चन टू यूरोपीयन'। यह लेख प्रश्नोत्तर शैली में है—आप इंग्लैंड के हो या हमारे? क्यों अपना घरबार छोड़कर यहाँ आ बसे? यदि आप हमारे हैं तो क्यों हमारे देश को इतनी पीड़ा दे रहे हैं।..? आप किसी के नहीं हैं-फिर आपकी स्तुति करें या निंदा? आपको साधु कहें या गुरु? इसी तरह 'रिलीजन्स' शीर्षक लेख में अंधविश्वासी युवकों की खबर ली गई थी, 'हमें यह देखकर खेद होता है कि हिंदू धर्म का पतन हो रहा है। हिंदू धर्म, अन्य सभी धर्मों से श्रेष्ठ है। परंतु हमारे प्रबुद्ध मित्र इसे अंधविश्वास की संज्ञा देते हैं।' प्रथम अंक 24 पृष्ठों में प्रकाशित हुआ। कुछ अंक बीस और बयालीस पृष्ठ के भी निकले। इसमें प्राय: अंग्रेजी भाषा में हर अंक में तीन से छह पृष्ठ होते थे। अंग्रेजी की सामग्री अधिकतर अन्य व्यक्ति लिखकर भेजते थे जिनके नाम से वह छपती थी। इसमें साहित्य, विज्ञान, राजनीति, धर्म, पुरातत्त्व, इतिहास आदि विषयों पर लेखों के साथ ही उपन्यास, कविता, हास्य-व्यंग्य आदि पर भी सामग्री रहती थी।

'हरिश्चंद्र मैंग्जीन' जल्द ही 'कवि वचन सुधा' से भी अधिक लोकप्रिय हो गई थी तथा उस समय के मशहूर लेखक जैसे बाबू तोताराम मुंशी, ज्वाला प्रसाद, बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री, दयानंद सरस्वती और स्वयं भारतेंदु समय-समय पर 'हरिश्चंद्र मैंग्जीन' के लिए लिखा करते थे। भारतेंदु जी ने अपने लेखकों को सहायक संपादकों की मर्यादा दी। 'हरिश्चंद्र मैंग्जीन' के केवल आठ अंक ही निकल सके। उन आठ अंकों में कुल 113 रचनाएँ प्रकाशित हुईं। आठवें अंक निकलने के बाद पत्रिका का नाम 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' कर दिया गया। मुख्यपृष्ठ पर 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' छपा होता था और आखिरी पृष्ठ पर 'हरिश्चंद्र मैंग्जीन'।

'हरिश्चंद्र चंद्रिका' का प्रवेशांक जून 1874 में निकला। मुख्यपृष्ठ पर यह 'लोक और छंद छपता था—

'विद्वत्कुलाम लस्वांत कुमुदामोददायिका।
आर्याज्ञान-तमोहंती श्री हरिश्चंद्र चंद्रिका॥'

'कविजन-कुमुद-गन हिय विकासि चकोर रसिकन सुख भरै।
प्रेमिन सुधा सों सींचि भारतभूमि आलस तम हरै॥
उद्यम सु औषधि पोखि विरहिनि दाहि खल चोरन दरै।
हरिश्चंद्र की यह चंद्रिका पर कासि जग मंगल करै॥'

'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में हठीकृत राधा सुधा शतक, भारतेंदु जी का धनंजय विजय व्यायोग, गदाधर सिंह कृत कादंबरी, लाला श्रीनिवास दास कृत तप्सासंवरण नाटक आदि प्रकाशित हुए। भारतेंदु का 'पाँचँवा पैगंबर', मुंशी कमला सहाय का 'रेल का विकट खेल', मुंशी ज्वाला प्रसाद का 'कलिराज की सभा' आदि रचनाएँ भी उसमें छपे। पुरातत्त्व संबंधी लेख भी उसमें प्रकाशित किए जाते थे। कुछ पृष्ठों में अंग्रेजी रचनाएँ भी प्रकाशित होती थीं। कविता में ही मूल्यादि का विवरण छपता था -

'षट् मुद्रा पहिले दिए बरस बिताए सात।
साथ चंद्रिका के लिए दस में दोऊ मिल जात॥
बरन गए बारह लगत दो के दो महसूल।
अलग चंद्रिका सात, षट् वचन सुधा समतूल॥
दो आना एक पत्र की टका पोस्टेज साथ।
सारध आना आठ दै लहत चंद्रिका हाथ॥
प्रति पंगति आना जुगुल जो कोऊ नोटिस देई।
जो विशेष जानन चहै पूछि सबै कुछ लेई॥'

'हरिश्चंद्र चंद्रिका' का प्रकाशन घाटे के बावजूद छह वर्षों तक होता रहा। हरिश्चंद्र ने 'नवोदित हरिश्चंद्र चंद्रिका' भी निकाली। उसमें धारावाहिक रूप में 'पुरावृत संग्रह', 'स्वर्णलता' (उपन्यास) तथा 'सती प्रताप' (नाटक) का प्रकाशन हुआ था। 'प्रेम-प्रलाप' के कुछ उत्कृष्ट पद भी प्रकाशित किए गए थे। उस पत्रिका के तीन अंकों का ही विवरण मिलता है। नवंबर 1874 के अंक में 31 सहायक संपादकों के नाम दिए गए हैं। जैसे-ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महर्षि दयानंद सरस्वती। कहना न होगा कि वस्तुतः ये सहायक संपादक पत्रिका के लेखक थे। पत्रिका के विदेशों में भी पाठक थे।

भारतेंदु ने एक स्त्री शिक्षोपयोगी मासिक पत्रिका की जरूरत को शिद्दत से महसूस किया और जनवरी, 1874 में 'बाला बोधिनी' नामक आठ पृष्ठों की डिमाई साइज की पत्रिका प्रकाशित की। उसके मुख्यपृष्ठ पर यह कविता प्रकाशित होती थी–

'जो हरि सोई राधिका जो शिव सोई शक्ति।
जो नारि सोई पुरुष या में कुछ न विभक्ति॥
सीता अनुसूया सती अरुंधती अनुहारि।
शील लाज विद्यादि गुण लहौ सकल जग नारि॥
पितु पति सुत करतल कमल लालित ललना लोग।
पढ़ै गुनैं सीखैं सुनै नासैं सब जग सोग॥
और प्रसविनी बुध वधू होई हीनता खोय।
नारी नर अरधंग की सांचेहि स्वामिनि होय॥'

उन दिनों 'बाल बोधिनी' और 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' की पाँच-पाँच सौ प्रतियाँ छपती थीं जिसमें सौ-सौ प्रतियाँ तो सरकार ही खरीद लेती थी। 'बाला बोधिनी' के प्रवेशांक में लिखा था, 'मैं तुम लोगों से हाथ जोड़कर और आँचल खोलकर यही माँगती हूँ कि जो कभी कोई भली बुरी कड़ी नरम कहनी अनकहनी कहूँ उसे मुझे अपनी समझकर क्षमा करना क्योंकि मैं जो कुछ कहूँगी सो तुम्हारे हित की कहूँगी।' इस पत्रिका में महिलापयोगी रचनाएँ ही अधिकतर छपती थीं, परंतु इतिहास, साहित्य, राजनीति पर सामयिक लेख भी दिए जाते थे। 'मुद्राराक्षस' नाटक का प्रकाशन भी इसमें हुआ था। यह पत्रिका चार वर्षों तक निरंतर प्रकाशित होती रही। भारतेंदु स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देते थे। उस समय जो युवतियाँ अंग्रेजी परीक्षाएँ पास करतीं, उनको वे साड़ी भेंट करते थे। 'बाला बोधिनी' के जिल्द 2 संख्या-73 में स्त्रियों में नैतिक शिक्षा के प्रसार के लिए लिखा गया था, 'हे सुमति, जब बालक तुम्हारा भली प्रकार बातचीत करने लगे तो उसको वर्णमाला याद कराती रहे फिर उन्हीं को पट्टी पै लिख के अभ्यास कराओ और रातों को गिनती और सुंदर-सुंदर 'लोक व छोटे स्रोत याद कराओ। इस व्योहार में कई एक बातें सुंदर प्राप्त होंगी। प्रथम तो बालक को खेल ही खेल में अक्षर ज्ञान हो जावेगा दूसरे उसका काल भी व्यर्थ नहीं जाने का फिर इस अवसर का पढ़ा लिखा विशेष करके याद रहता है।' 'बाला बोधिनी' में 'गुरुसारणी' नाम से एक स्तंभ होता था जिसमें घर के हिसाब-किताब के सूत्र कविता में प्रकाशित किए जाते थे। 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के साथ ही 'बाला बोधिनी' की भी सरकारी सहायता बंद हो गई तो भारतेंदु ने उसे 'कवि वचन सुधा' में समाहित कर दिया। राममोहन राय ने स्त्री अधिकारों के लिए जो रचनात्मक संघर्ष किया, सती प्रथा और बाल विवाह का विरोध किया, विधवा विवाह को समर्थन दिया और स्त्री शिक्षा पर जोर दिया और उस नवजागरण के

लिए पत्रकारिता को अस्त्र बनाया और जिसे द्वारिका प्रसाद टैगोर तथा ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका के माध्यम से आगे बढ़ाया, उसी की अगली कड़ी भारतेंदु की पत्रिका 'बाला बोधिनी' से जुड़ती है। ध्यान देने योग्य है कि 'बाला बोधिनी' का प्रकाशन होने के दस साल बाद 1884 में फ्रेडरिक एंगेल्स की किताब 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' आई थी जिसमें मार्क्सवादी अवधारणा के आलोक में स्त्रीत्ववाद का गंभीर विवेचन किया गया था। कहना न होगा कि हिंदी साहित्य और पत्रकारिता में स्त्री विमर्श की जब भी चर्चा होगी तो उसमें 'बाला बोधिनी' के रचनात्मक अवदान का उल्लेख अनिवार्य होगा।

भारतेंदु की पत्रिकाओं के बाद बालकृष्ण भट्ट के संपादन में 1877 में मासिक पत्रिका 'हिंदी प्रदीप' निकली। उसके प्रत्येक अंक में 'विद्या, नाटक, इतिहास, परिहास, उपन्यास, साहित्य, दर्शन, राज संबंधी इत्यादि के विषय में हर महीने की पहली को छपता है' लिखा रहता था। 'हिंदी प्रदीप' ने भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रसार किया। बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' में कालिदास, श्री हर्ष, भवभूति, बिल्हण, बाण, त्रिविक्रम भट्ट, हरिश्चंद्र, भारवि, क्षेमेंद्र तथा गोवर्धन आदि कवियों के जीवन और योगदान पर लेख प्रकाशित किए और प्राचीन पुस्तकों की समालोचनाएँ भी छापीं। 'नल दमयंति', 'किरातार्जुनीयम', 'सौ अजान एक सुजान' और 'भाग्य की परख' जैसे नाटक भी 'हिंदी प्रदीप' में छपे। 1908 में माधव शुक्ल की कविता 'बम क्या है' छापने के लिए 'हिंदी प्रदीप' पर तीन हजार रुपए का जुर्माना लगा जिसे न चुका पाने के कारण उसका प्रकाशन बंद हो गया। सन् 1878 में 'भारत मित्र', 1879 में 'सारसुधानिधि' और 1880 में 'उचित वक्ता' का प्रकाशन हुआ। 'भारत मित्र' के संपादक छोटेलाल मिश्र, 'सारसुधानिधि' के संपादक सदानंद मिश्र और 'उचित वक्ता' के दुर्गाप्रसाद मिश्र ने हिंदी गद्य के उन्नयन के लिए ठोस काम किए। 'सारसुधानिधि' के वर्ष 2, अंक 12 की संपादकीय टिप्पणी में सदानंद मिश्र ने लिखा था, "एक विशुद्ध साधु हिंदी भाषा की सर्वत्र एक ही पुस्तक पढ़ाई जाना उचित है। किंतु विशेष दुख का विषय है कि जिस हिंदी भाषा का अधिकार इतना बड़ा है कि भारतवर्ष के प्रायः आधे दूर तक परिव्याप्त है।

हिंदुस्तान की उन्नति का मूल जब यह ठहरा कि हिंदुस्तान की प्रधान भाषा हिंदी परिशुद्ध होकर सर्वत्र एक ही रूप से प्रचार होय, तब अवश्य गवर्नमेंट की सहायता आवश्यक है क्योंकि संप्रति भारतवासियों की सर्व प्रकार

की शिक्षा एकमात्र गवर्नमेंट के अधीन है।" इसी तरह दुर्गाप्रसाद मिश्र ने 12 जनवरी, 1895 के 'उचितवक्ता' की संपादकीय टिप्पणी में लिखा था, 'आजकल हिंदी साहित्य की विचित्र दशा वर्तमान है। इसकी कुछ स्थिरता ही नहीं देख पड़ती। विविध प्रकार के रंग-बिरंगें लेख प्रकाशित होते हैं। कोई तो आज संस्कृत शब्दों पर झुक रहे हैं और ज्यों ही किसी ने कह दिया कि आपकी भाषा कठिन है, कुछ सरल कीजिए, कि चट-पलट कर उर्दू की खिचड़ी पकाने लग गए, फिर ज्यों ही किसी ने कह दिया कि केवल संस्कृत के शब्दों के मिलाने से व उर्दू के शब्दों के प्रयोग से भाषा पुष्ट होगी, बस चट बदल गए और दोनों प्रकार के शब्दों को मिलाने में उतारू हो गए। सारांश यह कि ग्राहकों की खोज में भाषा को भी भटकाते रहते हैं।' 'सारसुधानिधि' और 'उचितवक्ता' की इन संपादकीय टिप्पणियों से स्पष्ट है कि तब के संपादकों में भाषा के प्रश्न को लेकर कितनी गहरी चिंता थी। इसी सरोकार से 1881 में बद्री नारायण उपाध्याय ने 'आनंद कादंबिनी' और प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' का प्रकाशन किया।

माधवराव सप्रे ने छत्तीसगढ़ के पेंड्रा से 'छत्तीनसगढ़ मित्र' पत्रिका का प्रकाशन व संपादन जनवरी, 1900 में आरंभ किया। वामन बलीराम लाखे और रामराव चिंचोलकर उनके सहयोगी थे। 'छत्तीनसगढ़ मित्र' के प्रवेशांक में सप्रेजी ने 'आत्म परिचय' शीर्षक से अपने मंतव्य की घोषणा इस प्रकार कि-(1) इसमें कुछ संदेह नहीं कि सुसंपादित पत्रों के द्वारा हिंदी भाषा की उन्नति हुई है। अतएव यहाँ भी 'छत्तीकसगढ़ मित्र' हिंदी भाषा की उन्नति करने में विशेष प्रकार से ध्यान देवे। आजकल भाषा में बहुत सा कूड़ा-कर्कट जमा हो रहा है, वह न होने पावे, इसलिए प्रकाशित ग्रंथों पर प्रसिद्ध मार्मिक विद्वानों के द्वारा समालोचना भी करे। (2) अन्यान्य भाषाओं के ग्रंथों का अनुवाद कर सर्वोपयोगी विषयों का संग्रह करना आवश्यक है।' 'छत्तीरसगढ़ मित्र' तीन साल ही निकल सका किंतु उसने सर्जनात्मक साहित्य यथा-कविता, कहानी, व्यंग्य व निबंध विधा की रचनाएँ तो छापीं ही, समालोचना विधा को प्रतिष्ठित करने का महत्त्वपूर्ण काम भी किया। 'छत्तीसगढ़ मित्र' में सप्रे जी ने दस पुस्तकों की विस्तृत समालोचना की और सत्रह पुस्तकों पर परिचयात्मक टिप्पणियाँ प्रकाशित की। सप्रे जी की राय थी कि किसी पुस्तक या पत्र की आलोचना करने में समालोचक को उचित है कि उस पुस्तक या पत्र के गुण-दोष सप्रमाण सिद्ध करे।

सन् 1900 में ही इलाहाबाद के इंडियन प्रेस से 'सरस्वती' निकली। आरंभ में इसका संपादन एक समिति को सौंपा गया था जिसमें बाबू श्याम सुंदर दास, बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू कार्तिक प्रसाद, बाबू जगन्नाथ दास और किशोरीलाल गोस्वामी शामिल थे। महावीर प्रसाद द्विवेदी 1903 के जनवरी महीने में 'सरस्वती' के संपादक बने। उन्होंने पत्रिका को ज्ञान के सभी अनुशासनों का खुला मंच तो बनाया ही, यह भी सुनिश्चित किया कि प्रकाशन के पहले हर रचना की भाषा व्याकरण की दृष्टि से ठीक हो। भाषा-परिष्कार उनकी पहली प्राथमिकता थी। उन्होंने 'सरस्वती' के नवंबर, 1905 के अंक में 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक से अपनी भाषा नीति स्पष्ट की और भारतेंदु हरिश्चंद्र, राजा शिवप्रसाद, गदाधर सिंह, काशीनाथ खत्री, मधुसूदन गोस्वामी और बाल कृष्ण भट्ट आदि की भाषा की गलतियों पर टिप्पणी करते हुए लिखा कि भाषा की यह अनस्थिरता बहुत ही हानिकारिणी है।' द्विवेदी जी के इस 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर लंबा विवाद चला। 'भारतमित्र' के तत्कालीन संपादक बालमुकुंद गुप्त ने आत्माराम के नाम से दस लेख लिखकर द्विवेदी जी की तीखी आलोचना की। गोविंद नारायण मिश्र भी सामने आए और उन्होंने 'हिंदी बंगवासी' में 'आत्माराम की टें-टें' शीर्षक से लेख लिखकर गुप्त जी की आलोचना की। वह ऐतिहासिक विवाद डेढ़ साल तक चला।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनेक रचनाकारों को सबसे पहले अवसर दिया और जिनकी कविता या कहानी या लेख 'सरस्वती' में छपते थे, वे भी चर्चा में आ जाते थे। श्यामसुंदर दास, कार्तिक प्रसाद खत्री, राधाकृष्ण दास, जगन्नाथ दास रत्नाकर, किशोरीलाल गोस्वामी, माधवराव सप्रे, रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, गया प्रसाद शुक्ल स्नेही, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, रायकृष्ण दास, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारी सिंह दिनकर आदि की रचनाएँ 'सरस्वती' में ही प्रकाशित हो कर चर्चित हुईं। 'सरस्वती' ने सर्जनात्मक साहित्य की हर विधा के विकास में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। रामचंद्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' 1903 में द्विवेदी जी के संपादन में 'सरस्वती' में ही छपी। बंग महिला (राजेंद्रबाला घोष) की कहानी 'कुंभ की छोटी बहू' 'सरस्वती' के सितंबर 1906 के अंक में छपी। 'सरस्वती' में 1909 में वृंदावन लाल वर्मा की कहानी 'राखी बंद भाई' और 1915 में प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी 'सौत' तथा 1916 में 'पंच परमेश्वर' छपी। 1915 में चंद्रधर

शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' 'सरस्वती' में ही छपकर विख्यात हुई। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने दिसंबर 1920 में 'सरस्वती' से विदा ली। सरस्वती 1975 तक निकलती रही किंतु महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन काल को सर्वोत्कृष्ट काल माना जाता है।

शारदा चरण मित्र ने 1907 में 'देवनागर' नामक मासिक पत्र निकाला था जो बीच में कुछ व्यवधान के बावजूद उनके जीवन पर्यंत यानी 1917 तक निकलता रहा। 'देवनागर' के पहले संपादक यशोदानंदन अखौरी थे। देवनागर में बांग्ला, उर्दू, नेपाली, उड़ीया, गुजराती, मराठी, कन्नड़, तमिल, मलयालम और पंजाबी आदि की रचनाएँ देवनागरी लिपि में लिप्यांतरित होकर छपती थीं। उस पत्रिका में पं. रामावतार शर्मा, डॉ. गणेश प्रसाद, शिरोमणि अनंतवायु शास्त्री, अक्षयवट मिश्र, कोकिलेश्वर भट्टाचार्य और पांडेय लोचन प्रसाद जैसे विशिष्ट लोग लिखते थे। 1909 में वाराणसी से 'इंदु' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। अंबिका प्रसाद गुप्त उसके संपादक थे। 'इंदु' को छायावाद की नींव डालने का श्रेय जाता है। जयशंकर प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' 'इंदु' में ही 1911 में छपी थी।

नवंबर 1922 में रामरख सिंह सहगल ने स्त्रियों के सर्वांगीण उत्थान पर केंद्रित सचित्र मासिक 'चाँद' का प्रकाशन प्रारंभ किया। बाद में इसका दायरा विस्तृत कर दिया गया। 'चाँद' ने कई विशेषांक निकाले जैसे अछूतांक, पत्रांक, वैश्यांक, शिशु अंक, विधवा अंक, प्रवासी अंक। 'चाँद' का फाँसी अंक नवंबर 1928 में आया था और उसमें चार अत्यंत महत्त्वपूर्ण कहानियाँ छपी थीं। वे हैं-चतुरसेन शास्त्री की 'फंदा', पांडेय बेचन शर्मा उग्र की 'जल्लाद', जनार्दन प्रसाद झा द्विज की 'विद्रोही के चरणों पर' और विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक की 'फाँसी'। प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'कफन' 'चाँद' के अप्रैल 1936 के अंक में छपी थी। महादेवी वर्मा का अधिकांश साहित्य 'चाँद' में ही छपा।

विष्णु नारायण भार्गव द्वारा 1922 में नवल किशोर प्रेस से साहित्यिक मासिक पत्रिका 'माधुरी' निकाली। संपादक थे दुलारेलाल भार्गव व रूपनारायण पांडेय। शिवपूजन सहाय, प्रेमचंद, बांके बिहारी भटनागर भी कभी न कभी पत्रिका की संपादकीय टीम के हिस्से रहे। 1950 में पत्रिका बंद हो गई। 1923 में कलकत्ता से साप्ताहिक 'मतवाला' पत्रिका निकली। संपादक के रूप में महादेव सेठ का नाम छपता था किंतु संपादक मंडल में निराला, शिवपूजन सहाय और मुंशी नवजादिक लाल भी थे। 'मतवाला' के प्रकाशन का एक

मकसद निराला की कविताओं को प्रकाशित करना भी था। पत्रिका के हर अंक में प्रथम पृष्ठ पर निराला की कविता छपती थी। पत्रिका में समालोचना भी वही करते थे। संपादकीय, चलती चक्की व अन्य विनोदपूर्ण टिप्पणियाँ लिखने तथा प्रूफ पढ़ने का जिम्मा शिवपूजन सहाय का था। मुंशी नवजादिक लाल भी हास्य विनोदपूर्ण टिप्पणियाँ लिखते थे। प्रेस की व्यवस्था महादेव सेठ देखते थे। पत्रिका का प्रबंध मुंशी जी के जिम्मे था। 1927 में मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य समिति इंदौर ने अंबिका प्रसाद त्रिपाठी के संपादन में मासिक पत्रिका 'वीणा' का प्रकाशन किया। बाद में कालिका प्रसाद दीक्षित कुसुमाकर, शांतिप्रिय द्विवेदी, चंद्ररानी सिंह, नेमीचंद्र जैन उसके संपादक हुए। इसी साल लखनऊ से दुलारे लाल व सावित्री के संपादन में मासिक पत्रिका 'सुधा' का प्रकाशन हुआ। 'सुधा' का प्रवेशांक दो बार छपा था। पहली बार तीन हजार प्रतियाँ बिक जाने पर दोबारा चार हजार छापा गया था। 'सुधा' का मार्च 1929 का अंक कार्टून विशेषांक के रूप में निकला। कार्टून पर पहली बार कोई विशेषांक तब निकला था।

1928 में रामानंद चट्टोपाध्याय ने हिंदी मासिक 'विशाल भारत' का प्रकाशन प्रारंभ किया। बनारसी दास चतुर्वेदी उसके संस्थापक संपादक थे। चतुर्वेदी जी के संपादन में 'विशाल भारत' जल्द की हिंदी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका बन गई। शुरू के तीन वर्षों में ही उसने साहित्यांक, प्रवासी अंक तथा कला अंक जैसे विशेषांक निकालकर अपनी धाक जमा ली। जैनेंद्र की पहली कहानी 'खेल' 1928 में 'विशाल भारत' में ही छपी। 'विशाल भारत' ने प्रचुर अनुवाद साहित्य भी प्रकाशित किया। 1937 में बनारसी दास चतुर्वेदी के आग्रह पर 'विशाल भारत' का संपादन करने के लिए अज्ञेय कलकत्ता आ गए। 'विशाल भारत' में आने के पहले अज्ञेय 1936 में आगरा के साप्ताहिक 'सैनिक' के बिना नाम के संपादक थे। वहाँ साल भर रहे थे। अज्ञेय अकेले साहित्यकार हैं जिन्होंने हर तरह की पत्रकारिता की। उन्होंने दैनिक अखबार, साप्ताहिक अखबार, मासिक पत्रिका, द्विमासिक पत्रिका और त्रैमासिक पत्रिका का संपादन किया। 1947 में अज्ञेय ने इलाहाबाद से द्वैमासिक 'प्रतीक' नामक साहित्यिक पत्रिका निकाली। बाद में वह मासिक हो गई। त्रिलोचन, शमशेर, भारत भूषण अग्रवाल, सर्वेश्वर, केदारनाथ सिंह, गिरिजा कुमार माथुर, जगदीश गुप्त, कुँवर नारायण, रांगेय राघव, राजेंद्र यादव, मनोहर श्याम जोशी, अहमद हुसैन, शिवप्रसाद सिंह, राधाकृष्ण, विद्या निवास मिश्र 'प्रतीक' में छपकर ही

चर्चित हुए। 'प्रतीक' में अज्ञेय की संपादकीय टीम में रघुवीर सहाय, सियाराम शरण गुप्त, शिवमंगल सिंह सुमन और श्रीपत राय थे और प्रिंट लाइन में इन सबका नाम छपता था।

मार्च 1930 में मुंशी प्रेमचंद ने 'हंस' पत्रिका निकाली। प्रेमचंद ने 'हंस' में श्रेष्ठ कविताएँ, कहानियाँ, नाटक, अनूदित साहित्य, साहित्यिक लेख व टिप्पणियाँ छापकर उसे भारतीय साहित्य का मुख्य पत्र ही बना दिया। 1932 में 'हंस' के अलावा साप्ताहिक 'जागरण' का भी संपादन भार प्रेमचंद पर आ पड़ा। 'जागरण' पहले पाक्षिक साहित्यिक पत्र के रूप में शिवपूजन सहाय के संपादन में 11 फरवरी, 1932 को निकला किंतु उसके बारह अंक निकालने के बाद सहाय जी ने उसे प्रेमचंद जी को हस्तांतरित कर दिया। मासिक 'हंस' और 'जागरण' साप्ताहिक प्रेमचंद घाटे के बावजूद निकालते रहे। हजारी प्रसाद द्विवेदी के संपादन में 1942 'विश्व भारती पत्रिका' शांति निकेतन से निकली। द्विवेदी जी उसे 1947 तक निकालते रहे। द्विवेदी जी के संपादन में उस पत्रिका ने रवींद्र साहित्य से हिंदी जगत को अवगत कराया। प्रवेशांक के संपादकीय में द्विवेदी जी ने लिखा था कि देश आज किस प्रकार नाना भाँति की संकीर्णताओं का शिकार बनता जा रहा है। उससे रक्षा पाने का सर्वोत्तम उपाय साहित्य ही है। रवींद्रनाथ टैगौर ने द्विवेदी जी के बारे में कहा था कि उनका ज्ञान हमलोग पाँच सौ वर्षों में भी सीख पाएँगे, कहना कठिन है।

टैगोर ने यह टिप्पणी इसलिए की थी क्योंकि द्विवेदी जी ने भारतीय दर्शन, अध्यात्म, साधना, इतिहास, संस्कृति और कला को खोख डाला था और वैदिक वांग्मय, इतिहास, संस्कृति, नीति शास्त्र, दर्शन शास्त्र और काव्य शास्त्र का द्विवेदी जी ने अपने साहित्य और साहित्यिक पत्रकारिता में जितना समर्थ उपयोग किया, उतना किसी अन्य साहित्यकार ने नहीं। मोहन सिंह सेंगर ने कलकत्ता से जुलाई 1948 में 'नया समाज' का प्रवेशांक निकाला। अस्सी पृष्ठों का। उसमें प्रकाशित पहली रचना मैथिलीशरण गुप्त की सोद्देश्य कविता 'एकलव्य' है। द्वितीय रचना हरिवंश राय बच्चन की दो शिक्षाप्रद कविताएँ-'बापू के फूलों का जुलूस' और 'आत्मशक्ति का पुजारी' है। इसी अंक में जैनेंद्र कुमार का लेख 'सर्वोदय की नीति', अंबिका प्रसाद वाजपेयी का लेख 'क्या यही स्वराज्य है', हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' छपा है। 'नया समाज' दस वर्षों तक निकलता रहा। उसे मैथिलीशरण गुप्त, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, महादेवी वर्मा, बनारसी दास चतुर्वेदी, अज्ञेय समेत हिंदी के सभी दिग्गजों का

रचनात्मक सहयोग मिलता रहा। सितंबर 1948 के अंक में भगवत शरण उपाध्याय, वृंदावन लाल वर्मा, रांगेय राघव, हजारी प्रसाद द्विवेदी, काका कालेलकर की रचनाएँ छपी हैं तो दिसंबर 1948 के अंक में रघुवीर सहाय, चंद्रकुँवर लाल की रचनाएँ छपी हैं। 'नया समाज' ने साहित्य के माध्यम से समाज को जाग्रत करने का प्रयास किया। 'नया समाज' दस वर्षों तक निकलने के बाद बंद हो गया।

बदरी विशाल पित्ती ने 1949 में हैदराबाद से 'कल्पना' का प्रकाशन शुरू किया। 'कल्पना' ने कई लेखक पैदा किए। कृष्ण बलदेव वैद के उपन्यास 'विमल उर्फ जाएँ तो जाएँ कहाँ' को उस दौर में सभी बड़े प्रकाशकों ने प्रकाशित करने तक से मना कर दिया था क्योंकि उसका कथ्य उन्हें पच नहीं रहा था, लेकिन बदरी विशाल ने उसे 'कल्पना' में छापा। वह उपन्यास हिंदी साहित्य की थाती बन गया है। मार्कंडेय 'चक्रधर' के उपनाम से लंबे समय तक 'कल्पना' के हर अंक में साहित्य समीक्षा का एक स्तंभ 'साहित्य धारा' लिखते रहे। उसी तरह 'कल्पना का सर्वेक्षण' नाम से विवेकी राय का साहित्य सर्वेक्षण धारावाहिक उसमें छपा। 'कल्पना' में सिर्फ साहित्य ही नहीं, ललित कलाओं पर समीक्षात्मक लेख भी छपते थे। बदरी विशाल ने रामकुमार, मकबूल फिदा हुसैन जैसे बड़े कलाकारों को 'कल्पना' से जोड़ा था। रघुवीर सहाय, प्रयाग शुक्ल, कमलेश, मुनींद्र जी जैसे लोग कभी न कभी 'कल्पना' की संपादकीय टीम का हिस्सा रहे। 'कल्पना' 1977 तक निकली। जिस साल 'कल्पना' निकली थी, उसी साल 1949 के जनवरी महीने में भारतीय ज्ञानपीठ ने कलकत्ता से मासिक 'ज्ञानोदय' पत्रिका निकाली थी।

लक्ष्मीचंद्र जैन और जगदीश के संपादन में 'ज्ञानोदय' ने नवलेखन के प्रयोगों को उदारतापूर्वक प्रस्तुत किया। रमेश बक्षी ने जब 'ज्ञानोदय' का संपादन भार सँभाला तो उन्होंने भी आधुनिकता से संबंधित विचार-विमर्श से परिपूर्ण निबंध लगातार प्रकाशित किए। 'ज्ञानोदय' फरवरी 1970 तक निकलती रही। 2003 से ज्ञानपीठ ने 'नया ज्ञानोदय' के नाम से पत्रिका का पुनर्प्रकाशन प्रारंभ किया। संप्रति उसके संपादक लीलाधर मंडलोई हैं। इसी तरह 'नई धारा' पिछले 67 वर्षों से पटना से निरंतर निकल रही है। शिव पूजन सहाय के संपादन में अप्रैल 1950 में उसका प्रकाशन राधिकारमण प्रसाद सिंह ने प्रारंभ किया था। सहाय जी ने 'नई धारा' के प्रवेशांक की संपादकीय में लिखा था, 'समाज को विद्रोही चाहिए। उससे अधिक विद्रोही चाहिए साहित्य को, कला को। 'नई

धारा' ऐसे विद्रोहियों की वाणी कहकर जिस दिन बदनाम की जाएगी, हमारी चरम सफलता का दिन तब होगा।' इस समय पत्रिका के संपादक डॉ. शिवनारायण हैं। वे पिछले 25 वर्षों से 'नई धारा' का संपादन कर रहे हैं। 'नई धारा' की तरह ही भारतीय विद्या भवन की मासिक पत्रिका 'नवनीत' 65 वर्षों से निरंतर निकल रही है। इस समय उसके संपादक विश्वनाथ सचदेव हैं। इस पत्रिका ने श्रेष्ठ साहित्य के प्रकाशन की धारावाहिकता अक्षुण्ण रखी है।

साहित्यिक पत्रिकाओं ने साहित्यांदोलनों में भी अहम भूमिका निभाई। नई कविता आंदोलन के विकास में 1954 में प्रकाशित 'नई कविता' नामक पत्रिका का उल्लेखनीय योगदान रहा। 'नई कविता' पत्रिका का संपादन जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी और विजयदेव नारायण साही करते थे। इसी तरह 'कहानी' और 'नई कहानी' पत्रिकाओं ने हिंदी में नई कहानी आंदोलन को जन्म दिया और 'सारिका' ने समानांतर कहानी को। भैरव प्रसाद गुप्त ने जनवरी 1955 से 'कहानी' पत्रिका के माध्यम से नई कहानी आंदोलन का नेतृत्व किया। 'कहानी' के नववर्षांक 1956 के अंक में पहली बार स्पष्टत: नई कहानी की बात उठाई गई। उस बीच छपी कई कहानियाँ कालजयी साबित हुईं। जैसे-'राजा निरबंसिया', 'रसप्रिया', 'गुलकी बन्नो', 'गदल', 'मवाली', 'हंसा जाई अकेला', 'डिप्टी कलक्टरी', 'चीफ की दावत', 'बादलों के घेरे' और 'सेब'। 'कहानी' पत्रिका ने अमरकांत, शेखर जोशी, राजेंद्र यादव और कमलेश्वर को प्रतिष्ठित किया। भैरव प्रसाद गुप्त 1955 से 1959 तक 'कहानी' पत्रिका के संपादक रहे। उसके बाद वे 'नई कहानियाँ' नामक पत्रिका का संपादन करने लगे जिसमें छपकर राम नारायण, प्रयाग शुक्ल, मन्नू भंडारी, कृष्ण बलदेव वैद, कृष्णा सोबती, रमेश बक्षी और उषा प्रियंवदा प्रतिष्ठित हुए।

बड़े मीडिया घरानों से प्रकाशित पत्रिकाओं की भूमिका की बात करें तो हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' का प्रकाशन 1950 से शुरू हुआ। 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' लगभग 42 वर्ष तक निकलता रहा, जिसका संपादन मुकुटबिहारी वर्मा, बांके बिहारी भटनागर, रामानंद दोषी, मनोहर श्याम जोशी, शीला झुनझुनवाला, राजेंद्र अवस्थी तथा मृणाल पांडे ने किया। मनोहर श्याम जोशी ने 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' को पत्रकारीय उत्कर्ष प्रदान किया। टाइम्स ऑफ इंडिया समूह ने 'धर्मयुग' जैसी उत्कृष्ट पत्रिका निकाली। 'धर्मयुग' का जन्म 'नवयुग' की कोख से हुआ। 1950 में बेनेट एंड कोलमैन ने बंबई से 'नवयुग' से संयुक्त कर रविवार 8 अक्टूबर, 1950 से 'धर्मयुग' का

प्रकाशन शुरू किया। 'धर्मयुग' का इलाचंद्र जोशी एवं हेमचंद्र जोशी का संपादक काल अल्पकालीन रहा। 'धर्मयुग' को शैशव से किशोरावस्था तक पहुँचाने का श्रेय सत्यदेव विद्यालंकार को जाता है। उन्होंने एक दशक तक 'धर्मयुग' का संपादक किया। 'झूठा सच', 'आपका बंटी', 'आधे-अधूरे', 'सुखदा', 'गली आगे मुड़ती है', 'तेरी मेरी उसकी बात', 'इदन्नमम', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'मानस के हंस', 'खंजन नयन' जैसी प्रसिद्ध रचनाएँ 'धर्मयुग' ने ही छापीं। इसके अलावा विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ 'दुराचारिणी', 'भीगी पलकें', 'मर्यादा की रक्षा', यशपाल की कहानी 'सामंती कृपा', जैनेंद्र की कहानी श्ये पल' व उपन्यास 'सुखदा', वृंदावन लाल वर्मा की 'इस हाथ लें, उस हाथ दें', डॉ. रामकुमार वर्मा के नाटक-'दुर्गावती, रात का रहस्य', भवानी प्रसाद मिश्र की 'परछाइयाँ' और राजेंद्र यादव की कहानी 'कुलटा' धर्मयुग में छपकर ही चर्चित हुई थीं। गोपाल सिंह नेपाली, दिनेश नंदिनी, रामधारी सिंह दिनकर, गोपाल दास नीरज, रांगेय राघव, हरिवंश राय बच्चन, रमानाथ अवस्थी, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, शिवकुमार श्रीवास्तव, वीरेंद्र मिश्र आदि की कविताएँ नियमित रूप से 'धर्मयुग' में प्रकाशित होती थीं। रवींद्रनाथ ठाकुर, सरोजिनी नायडू जैसे कवियों की कविताओं के अनुवाद प्रमुखता से प्रकाशित होते थे। 'धर्मयुग' का 16 अगस्त, 1956 का अंक 'कविता अंक' था। 1957 में देशी विदेशी कविताओं पर आधारित लेखों की शृंखला का प्रकाशन और 1958 का व्यंग्य विशेषांक भी चर्चित रहा था।

6 मार्च, 1960 को धर्मवीर भारती 'धर्मयुग' के संपादक हुए और 28 नवंबर, 1987 तक यानी 27 वर्षों तक उन्होंने 'धर्मयुग' का संपादन किया। उस कालखंड में 'धर्मयुग' और धर्मवीर भारती एक दूसरे के पर्याय बन गए। भारती ने उच्च कोटि का साहित्य प्रकाशित कर 'धर्मयुग' को श्रेष्ठ राष्ट्रीय साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिका बनाया। धर्मवीर भारती के संपादन काल में 60-70 दशक में वसंत ऋतु आई (ख्वाजा अहमद अब्बास), अरक्षणीया (राजकमल चौधरी) उत्सव, मलयालम कहानी, (तकषी शिवशंकर पिल्लै) अंतरपट, (गुजराती कहानी, हसुनायक) रात आठ बजे वाली सवारी (बांग्ला कहानी, विमल मित्र), समय (यशपाल), सिफारिशी चिट्ठी (भीष्म साहनी), बिल्लियाँ (मृणाल पांडेय), कल्कि अवतार (शिव प्रसाद सिंह), बयान (कमलेश्वर), माँ (बांग्ला कहानी-विमल मित्र), ऊब (एक उलजलूल कहानी-छेदी लाल), बदलाव (विवेकी राय), चतुरी लाल (बांग्ला

कहानी-बनफूल), अरस का पावा (सलमा सिद्दकी), झुका हुआ आकाश (उड़िया कहानी-नंदनी सत्यपथी), प्रेत (गंगा प्रसाद विमल), प्रतीक्षा (लंबी कहानी-शिवानी), दिलबाग सिंह की हत्या (सुदर्शन सिंह मजीठिया), बौना और चाँद (देशज प्रसाद मिश्र) 'धर्मयुग' में छपकर ही चर्चित हुई थीं।

धर्मवीर भारती के संपादन काल में 'कथा दशक'शृंखला का सफल आयोजन 'धर्मयुग' की उल्लेखनीय उपलब्धि थी। उसमें कथाकार अपनी कहानियों के पीछे की कहानी भी बताते थे। 'कथा दशक'शृंखला के तहत उस दशक के सभी चर्चित कथाकारों जैसे उषा प्रियंवदा, कमलेश्वर, कृष्ण बलदेव वैद, कृष्णा सोबती, नरेश मेहता, फणीश्वरनाथ रेणु, भीष्म साहनी, मार्कंडेय, मोहन राकेश, मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, अमरकांत, रघुवीर सहाय, राजेंद्र यादव, राजकमल चौधरी, राजकुमार, लक्ष्मी नारायण लाल, विजय चौहान, शरद जोशी, ज्ञानी, शिव प्रसाद सिंह, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, सर्वेश्वर दयाल, सक्सेना, हरिशंकर परसाई, रमेश बक्षी आदि की कहानियाँ प्रस्तुत की गईं। अनेक श्रेष्ठ उपन्यास 'धर्मयुग' में धारावाहिक प्रकाशित हुए। 'धर्मयुग' ने महिला कथाकारों एवं कवयित्रियों को भी आगे बढ़ाया। शिवानी, मृणाल पांडेय, सूर्यबाला, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, कुर्रतुल उन हैदर, पद्मा सचदेव, मैत्रेयी पुष्पा, अमृता प्रीतम इस्मत चुगताई, महादेवी वर्मा, ममता कालिया, मालती जोशी, नासिरा शर्मा, कमला चमोला, शांति मेहरोत्रा, कुंदनिका कापड़िया, इंदिरा चंद्रा, सुधा अरोड़ा, उषा महाजन, आभा दयाल, मृदुला हसन, शुभदा मिश्र की रचनाएँ धर्मयुग में निरंतर प्रकाशित हुईं। भारती के बाद गणेश मंत्री और मंत्री जी के बाद विश्वनाथ सचदेव उसके संपादक बने। 'धर्मयुग' पत्रिका 47 वर्षों तक निकलती रही।

टाइम्स ऑफ इंडिया समूह ने ही 1965 में साप्ताहिक 'दिनमान' पत्रिका निकाली थी। अज्ञेय उसके संस्थापक संपादक थे। उनके संपादन में 'दिनमान' जल्द ही राष्ट्रीय स्तर की प्रतिष्ठित पत्रिका बन गई थी। उसका आधार वाक्य था 'राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान।' उसने पाठकों में राजनीतिक और सामाजिक चेतना का संचार किया। 'दिनमान' ने नई शब्दावली चलाई। अज्ञेय की मान्यता थी कि व्यक्तियों और स्थानों के नामों को जहाँ तक हो सके, वैसे ही लिखा जाए, जैसा उन देशों में बोला जाता है। मास्को शब्द जब पूरे भारत में चल गया था, उस समय 'दिनमान' मस्क्वा लिखता था। इसी तरह चिली को 'दिनमान' चिले लिखता था। सौ किलोग्राम के लिए जब कुएँटल शब्द चला तो

दिनमान ने उसे कुंतल लिखना शुरू किया। अज्ञेय ने 'दिनमान' के लिए वर्तनी के लिए जो नियम स्थिर किए थे, उनमें कुछ प्रमुख हैं-1. विभक्तियाँ सर्वनाम के साथ लिखी जाएँ-जैसे–मैंने, हमने, किससे, उससे। 2. क्रिया पद 'कर' मूल क्रिया से मिलाकर लिखा जाए-जैसे–जाकर, जमकर, हँसकर। 3. चंद्रबिंदु के स्थान पर अनुस्वार का ही प्रयोग किया जाए-जैसे–हंसना, मां, पहुँचना। 4. प्रदेशों के नाम मिलाकर लिखे जाए-जैसे–उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश। 5. बड़े संवाद के लिए दोहरा उद्धरण चिह्न और छोटे उद्धरणों तथा वाक्याशों के लिए एकल उद्धरण चिह्न यथेष्ट है। 6. संस्कृत के शब्दों में जहाँ 'यी' का प्रयोग होता है, वहाँ 'ई' का प्रयोग उचित नहीं, जैसे-स्थायी, अनुयायी। अज्ञेय ऐसे संपादक थे जिन्होंने हर जगह अपने उत्तराधिकारी खुद बनाए। इसीलिए उनके संपादक पद से हटने के बाद भी संबद्ध समाचार पत्र या पत्रिका में उत्तराधिकार का कोई संकट कभी खड़ा नहीं हुआ। 'दिनमान' की अपनी संपादकीय टीम में उन्होंने रघुवीर सहाय, मनोहर श्याम जोशी, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना को शामिल किया था। इसीलिए 1969 में अज्ञेय ने 'दिनमान' छोड़ा, उसके बाद भी वह पुराने तेवर के साथ ही निकलता रहा।

सन् 1973 में अज्ञेय ने 'प्रतीक' को नए सिरे से निकाला। इस बार उसका नाम 'नया प्रतीक' था। वह मासिक पत्रिका भी नई प्रतिभाओं का खुला मंच बनी। अज्ञेय 1977 के अगस्त में दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के संपादक बने और 1979 तक वहाँ रहे। उन्होंने 'नवभारत टाइम्स' को तत्कालीन अंग्रेजी दैनिक पत्रकारिता का विकल्प बनाने की चेष्टा की। यही काम परवर्ती काल में विद्यानिवास मिश्र ने किया। विद्यानिवास मिश्र 1992 से 1994 यानी दो वर्ष तक हिंदी दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के संपादक थे। उन्होंने दस वर्षों तक मासिक 'साहित्य अमृत' का भी संपादन किया। बड़े मीडिया समूहों द्वारा निकाली गईं 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' और 'दिनमान' का हिंदी समाज पर व्यापक सांस्कृतिक प्रभाव पड़ा था। वे पत्रिकाएँ बंद हो चुकी हैं, ऐसे में मासिक पत्रिका 'अहा जिंदगी' का पिछले तेरह वर्षों से हो रहा नियमित प्रकाशन तात्पर्यपूर्ण है। भास्कर समूह ने यशवंत व्यास के संपादन में 2004 में मासिक पत्रिका 'अहा जिंदगी' निकाली थी। संप्रति आलोक श्रीवास्तव उसके संपादक हैं।

राजकमल प्रकाशन समूह ने 1951 में 'आलोचना' पत्रिका शुरू की थी। शिवदान सिंह चौहान उसके संस्थापक संपादक थे। 'जनयुग' के संपादक रह

चुके तथा सहारा के प्रधान संपादकीय सलाहकार रह चुके नामवर सिंह 'आलोचना' के प्रधान संपादक हैं। संपादन नामवर जी के लिए कविता अथवा आलोचनात्मक निबंध लिखने जैसा सर्जनात्मक कार्य ही रहा है। यही बात राजेंद्र यादव, ज्ञानरंजन तथा कमलेश्वर के लिए भी सही है। राजेंद्र यादव ने 1986 में 'हंस' का संपादन शुरू किया और उसमें छपकर ही उदय प्रकाश, संजीव, शिवमूर्ति, प्रियंवद, सृंजय, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा आदि प्रतिष्ठित हुए। राजेंद्र यादव ने 'हंस' के जरिए दलित और स्त्री विमर्श को आंदोलन के रूप में चलाया और चर्चा के केंद्र में ला खड़ा किया। राजेंद्र यादव के निधन के बाद 'हंस' संजय सहाय के संपादन में निकल रही है। 'पहल' का 108 वाँ अंक जुलाई 2017 में आया है। ज्ञानरंजन उसे 1973 से ही निकाल रहे हैं। कमलेश्वर ने 'सारिका' का संपादन बहुत कुशलता से किया था और उसके माध्यम से हिंदी में समानांतर कहानी आंदोलन का नेतृत्व भी किया था। परवर्ती काल में वे दैनिक भास्कर के संपादकीय सलाहकार भी बने थे। 'अमृत प्रभात' और 'जनसत्ता' के साहित्य संपादक रहे मंगलेश डबराल निकट अतीत तक 'सहारा समय', 'पब्लिक एजेंडा' से जुड़े रहे। इस समय वे 'शुक्रवार' के साहित्य संपादक हैं। 'शुक्रवार' को विष्णु नागर का भी संपादकीय संस्पर्श मिला था। प्रयाग शुक्ल ने 'रंगप्रसंग', पंकज बिष्ट ने 'समयांतर', अखिलेश ने 'तद्भव' और ज्योतिष जोशी ने 'समकालीन कला' को अपनी संपादन दृष्टि से अलग पहचान दी है।

प्रभाकर श्रोत्रिय ने 'अक्षरा', 'साक्षात्कार', 'वागर्थ' और 'नया ज्ञानोदय' का संपादन किया और हर जगह अपनी अमिट छाप छोड़ी। 'वागर्थ' पत्रिका 1995 से ही निकल रही है। प्रभाकर श्रोत्रिय, रवींद्र कालिया और एकांत श्रीवास्तव के बाद अब शंभुनाथ उसके संपादक हैं। हरि नारायण के संपादन में मासिक 'कथादेश' 36 वर्षों से निरंतर निकल रही है। देशबंधु समाचार पत्र समूह से मासिक पत्रिका 'अक्षर पर्व' दो दशकों से निरंतर निकल रही है। सर्वमित्रा सुरजन उसके संपादक हैं। 'अक्षर पर्व' पत्रिका के वर्ष में दो विशेषांक भी निकालते हैं। सितंबर 2017 में प्रेम भारद्वाज के संपादनवाली 'पाखी' के ठीक नौ साल पूरे हुए। सितंबर 2008 में उसका प्रवेशांक आया था। एक समय 'अब' निकालने वाले शंकर संप्रति द्विमासिक 'परिकथा' निकाल रहे हैं। विभूति नारायण राय 'वर्तमान साहित्य' निकाल रहे हैं। हरिशंकर परसाई और कमला प्रसाद के बाद अब राजेंद्र शर्मा के संपादन में 'वसुधा' निकल रही है। इसी कड़ी

में 'मधुमती', 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'गवेषणा', 'इंद्रप्रस्थ भारती', 'बहुवचन', 'पुस्तक वार्ता', 'आजकल', 'त्रिपथगा', 'भाषा', 'उत्तर प्रदेश', 'पूर्वग्रह', 'समकालीन सृजन', 'संवेद', 'समास', 'समीक्षा', 'बया', 'अपेक्षा', 'कसौटी', 'कल के लिए', 'कथा', 'कथाक्रम', 'समालोचना', 'लमही', 'अभिव्यक्ति', 'संचेतना', 'अभिनव कदम', 'परिवेश', 'साम्य', 'साखी', 'संबोधन', 'पल-प्रतिपल', 'दस्तक', 'पुरुष', 'विपक्ष', 'उद्भावना', 'मंतव्य', 'परिवेश', 'दस्तावेज', 'बया', 'स्त्री काल', 'इकाई', 'गल्पभारती', 'संदर्भ', 'परिदृश्य', 'समवेत', 'समिधा', 'विध्वंस,' 'अर्थात', 'धूमकेतु', 'बोध' जैसी पत्रिकाओं का उल्लेख लाजिमी है। पत्रिकाओं की दुनिया में नया चलन ई-पत्रिकाओं और ब्लॉग का है जिसमें बड़ी शीघ्रता से पाठ्य सामग्री सारी दुनिया में पाठकों तक पहुँच जाती है।

साहित्यिक पत्रकारिता के नए आयाम

साहित्य और साहित्यिक पत्रकारिता में थीम का महत्त्वपूर्ण होना स्वयं में समस्यामूलक है। हिन्दी की अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं ने फासीवाद, प्रेम,बेबफाई, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद,भूमंडलीकरण आदि पर विशेषांक निकाले हैं। इन सभी विशेषांकों का एक ही साझा संदेश है कि हम विषय के बारे में, अपने बारे में कितना जानते हैं। इससे थीम केन्द्र में आई है और व्यक्ति का स्थानान्तरण हुआ है।

थीम के हिमायती भूल गए हैं कि साहित्य का थीम के आधार पर प्रसार नहीं होता। इससे अनुकरण,पैरोडी और साहित्यानुकरण होता है।

एक पत्रिका ने युवा रचनाकार विशेषांक निकाला तो बाकी पत्रिकाएं अनुकरण करके युवा लेखन पर विशेषांक निकाल रही हैं। किसी ने स्त्री या दलित पर विशेषांक निकाला तो बाकी पत्रिकाएं उससे बेहतर विशेषांक निकाल रही हैं। इस विशेषांक संस्कृति ने थीम को प्रतिष्ठित किया है विषय और व्यक्ति को अपदस्थ किया है। साहित्य में इस बहाने व्यक्ति का बहिष्कार हुआ है। विषय का अंत हुआ है।

पहले साहित्य और साहित्यिक पत्रिकाओं में लेखक के विजडम और मासकल्चर के रूपों पर जोर था। इन दिनों साहित्य में आकर्षक,इकसार और रूढ़िबद्ध विषयों का महिमामंडन चल रहा है।

मसलन् यदि किसी दलित ने एक खास अंदाज में अपनी आत्मकथा में कुछ खास पक्षों को उठाया है तो हठात् दलित आत्मकथाओं में मिलते -जुलते चित्रों की बाढ़ आ गयी है। दलित और स्त्री आत्मकथाओं में एक खास किस्म का अंधानुकरण साफतौर पर देख सकते हैं। एक जमाना था साहित्य में विषय की विशिष्टता थी। विशिष्टता की जगह इन दिनों अंधानुकरण हो रहा है।

विषय से लेकर समस्या के ट्रीटमेंट तक इकसारता के कारण साहित्य से व्यक्ति की विदाई और विशिष्टता का अंत हो गया है। पहले पाठ का संबंध ऑब्जेक्ट के साथ था इन दिनों ऑब्जेक्ट की जगह फैशन ने ले ली है। थीम ने ले ली है। इन दिनों साहित्य थीम से थीम की ओर बढ़ रहा है। थीम से पैदा होने वाला साहित्य स्टीरियोटाईप और बोगस होता है चाहे उसे कितने ही बड़े लेखक ने लिखा हो। साहित्य का आधार अब जीवन नहीं थीम है और यही वह बिंदु है जहां साहित्य का अंत हो जाता है। दूसरी प्रवृत्ति निर्धारणवाद की है। इसमें स्त्री,युवा,दलित आदि को निर्धारणवादी ढ़ंग से पेश किया जा रहा है। अब कोई भी रचना मर्दवाद के आतंक-उत्पीड़न, वर्णाश्रम व्यवस्था के उत्पीड़न,भूमंडलीकरण के उत्पीड़न के बिना नहीं लिखी जा रही।

साहित्य को 'स्पेस' के संदर्भ में देखें तो ऐसी रचनाएं ज्यादा आ रही हैं जिनमें 'घर' का चित्रण ज्यादा है। व्यक्तिगत,करीबी बातों और लोगों का चित्रण ज्यादा हो रहा है। अब ऐसी रचनाएं कम लिखी जा रही हैं जिनमें सार्वजनिक स्पेस हो। साहित्य की स्टाईल की बजाय खास अंचल या भौगोलिक क्षेत्र पर बातें हो रही हैं।

एक जमाना था हिन्दी में लेखकगण समय पर बातें करते थे,युग पर बातें करते थे, अब समय को स्थान ने अपदस्थ कर दिया है। स्पेस का विकृतिकरण हो रहा है। इसे घर,बाहर, शहर,कामकाजी स्थान आदि के संदर्भ में देख सकते हैं।

स्त्री और दलित पर लिखी रचनाओं में स्टाइल के रूपों में पुरानी पितृसत्तात्मक अभिव्यक्ति शैली को चुनौती दी जा रही है। पुरानी पितृसत्तात्मक शैली और नयी शैली में क्या अंतर है। इस पर बातें नहीं हो रही हैं। इसी तरह दलित लेखन में कामुकता और वर्चस्व की स्मृतियों की व्यापक अभिव्यक्ति हुई है। उनके विभिन्न आख्यान या रूपक सामने आए हैं।

कामुकता और वर्चस्व की स्मृतियों का आना इस बात का संकेत है कि हमारा लेखक मीडिया इमेजों से काफी प्रभावित है। मीडिया इमेजों के प्रभाव

के कारण ही स्मृतियों को साहित्य में अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करता है। स्मृतियों का साहित्य मीठा होता है और उसकी खपत आसानी से हो जाती है। साहित्य में चीजों को माल बनाकर पेश करने की प्रवृत्ति ने उसकी खपत बढ़ा दी है। इस क्रम में संस्कृति और यथार्थ का अंतर मिटा है।

खासकर स्त्री और दलित केन्द्रित आत्मकथाओं में यथार्थ और संस्कृति का अंतर खत्म हो गया है। इन आत्मकथाओं के जरिए स्त्री के यथार्थ की बजाय संस्कृति पर ज्यादा बातें हो रही हैं। चित्रण में भी यथार्थ गौण है संस्कृति प्रमुख है। साहित्य के चित्रण में यथार्थ की जगह संस्कृति और विचार विशेष का आना और यथार्थ का गायब हो जाना साहित्य के वस्तुकरण की प्रक्रिया को सामने लाता है। इस तरह के साहित्य की रूपान्तरणकारी भूमिका नहीं होती। वह बिकता ज्यादा है,उसकी खपत ज्यादा होती है,वह आलोचनात्मक नजरिए से रहित होता है। साहित्य का वस्तुकरण वस्तुतः परवर्ती पूंजीवाद के सास्कृतिक तर्कों की विजय है।

फ्रेडरिक जेम्सन ने लिखा है कि नए युग की विशेषता है कि हमारे कानों में इतिहास का आवाजें आनी बंद हो जाती हैं। इतिहास के प्रति बहरापन एक सामान्य फिनोमिना है। नए युग का विचारशास्त्र संस्कृति में सत्य की खोज कर रहा है। संस्कृति के परे सत्य के किसी भी आयाम को ये लोग नोटिस ही नहीं लेते।

सार्वजनिक इतिहास से हमारा संबंध कमजोर हुआ है और नए किस्म की निजी सामयिकता से उसे जोड़ दिया गया है। इसके कारण एक खास किस्म की उन्मादी भाषा का प्रयोग हो रहा है। साहित्य और मीडिया में शुद्ध भौतिक अनुभवों को उभारा जा रहा है। साहित्य में दैनन्दिन जीवन के सतही मनो अनुभवों और स्पेस केन्द्रित सांस्कृतिक भाषा के वैविध्यपूर्ण चित्रों की बाढ़ आयी हुई। बेचैनी के चित्र यथार्थ के बिना आ रहे हैं। नई संचार तकनीक का साहित्य पर गहरा असर हुआ है। नई तकनीक पुनर्उत्पादन की तकनीक है। फलतः साहित्य सृजन कम और उसका पुनर्उत्पादन ज्यादा हो रहा है।

उत्तर आधुनिक अवस्था में 'साहित्य के अंत' की भी घोषणा की गई है। इसका वास्तव में क्या अर्थ है इस ओर हमारे समीक्षकों ने कभी गंभीरता से ध्यान नहीं दिया। लेकिन एक परिवर्तन आया है साहित्य को विधाओं में वर्गीकृत करके पढ़ने की परंपरा का अंत हुआ है। साहित्य के पुराने वर्गीकरण और मानक अप्रासंगिक हो गए हैं।

मसलन् एक जमाना था साहित्य की कोटि में अखबार का लेखन नहीं आता था। लेकिन इधर यह नहीं कह सकते। सवाल उठता है स्व. प्रभाष जोशी का हिन्दी गद्य साहित्य का हिस्सा है या नहीं ? इसी तरह बड़े पैमाने पर साहित्येतर समस्याओं पर हिन्दी में लिखा जा रहा है वह साहित्य का हिस्सा है या नहीं ? विधाओं के दायरे भी टूट हैं, साहित्य में आए दिन नई विधाएं जन्म ले रही हैं। कल तक जिस लेखन को विधा नहीं मानते थे उसे अब विधा मानते हैं।

मसलन,निजी पत्र साहित्य का हिस्सा नहीं थे। लेकिन रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना'में पत्रों का इस्तेमाल किया और पत्रों का ही एक खण्ड बना दिया। अपनी आत्मकथा में भी उन्होंने यही पद्धति अपनायी। इसी तरह नवजागरण संबंधी बहस में भी उन्होंने 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' नामक किताब लिखकर बड़े पैमाने पर साहित्येतर विषयों को साहित्य बना दिया। यही काम अपने से तरीके नामवर सिंह ने आलोचना पत्रिका के पुनर्प्रकाशन के साथ किया और उन्होंने आलोचना का फासीवाद विरोधी विशेषांक निकाला। कहने का तात्पर्य है कि साहित्य अब पुराने अर्थ को त्याग चुका है। नए रूप में साहित्य को लेखन के नाम से जाना जाता है। इसमें अब साहित्य और साहित्येतर का भेद नहीं रह गया है। विधाओं का वर्गीकरण नहीं रह गया है। विधाओं का भी लेखन की अवधारणा में विलय हो चुका है। अब सब कुछ लेखन है।

पहले साहित्य की सीमाएं थीं आज साहित्य की कोई सीमा नहीं है। अब साहित्य में सब कुछ शामिल है। साहित्य में यह परिवर्तन नयी संचार तकनीक आने के साथ आया है। कम्प्यूटर के आने साथ आया है। जिस तरह कम्प्यूटर में उससे पहले के सभी माध्यमों का विलय हो गया है, कनवर्जन हो गया। ठीक वैसे ही लेखन में सब विधाओं का विलय हो गया है। पहले रचना का एक ही अर्थ होता था,यही कहा जाता था लेखक का काम है–सत्य की खोज करना। लेकिन अब किसी भी रचना का एक अर्थ नहीं है। बल्कि अनेक अर्थों की चर्चा हो रही है। एक सत्य की नहीं एकाधिक सत्य की चर्चा हो रही है। एक व्याख्या नहीं व्याख्याओं का अनंत आकाश खुल गया है। इस पूरी प्रक्रिया में आलोचना, सत्य,व्याख्या आदि के संदर्भ में 'सापेक्षतावाद' घुस आया है। अब हम सापेक्ष रूप में विचार करते हैं। सत्य, कथ्य और व्याख्या की एकाधिक अस्मिताओं पर जोर दिया जा रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में देखें तो पुराने साहित्य की धारणा का अंत हो गया है।

'साहित्य के अंत' की प्रक्रिया में 'साहित्य' पर नहीं,साहित्य के सवालों पर बहस हो रही है। 'साहित्य' पर जब बातें कर रहे थे तो साहित्य समीक्षा के आधार पर लगातार कृति का विवेचन कर रहे थे,समीक्षा या आलोचना का विकास कर रहे थे। साहित्य के नियमों को लागू करते हुए बता रहे थे कि साहित्य की सीमा क्या है और रचना में साहित्येतर क्या है ? साहित्य को साहित्येतर से दूर रखने में आलोचना मदद कर रही थी। लेकिन अब ऐसा नहीं हो रहा।

हमारे साहित्यिक बंधु साहित्य के सवालों पर चर्चा करते हुए साहित्यालोचना के दायरे के बाहर चले गए हैं। अब साहित्य और साहित्येतर का विभाजन खत्म हो गया है। यह विभाजन और किसी ने नहीं साहित्य के दो महान आलोचकों रामविलास शर्मा और नामवर सिंह ने किया है। जब आप साहित्य की बजाय साहित्य के सवालों पर चर्चा रहे होते हैं तो साहित्य की सीमाओं को खत्म करते हैं। इस क्रम में साहित्य की अपनी कोई निजी पहचान नहीं रह जाती। अब तक यह कहा जाता था कि साहित्य की अपनी पहचान या अस्मिता होती है। लेकिन यह पहचान अब खत्म हो गयी है। अब हम नहीं जानते कि साहित्य की अस्मिता क्या है ? पहचान क्या है ? यही वह जगह है जहां पर साहित्यालोचना की जगह साहित्य सैद्धांतिकी आ गयी है। अब ज्यादा से ज्यादा साहित्यालोचना नहीं साहित्य की थ्योरी के आधार पर चर्चाएं हो रही हैं।

पहले 'आलोचना' लिखी जाती थी अब 'परिप्रेक्ष्य' की बातें हो रही हैं। आलोचना को परिप्रेक्ष्य ने अपदस्थ कर दिया है। इसका गहरा असर हुआ है। अब साहित्य में अनेक परिप्रेक्ष्यों के आधार पर मूल्यांकन किया जा रहा है। जैसे मार्क्सवाद,संरचनावाद,उत्तर आधुनिकतावाद, स्त्रीवाद आदि।

मजेदार बात यह है कि हिन्दी में आलोचना के मसलों को पूरी तरह दुरूस्त भी नहीं कर पाए थे कि अचानक आलोचना को परिप्रेक्ष्य ने अपदस्थ कर दिया। अब परिप्रेक्ष्य के आधार पर साहित्य में व्यक्त सत्य को तय किया जा रहा है। परिप्रेक्ष्य अलग हैं तो सत्य भी भिन्न होगा। इसके कारण दुनिया भी अलग दिखाई देगी। दुनिया का अलग-अलग हिस्सा दिखाई देगा।

मसलन् स्त्रीवादी और मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य को ही लें,इसके मानने वाले 'लिंग' और 'वर्ग' के अलावा और किसी भी बात पर ध्यान नहीं देते। वे अन्य पक्षों की अनदेखी करते हैं। व्यवस्था में 'लिंग' और 'वर्ग' के अलावा भी चीजें हैं जिन्हें हमें देखना चाहिए। वे साहित्य को 'लिंग' और 'वर्ग' के सीमित दायरे में रखकर देखते हैं, साहित्य का दायरा बहुत बड़ा है,स्त्री साहित्य और

मार्क्सवादी साहित्य या दलित साहित्य के दायरे की तुलना में। फलतः साहित्य में टुकड़ों या अंशों पर बातें हो रही हैं,समग्रता में साहित्य पर बातें नहीं हो रहीं। इसी अर्थ में साहित्य का अंत हुआ है।

परिप्रेक्ष्य में देखने की यह खूबी काफी पहले से चली आ रही है इसमें उत्तर आधुनिकतावाद के आने से मामला दूसरी दिशा में चला गया है। जितने भी परिप्रेक्ष्य प्रचलन में हैं उनमें राजनीति गहरे समायी हुई है। राजनीति के बिना इन पर बातें करना संभव नहीं है।

इस समूची प्रक्रिया का साहित्य के पठन-पाठन पर भी गहरा असर हुआ है। अब साहित्य के विभाग नहीं होते, बल्कि उनकी जगह साहित्यिक अध्ययन के विभाग होते हैं। साहित्यिक अध्ययन विभाग बनते ही अनुसंधान और अध्ययन के क्षेत्र में हिंसा,दमन, उत्पीडन, विभाजन आदि राजनीतिक केटेगरी का अध्ययन प्रमुख हो गया है।

अब कोई शोध ऐसा नहीं होता जिसका ठोस आधार राजनीति न हो। अब प्रत्येक निर्णय राजनीतिक आधारों पर हो रहा है। राजनीतिक आधार पर सोचने का परिणाम निकला है कि अब कोई चीज निश्चित नहीं है। टिकाऊ नहीं है। राजनीति के अलावा अन्य पहलुओं को छिपाया जा रहा है।

जब कोई चीज निश्चित नहीं है तो अब अनुमानाधारित दर्शन,काल्पनिक साहित्य और रेडिकल गणित पर जोर दिया जा रहा है और इसी क्रम में गेम या खेल की सैद्धांतिकी सामने आई है।

गेम थ्योरी के आधार पर खास सीमा के बाद ज्ञान,विचार,अनुभव आदि को ठेल दिया जाता है। लेकिन राजनीतिक एक्शन को लक्ष्य से नहीं हटाया जा सकता। चूंकि चीजें राजनीति से जुड़ी हैं। अतः संदर्भ को वास्तव होना चाहिए। बिना वास्तव संदर्भ के राजनीति की व्याख्या संभव नहीं होती। इस क्रम में वास्तव पर संदेह नहीं किया जा सकता। अथवा यह भी कह सकते हैं कि कुछ सवाल उठाए ही नहीं जा रहे। ऐसी स्थिति में जो भी मूल्यांकन करेंगे उसके लिए वास्तव के बाहर जाने की जरूरत पड़ेगी।

हमें चलताऊ तुलनाओं, प्रतिगामी उपेक्षाभाव, अतार्किकता, सांस्थानिकता, बौद्धिकता विरोध, अराजनीति आदि से बचना होगा। वास्तव पर निर्भर आलोचना लिखेंगे तो राजनीति और स्कॉलरशिप दोनों में संतुलन बना रहेगा।

3

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। भारतेन्दु हिन्दी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। जिस समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अविर्भाव हुआ, देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। अंग्रेजी शासन में अंग्रेजी चरमोत्कर्ष पर थी। शासन तंत्र से सम्बन्धित सम्पूर्ण कार्य अंग्रेजी में ही होता था। अंग्रेजी हुकूमत में पद लोलुपता की भावना प्रबल थी। भारतीय लोगों में विदेशी सभ्यता के प्रति आकर्षण था। ब्रिटिश आधिपत्य में लोग अंग्रेजी पढ़ना और समझना गौरव की बात समझते थे। हिन्दी के प्रति लोगों में आकर्षण कम था, क्योंकि अंग्रेजी की नीति से हमारे साहित्य पर बुरा असर पड़ रहा था। हम गुलामी का जीवन जीने के लिए मजबूर किये गये थे। हमारी संस्कृति के साथ खिलवाड़ किया जा रहा था। ऐसे वातावरण में जब बाबू हरिश्चन्द्र अवतारित हुए तो उन्होंने सर्वप्रथम समाज और देश की दशा पर विचार किया और फिर अपनी लेखनी के माध्यम से विदेशी हुकूमत का पर्दाफाश किया।

जीवन परिचय

युग प्रवर्तक बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म काशी नगरी के प्रसिद्ध 'सेठ अमीचंद' के वंश में 9 सितम्बर सन् 1850 को हुआ। इनके पिता 'बाबू गोपाल चन्द्र' भी एक कवि थे। इनके घराने में वैभव एवं प्रतिष्ठा थी। जब इनकी अवस्था मात्र 5 वर्ष की थी, इनकी माता चल बसीं और दस वर्ष की आयु में पिता जी भी चल बसे। भारतेन्दु जी विलक्षण प्रतिभा के व्यक्ति थे। इन्होंने अपने

परिस्थितियों से गम्भीर प्रेरणा ली। इनके मित्र मण्डली में बड़े-बड़े लेखक, कवि एवं विचारक थे, जिनकी बातों से ये प्रभावित थे। इनके पास विपुल धनराशि थी, जिसे इन्होंने साहित्यकारों की सहायता हेतु मुक्त हस्त से दान किया। इनकी साहित्यिक मण्डली के प्रमुख कवि थे–

(1) बालकृष्ण भट्ट

(2) प्रताप नारायण मिश्र,

(3) बदरी नारायण उपाध्याय 'प्रेमधन' आदि।

बाबू हरिश्चन्द्र बाल्यकाल से ही परम उदार थे। यही कारण था कि इनकी उदारता लोगों को आकर्षित करती थी। इन्होंने विशाल वैभव एवं धनराशि को विविध संस्थाओं को दिया है। इनकी विद्वता से प्रभावित होकर ही विद्वतजनों ने इन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि प्रदान की। अपनी उच्चकोटी के लेखन कार्य के माध्यम से ये दूर-दूर तक जाने जाते थे। इनकी कृतियों का अध्ययन करने पर आभास होता है कि इनमें कवि, लेखक और नाटककार बनने की जो प्रतिभा थी, वह अद्‌भुत थी। ये बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न साहित्यकार थे।

हिंदी पत्रकारिता का दूसरा युग

हिंदी पत्रकारिता का दूसरा युग 1873 से 1900 तक माना जाता है। इस युग के एक छोर पर भारतेंदु का 'हरिश्चंद्र मैंगजीन' था ओर नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अनुमोदन प्राप्त 'सरस्वती'। इन 27 वर्षों में प्रकाशित पत्रों की संख्या 300-350 से ऊपर है और ये नागपुर तक फैले हुए हैं। अधिकांश पत्र मासिक या साप्ताहिक थे। मासिक पत्रों में निबंध, नवल कथा (उपन्यास), वार्ता आदि के रूप में कुछ अधिक स्थायी संपत्ति रहती थी, परंतु अधिकांश पत्र 10-15 पृष्ठों से अधिक नहीं जाते थे और उन्हें हम आज के शब्दों में 'विचार पत्र' ही कह सकते हैं। साप्ताहिक पत्रों में समाचारों और उनपर टिप्पणियों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। वास्तव में दैनिक समाचार के प्रति उस समय विशेष आग्रह नहीं था और कदाचित् इसीलिए उन दिनों साप्ताहिक और मासिक पत्र कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण थे। उन्होंने जनजागरण में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग लिया था।

उन्नीसवीं शताब्दी के इन 25 वर्षों का आदर्श भारतेंदु की पत्रकारिता थी। 'कवि वचन सुधा' (1867), 'हरिश्चंद्र मैगजीन' (1874), श्री हरिश्चंद्र चंद्रिका' (1874), बाल बोधिनी (स्त्रीजन की पत्रिका, 1874) के रूप में भारतेंदु ने इस दिशा में पथ प्रदर्शन किया था। उनकी टीका टिप्पणियों से

अधिकरी तक घबराते थे और 'कवि वचन सुधा' के 'पंच' पर रुष्ट होकर काशी के मजिस्ट्रेट ने भारतेंदु के पत्रों को शिक्षा विभाग के लिए लेना भी बंद करा दिया था। इसमें संदेह नहीं कि पत्रकारिता के क्षेत्र भी भारतेंदु पूर्णतया निर्भीक थे और उन्होंने नए नए पत्रों के लिए प्रोत्साहन दिया। 'हिंदी प्रदीप', 'भारत जीवन' आदि अनेक पत्रों का नामकरण भी उन्होंने ही किया था। उनके युग के सभी पत्रकार उन्हें अग्रणी मानते थे।

भारतेंदु के बाद

भारतेंदु के बाद इस क्षेत्र में जो पत्रकार आए उनमें प्रमुख थे–पंडित रुद्रदत्त शर्म, (भारत मित्र, 1877), बालकृष्ण भट्ट (हिंदी प्रदीप, 1877), दुर्गा प्रसाद मिश्र (उचित वक्ता, 1878), पंडित सदानंद मिश्र (सारसुधानिधि, 1878), पंडित वंशीधर (सज्जन-कीर्त्ति-सुधाकर, 1878), बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' (आनंदकादंबिनी, 1881), देवकी नंदन त्रिपाठी (प्रयाग समाचार, 1882), राधाचरण गोस्वामी (भारतेंदु, 1882),पंडित गौरीदत्त (देवनागरी प्रचारक, 1882), राज रामपाल सिंह (हिंदुस्तान, 1883), प्रताप नारायण मिश्र (ब्राह्मण, 1883), अंबिकादत्त व्यास, (पीयू षप्रवाह, 1884), बाबू रामकृष्ण वर्मा (भारत जीवन, 1884), पं. रामगुलाम अवस्थी (शुभचिंतक, 1888), योगेशचंद्र वसु (हिंदी बंगवासी, 1890), पं. कुंदनलाल (कवि व चित्रकार, 1891), और बाबू देवकी नंदन खत्री एवं बाबू जगन्नाथ दास (साहित्य सुधानिधि, 1894)। 1895 ई. में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन आरंभ होता है। इस पत्रिका से गंभीर साहित्य समीक्षा का आरंभ हुआ और इसलिए हम इसे एक निश्चित प्रकाश स्तंभ मान सकते हैं। 1900 ई. में 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' के अवतरण के साथ हिंदी पत्रकारिता के इस दूसरे युग पर पटाक्षेप हो जाता है।

इन 25 वर्षों में हमारी पत्रकारिता अनेक दिशाओं में विकसित हुई। प्रारंभिक पत्र शिक्षा प्रसार और धर्म प्रचार तक सीमित थे। भारतेंदु ने सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक दिशाएँ भी विकसित कीं। उन्होंने ही 'बाल बोधिनी' (1874) नाम से पहला स्त्री-मासिक-पत्र चलाया। कुछ वर्ष बाद महिलाओं को स्वयं इस क्षेत्र में उतरते देखते हैं-'भारत भगिनी' (हरदेवी, 1888), 'सुगृहिणी' (हेमंत कुमारी, 1889)। इन वर्षों में धर्म के क्षेत्र में आर्य समाज और सनातन धर्म के प्रचारक विशेष सक्रिय थे। ब्रह्म समाज और राधास्वामी मत से संबंधित कुछ पत्र और मिर्जापुर जैसे ईसाई केंद्रों से कुछ ईसाई धर्म संबंधी पत्र भी सामने

आते हैं, परंतु युग की धार्मिक प्रतिक्रियाओं को हम आर्य समाज के और पौराणिकों के पत्रों में ही पाते हैं। आज ये पत्र कदाचित् उतने महत्त्वपूर्ण नहीं जान पड़ते, परंतु इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने हमारी गद्यशैली को पुष्ट किया और जनता में नए विचारों की ज्योति भी। इन धार्मिक वाद-विवादों के फलस्वरूप समाज के विभिन्न वर्ग और संप्रदाय सुधार की ओर अग्रसर हुए और बहुत शीघ्र ही सांप्रदायिक पत्रों की बाढ़ आ गई। सैकड़ों की संख्या में विभिन्न जातीय और वर्गीय पत्र प्रकाशित हुए और उन्होंने असंख्य जनों को वाणी दी।

आज वही पत्र हमारी इतिहास चेतना में विशेष महत्त्वपूर्ण हैं जिन्होंने भाषा शैली, साहित्य अथवा राजनीति के क्षेत्र में कोई अप्रतिम कार्य किया हो। साहित्यिक दृष्टि से 'हिंदी प्रदीप' (1877), ब्राह्मण (1883), क्षत्रिय पत्रिका (1880), आनंदकादंबिनी (1881), भारतेंदु (1882), देवनागरी प्रचारक (1882), वैष्णव पत्रिका (पश्चात् पीयूष प्रवाह, 1883), कवि के चित्रकार (1891), नागरी नीरद (1883), साहित्य सुधा निधि (1894), और राजनीतिक दृष्टि से भारत मित्र (1877), उचित वक्ता (1878), सार सुधानिधि (1878), भारतोदय (दैनिक, 1883), भारत जीवन (1884), भारतोदय (दैनिक, 1885), शुभचिंतक (1887) और हिंदी बंगवासी (1890) विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इन पत्रों में हमारे 19वीं शताब्दी के साहित्य रसिकों, हिंदी के कर्मठ उपासकों, शैलीकारों और चिंतकों की सर्वश्रेष्ठ निधि सुरक्षित है। यह क्षोभ का विषय है कि हम इस महत्त्वपूर्ण सामग्री का पत्रों की फाइलों से उद्धार नहीं कर सके। बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, सदानं मिश्र, रुद्रदत्त शर्मा, अंबिकादत्त व्यास और बाल मुकुंद गुप्त जैसे सजीव लेखकों की कलम से निकले हुए न जाने कितने निबंध, टिप्पणी, लेख, पंच, हास-परिहास औप स्केच आज में हमें अलभ्य हो रहे हैं। आज भी हमारे पत्रकार उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। अपने समय में तो वे अग्रणी थे ही।

कृतियाँ

यद्यपि भारतेन्दु जी विविध भाषाओं में रचनायें करते थे, किन्तु ब्रज भाषा पर इनका असाधारण अधिकार था। इस भाषा में इन्होंने अदभुत शृंगारिकता का परिचय दिया है। इनका साहित्य प्रेममय था, क्योंकि प्रेम को लेकर ही इन्होंने अपने 'सप्त संग्रह' प्रकाशित किए हैं। प्रेम माधुरी इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। जिसकी कुछ पंक्तियाँ निम्नवत हैं–

- मारग प्रेम को समुझै 'हरिश्चन्द्र' यथारथ होत यथा है
- लाभ कछु न पुकारन में बदनाम ही होन की सारी कथा है।
- जानत ही जिय मेरौ भली विधि और उपाइ सबै बिरथा है।
- बावरे हैं ब्रज के सिगरे मोंहि नाहक पूछत कौन बिथा है।

भारतेन्दु जी अत्यन्त कम अवस्था से ही रचनाएँ करने लगे थे। इन्होंने नाटक के क्षेत्र में भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। इनके प्रमुख नाटक और रचनायें निम्नवत हैं–

मौलिक नाटक

- वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1873ई., प्रहसन)
- सत्य हरिश्चन्द्र (1875,नाटक)
- श्री चंद्रावली (1876, नाटिका)
- विषस्य विषमौषधम् (1876, भाण)
- भारत दुर्दशा (1880, ब्रजरत्नदास के अनुसार 1876, नाट्य रासक),
- नीलदेवी (1881, ऐतिहासिक गीति रूपक)।
- अंधेर नगरी (1881, प्रहसन)
- प्रेमजोगिनी (1875, प्रथम अंक में चार गर्भांक, नाटिका)
- सती प्रताप (1883,अपूर्ण, केवल चार दृश्य, गीति:पक, बाबू राधाकृष्णदास ने पूर्ण किया)।

अनूदित नाट्य रचनाएँ

- विद्यासुन्दर (1868,नाटक, संस्कृत 'चौरपंचाशिका' के यतीन्द्रमोहन ठाकुर कृत बँगला संस्करण का हिंदी अनुवाद)
- पाखण्ड विडम्बन (कृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक के तृतीय अंक का अनुवाद)
- धनंजय विजय (1873, व्यायोग, कांचन कवि कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद)
- कर्पूर मंजरी (1875, सट्टक, राजशेखर कवि कृत प्राकृत नाटक का अनुवाद)
- भारत जननी (1877,नाट्यगीत, बंगला की 'भारतमाताश्के हिंदी अनुवाद पर आधारित)

- मुद्राराक्षस (1878, विशाखदत्त के संस्कृत नाटक का अनुवाद)
- दुर्लभ बंधु (1880, शेक्सपियर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का अनुवाद)

निबंध संग्रह

नाटक

- कालचक्र (जर्नल)
- लेवी प्राण लेवी
- भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?
- कश्मीर कुसुम
- जातीय संगीत
- संगीत सार
- हिंदी भाषा
- स्वर्ग में विचार सभा।

काव्य-कृतियां

- भक्तसर्वस्व (1870)
- प्रेममालिका (1871),
- प्रेम माधुरी (1875),
- प्रेम-तरंग (1877),
- उत्तरार्द्ध भक्तमाल (1876-77),
- प्रेम-प्रलाप (1877),
- होली (1879),
- मधु मुकुल (1881),
- राग-संग्रह (1880),
- वर्षा-विनोद (1880),
- विनय प्रेम पचासा (1881),
- फूलों का गुच्छा- खड़ीबोली काव्य (1882)
- प्रेम फुलवारी (1883)
- कृष्णचरित्र (1883)
- दानलीला

- तन्मय लीला
- नये जमाने की मुकरी
- सुमनांजलि
- बन्दर सभा (हास्य व्यंग)
- बकरी विलाप (हास्य व्यंग)

कहानी

- अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न

यात्रा वृत्तान्त

- सरयूपार की यात्रा
- लखनऊ

आत्मकथा

- एक कहानी– कुछ आपबीती, कुछ जगबीती

उपन्यास

- पूर्णप्रकाश
- चन्द्रप्रभा

साहित्यिक सेवाएँ

हरिश्चन्द्र जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। अतः उन्होंने साहित्य के हर क्षेत्र में काम किया है। कविता, नाटक, निबन्ध, व्याख्यान आदि पर उन्होंने कार्य किया। 'सुलोचना' आपका प्रमुख आख्यान है। 'बादशाह दर्पण' आपका इतिहास की जानकारी प्रदान करने वाला ग्रन्थ है। इन्होंने संयोग का बड़ा ही सजीव एवं सुन्दर चित्रण किया है–

रोकत है तो अमंगल होय, और प्रेम नसै जो कहैं प्रिय जाइए।
जो कहें जाहु न, तो प्रभुता, जो कछु न कहैं तो सनेह नसाइए।
जो हरिश्चन्द्र कहैं, तुमरे बिन, जियें न तो यह क्यों पतियाइए।
तासो पयान समै तुझसौं हम का कहैं प्यारे हमें समझाइए।।

भारत की विभिन्नता पर खिन्नता व्यक्त की है–हिन्दी के उत्थान के लिए कहना है कि–हिन्दी की प्रतिष्ठा करते हुए वे कहते हैं कि–

भारत में सब भिन्न अति,
ताहीं सों उत्पात।
विविध बेस मतहूं विविध
भाषा विविध लखात।
अंग्रेजी पढ़ कै जदपि,
सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन
रहत हीन कै हीन।
निजभाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को भूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के
मिटे न हिय को सूल।

प्रगतिशील लेखक

भारतेन्द्र जी ने भक्ति प्रधान एवंश्रृंगारयुक्त रचनाएँ की हैं। उनमें अपने देश के प्रति बहुत बड़ी निष्ठा थी, उन्होंने सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन की बात की है, उनकी भक्ति प्रधान रचनाएँ घनानंद एवं रसखान की रचनाओं की कोटि की हैं। उन्होंने संयोग की अपेक्षा वियोग पर विशेष बल दिया है। वे स्वतंत्रता प्रेमी एवं प्रगतिशील विचारक व लेखक थे। उन्होंने माँ सरस्वती की साधना में अपना धन पानी की तरह बहाया और साहित्य को समृद्ध किया। उन्होंने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। जीवन का अन्तिम दौर आर्थिक तंगी से गुजरा, क्योंकि धन का उन्होंने बहुत बड़ा भाग साहित्य समाज सेवा के लिए लगाया। ये भाषा की शुद्धता के पक्ष में थे। इनकी भाषा बड़ी परिष्कृत एवं प्रवाह से भरी है। भारतेन्दु जी की रचनाओं में उनकी रचनात्मक प्रतिभा को भली प्रकार देखा जा सकता है।

सभी विधाओं में लेखन

भारतेन्दु जी ने अपनी प्रतिभा के बल पर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। हिन्दी गद्य साहित्य को इन्होंने विशेष समृद्धि

प्रदान की है। इन्होंने दोहा, चौपाई, छन्द, बरवै, हरि गीतिका, कवित्त एवं सवैया आदि पर काम किया। इन्होंने न केवल कहानी और कविता के क्षेत्र में कार्य किया अपितु नाटक के क्षेत्र में भी विशेष योगदान दिया। किन्तु नाटक में पात्रों का चयन और भूमिका आदि के विषय में इन्होंने सम्पूर्ण कार्य स्वयं के जीवन के अनुभव से सम्पादित किया है।

साहित्य में योगदान

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि बाबू हरिश्चन्द्र बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न थे। उन्होंने समाज और साहित्य का प्रत्येक कोना झाँका है अर्थात् साहित्य के सभी क्षेत्रों में उन्होंने कार्य किया है। किन्तु यह खेद का ही विषय है कि 35 वर्ष की अल्पायु में ही वे स्वर्गवासी हो गये थे। यदि ऐसा न होता तो सम्भवत: हिन्दी साहित्य का कहीं और ज्यादा विकास हुआ होता। यह उनके व्यक्तित्त्व की ही विशेषता थी कि वे कवि, लेखक, नाटककार, साहित्यकार एवं सम्पादक सब कुछ थे। हिन्दी साहित्य को पुष्ट करने में आपने जो योगदान प्रदान किया है वह सराहनीय है तथा हिन्दी जगत् आप की सेवा के लिए सदैव ऋणी रहेगा। इन्होंने अपने जीवन काल में लेखन के अलावा कोई दूसरा कार्य नहीं किया। तभी तो 35 वर्ष की अल्पायु में ही 72 ग्रन्थों की रचना करना सम्भव हो सकता था। इन्होंने छोटे एवं बड़े सभी प्रकार के ग्रन्थों का प्रणयन किया है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है और अपने कार्यों से इन्होंने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सदा के लिए स्थायी रूप से स्थान बनाया है। अपनी विशिष्ट सेवाओं के कारण ही ये आधुनिक हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रवर्तक कहे जाते हैं। पंत जी ने इनके बारे में ठीक ही कहा है–

- भारतेन्दु कर गये,
- भारती की वीणा निर्माण।
- किया अमर स्पर्शों में,
- जिसका बहु विधि स्वर संधान।

अत: यह कहा जा सकता है कि बाबू हरिश्चन्द्र जी हिन्दी साहित्य के आकाश के एक देदीप्यमान नक्षत्र थे। उनके द्वारा हिन्दी साहित्य में दिया गया योगदान महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय है।

4

बाल गंगाधर जांभेकर

बाल गंगाधर जांभेकर मराठी पत्रकारिता के अग्रदूत थे। उन्होंने 'दर्पण' नामक प्रथम मराठी पत्रिका आरम्भ की। उन्होंने इतिहास और गणित से संबंधित विषयों पर अनेक पुस्तकें लिखीं। रॉयल एशियाटिक सोसायटी तथा जियोग्राफिकल सोसाइटी में पढ़े गए शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों से संबंधित उनके निबंध अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। शिलालेखों की खोज के सिलसिले में जब वे कनकेश्वर गए थे, वही उन्हें लू लग गई। इसी में उनका देहावसान हुआ। सच्चे अर्थ में उन्होंने अपने कर्म में अपने जीवन का समर्पण किया था। ग्रहण से संबंधित वास्तविकता अपने भाषणों में प्रकट करने तथा श्रीपाद शेषाद्रि नामक ब्राह्मण को ईसाई धर्म से पुनः हिंदूधर्म में लेने के कारण वे जाति बहिष्कृत कर दिए गए थे। महाराष्ट्र के वे समाज सुधारक थे।

शुरूआती जीवन

बाल गंधाधर जांभेकर का जन्म 6 जनवरी, 1812 में महाराष्ट्र राज्य के कोंकण क्षेत्र में देवगढ़ तालुका (सिंधुदुर्ग) के पोम्भुरले गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम गंगाधर शास्त्री था, जो एकअच्छे वैदिक थे। उन्होंने अपने पिता गंगाधर शास्त्री से घर पर मराठी और संस्कृत भाषाओं का अध्ययन शुरू किया।

बाल गंधाधर जांभेकर सन् 1820 में अध्ययन की समाप्ति के बाद एल्फिंस्टन कॉलेज में अपने गुरु के सहायक के रूप में गणित के अध्यापक नियुक्त हुए। 1832 में वे अक्कल कोट के राजकुमार के अंग्रेजी के अध्यापक के रूप में भी रहे। इसी वर्ष 'भाऊ महाजन' के सहयोग से उन्होंने "दर्पण" नामक

अंग्रेजी मराठी साप्ताहिक चलाया। इसमें वे अंग्रेजी विभाग में लिखते थे। वे अनेक भाषाओं के पंडित थे। मराठी और संस्कृतके अतिरिक्त लैटिन, ग्रीक, इंग्लिश, फ्रेंच, फारसी, अरबी, हिंदी, बंगाली, गुजराती तथा कन्नड भाषाएँ उन्हें आती थीं।

बाल गंधाधर जांभेकर की इस बहुमुखी योग्यता देखकर सरकार ने "जस्टिस ऑफ दि पीस" के पद पर उनकी नियुक्ति की। इस नाते वे हाईकोर्ट में ग्रांड ज्यूरी का काम करते थे। 1842 से 1844 तक एज्यूकेशनल इन्सपेक्टर तथा ट्रेनिंग कॉलेज के प्रिंसिपल के रूप में भी रहे। 1840 में "दिग्दर्शन" नाम की एक मासिक पत्रिका भी उन्होंने शुरू की। इसमें वे शास्त्रीय विषयों पर निबंध लिखते थे।

पत्रकारिता

6 जनवरी सन् 1832 में 'दर्पण' अखबार का पहला अंक प्रकाशित हुआ। जनता के लिए अखबार की भाषा मराठी रखी गई थी, लेकिन अखबार का एक कॉलम अंग्रेजी भाषा में भी लिखा गया। अखबार की कीमत 1 रुपये थी। यह अखबार, अंग्रेजी और मराठी जैसी भाषाओं में प्रकाशित हुआ। इस अखबार में दो कॉलम थे।

दर्पण अखबार साढ़े आठ साल तक चला, और जुलाई 1840 में उनका अंतिम अंक प्रकाशित हुआ था। इस समाचार पत्र का उद्देश्य स्वदेशी लोगों के बीच व्यापारिक हित का अध्ययन करना और इस समृद्धि और देश की समृद्धि के तरीके पर यहां के लोगों के कल्याण के बारे में सोचना था।

सामाजिक कार्य

बाल गंधाधर जांभेकर ने सार्वजनिक पुस्तकालयों के महत्त्व को पहचानते हुए, 'बॉम्बे नेटिव जनरल लाइब्रेरी' की स्थापना की। वह 'एशियाटिक सोसाइटी' के त्रैमासिक क्वार्टर में एक पुस्तिका लिखने वाले पहले भारतीय थे।

बाल गंधाधर जांभेकर देश की प्रगति, आधुनिक सोच और संस्कृति को विकसित करने के लिए वैज्ञानिक ज्ञान की आवश्यकता और सामाजिक मुद्दों को देखने की न्यायिक भूमिका के वैज्ञानिक ज्ञान को बढ़ावा देने की आवश्यकता के बारे में जानते थे। संक्षेप में, वे आज की तरह एक ज्ञानी समाज द्वारा केवल 200 साल पहले की उम्मीद कर रहे थे।

सच्चे अर्थ में बाल गंधाधर जांभेकर ने अपने कर्म में अपने जीवन का समर्पण किया था। ग्रहण से संबंधित वास्तविकता अपने भाषाणों में प्रकट करने तथा 'श्रीपती शेषाद्रि' नामक ब्राह्मण को ईसाई धर्म से पुन: हिंदू धर्म में लेने के कारण वे जाति से बहिष्कृत कर दिए गए थे। इस मायने में, वे समाज सुधारक थे। उनकी प्रतिभा और प्रयास ने न केवल महाराष्ट्र की जनता, बल्कि पूरे भारत में, एक प्रतिष्ठित समाज सुधारक और पत्रकार के रूप में अपनी कभी न मिटने वाली छाप छोड़ी।

सम्मान

बाल गंधाधर जांभेकर ने बॉम्बे नेटिव एजुकेशन सोसाइटी के 'मूल सचिव', अक्कल कोट के शिक्षक, एल्फिंस्टन इंस्टीट्यूट में पहले सहायक प्रोफेसर, स्कूल अन्वेषक, स्कूल के निदेशक (सामान्य स्कूल) में विभिन्न पदों पर काम किया। उन्हें 1840 में जस्टिस ऑफ द पीस बनाया गया था।

निधन

बाल गंधाधर जांभेकर शिलालेखों की खोज के सिलसिले में कनकेश्वर गए थे, वही उन्हें लू लग गई। इसी में उनका निधन 18 मई, 1846 को हुआ।

5

प्रताप नारायण मिश्र

भारतेन्दु मंडल के प्रमुख लेखक, कवि, पत्रकार प्रताप नारायण मिश्र पर उनके सहयोगी रहे हिंदी के विद्वान गोपाल राम गहमरी का आत्मीय संस्मरण। "वर्तमान समय हिंदी-लेखकों की तीसरी पीढ़ी का समय है। पहली पीढ़ी के जो इने-गिने लेखक रह गए हैं, उनमें गोपाल राम गहमरी आज भी उसी लगन से साहित्य-सेवा में जुटे हैं। इस लेख में आपने पहली पीढ़ी के प्रमुख लेखक स्व. पं. प्रताप नारायण मिश्र का संस्मरण लिखा है। इससे पाठकों को यह भी मालूम होगा कि उस समय हिंदी लेखकों की क्या स्थिति थी।"

सरस्वती, जून-1935, सं.-देवीदत्त शुक्ल, श्रीनाथ सिंह

स्व. भारतेन्दु के समकक्ष कवि जिन पं. प्रताप नारायण मिश्र का संस्मरण लिख रहा हूं वे जब मुझे चिट्ठी भेजते थे तब मोटो की तरह ऊपर "खुदादारमचेगमदारंभ" यह वाक्य लिखा करते थे। मिश्र जी उन्नाव जिले के बेल्थर गांव के रहने वाले थे। बाद को कानपुर में आए। उनके वहां कई मकान थे और वहीं 'सतघरा' महल्ले में रहते थे। उनका दर्शन मुझे कालाकांकर में हुआ था। जब मैं 1892 ई. में कालाकांकर नरेश तत्र भवान राजा रामपाल सिंह की आज्ञा से 'हिंदोस्थान' के संपादकीय विभाग में काम करने को पहुँचा, तब वहां साहित्यकारों की एक नवरत्न कमेटी-सी हो गई थी। उस समय वहां पं. प्रताप नारायण मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पं. राधारमण चौबे, पं. गुलाबचन्द चौबे, पं. रामलाल मिश्र, बाबू शशिभूषण चटर्जी, पं. गुरुदत्त शुक्ल और स्वयं राजा साहब आदि लोग थे।

मुझसे मिश्र जी का पत्रालाप और पहले से था, लेकिन उनका दर्शन वहीं पहले-पहल हुआ। मैं रात को वहां पहुँचा और बाबू बालमुकुन्द गुप्त के यहां ठहरा था। मेरा उनका (गुप्तजी का) पत्र द्वारा परिचय उसी समय से था जब मैं बंबई में सेठ गंगाविष्णु खेमराज के यहां था और मेरा 'श्री वेंकटेश्वर प्रेस' में काम करते समय 'हिन्दोस्थान' में छपें त्रिपटी के महन्त के आचरण-संबंधी एक लेख पर गुप्त जी से विवाद हो उठा था। गुप्त जी में यह गुण था कि जो उनकी भूल दिखाता था उस पर वे अनखाते नहीं थे, प्रसन्न होते थे। उसी के फलस्वरूप मुझे राजा साहब के यहां जाना पड़ा था।

जब सवेरे मैं उठकर दातून कर रहा था तभी उनके चौतरे पर चढ़ते हुए खद्दर का बहुत लम्बा कुर्ता और धोती पहने, कंधों पर तेल चुचआते, लंबे बाल लहराते, झूमते हुए एक देवता ने कहा, "तुम्हूं बालमुकुंदवा की तरह सवेरे-सवेरे लकड़ी चबात हो।"

मैं तो उनका रूप, उनकी चाल, उनकी लंबी-ऊंची नाक, उनका उज्ज्वल रूप देखकर धक् से रह गया। उनका रूप निहारने के सिवा मुझे उस समय और कुछ कहते नहीं बना। वे अपनी बात पूरी कर बैठक में चले गए। मैं जल्दी-जल्दी प्रातः क्रिया निपटाकर भीतर गया। जिस खाट पर वे देवता बैठे थे उसी पर मुझे बिठाकर नम्रता से बोले- "आपने मुझे पहचाना न होगा। मेरा एक बौड़म कागज है, जो हर महीने आपके यहां भी जाया करता है। उसका नाम 'ब्राह्मण' है।"

इसके आगे उनको कुछ कहने की जरूरत ही नहीं रही। मैंने उठकर सादर प्रणाम किया, लेकिन उन्होंने फिर से उसी सम्मान से बिठाकर अपना स्नेह दिखाया और बाबू बालमुकुंद गुप्त भी, जो इतनी देर से मुस्कराते हुए 'हिंदोस्थान' का आलेख लिख रहे थे, समालाप में शामिल हुए। उसी दिन पंडित जी का मुझे पहले-पहल साक्षात् दर्शन हुआ था। तब से मेरे ऊपर मिश्र जी का स्नेह बहुत बढ़ा, वे मुझे अपने लड़के की तरह प्यार करने लगे। उनके साथ में कालाकांकर के जंगलों में बहुत घूमता था। वहां स्वास्थ्यकर वायु के सिवा मकोय खाने को खूब मिलता था। मैं घूमने का सदा से आदी हूं। दोपहर का समय हम लोगों का कालाकांकर के जंगलों में ही बीतता था। 'हिंदोस्थान' दैनिक 'आज' का आधा केवल चार पेज ही निकलता था। बाबू बालमुकुंद गुप्त अग्रलेख के सिवा टिप्पणियां भी लिखते थे। बाकी समाचार, कुछ साहित्य और स्वतंत्र स्तंभ के लिए मेरे ऊपर भार था। पं. प्रताप नारायण मिश्र 'हिंदोस्थान' पत्र के काव्य भाग

के संपादक थे। वे फसली लेखक थे। जब कोई फसल जैसे जन्माष्टमी, पित्रपक्ष, दशहरा, दीपावली, होली आते तब इन अवसरों पर हम लोग उनसे कविता लिया करते थे।

पं. राधारमण चौबे और गुलाबचंद जी अंग्रेजी अखबारो का सार संकलन करते थे। इंग्लिशमैन, पायनियर, मार्निंगपोस्ट और सिविल मिलिटरी गजट उन दिनों एंग्लो इंडियन अखबारों में मुख्य थे। उनका मुंहतोड़ जवाब राजा रामपाल सिंह 'हिंदोस्थान' में दिया करते थे। आजकल हिंदी में दैनिक पत्र बहुत निकलते हैं। काशी, कलकत्ता, दिल्ली, लाहौर, इलाहाबाद आदि से निकलने वाले विशाल हिंदी दैनिक पत्रों के दर्शन जैसे इन दिनों हिंदी पाठकों को हुआ करते हैं, उन दिनों वैसे नहीं थे। हिंदी के प्रेमी दैनिक पत्रों के लिए तरसते थे। मासिक और साप्ताहिक पत्रों के लिए तो हिंदी की दुनिया में कमी नहीं थी, लेकिन दैनिक पत्र तो हिंदी का एक ही 'हिंदोस्थान' ही था। उसमें एक बड़ी खूबी थी। यह कि वह दैनिक, राजनैतिक विषयों से जैसे भरा पूरा रहता था, वैसे ही साहित्य से ही संपन्न रहता था। आजकल हिंदी दैनिकों में राजनैतिक लेखों के आगे साहित्यिक विषय काव्य, नाटक आदि की चर्चा बहुत कम रहती है। किसी हफ्ते में एक-दो लेख निकल आते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि राजनीतिक लेख जिस अधिकता से आजकल दैनिकों में निकलते हैं, वैसे इनमें साहित्य के लेखों की अधिकता नहीं देखी जाती।

पं. प्रताप नारायण मिश्र में कई अनोखे गुण थे। कविता उनकी बहुत ऊंचे दर्जे की होती थी। भारतेन्दु ने भी उनके काव्य की बढ़ाई की थी। नाटक और रूपक भी बड़ी ओजस्विनी भाषा में लिखते थे। अपने लेख में जहां जिसका वर्णन करते थे, वहां उसको मानो मूर्तिमान वहां खड़ा कर देते थे। कलिकौतुक नाटक, जुआरी, खुआरी रूपक आदि उनकी लिखी पुस्तिकाओं के पढ़ने वाले इसके साक्षी हैं। बंकिम बाबू के उपन्यासों के अनुवाद उन्होंने हिंदी में किए थे। उनकी पुस्तक बांकीपुर के 'खड्गविलास प्रेस' में छपी है। उस प्रेस के स्वामी मिश्र जी की पुस्तकों को छापने पर भी उनके प्रचार में उदासीन ही रहे।

भारतेन्दुजी की सब पुस्तकों को छापने का अधिभार भी 'खड्गविलास प्रेस' के स्वत्वाधिकारी को है, लेकिन उन पुस्तकों के प्रचार का उद्योग नहीं देखने में आया। भारतेन्दुजी के पुस्तकों का प्रचार तो काशी की नागरी प्रचारिणी ने भी प्रकाशन करके किया, भारत जीवन प्रेस से भी भारतेन्दुजी की पुस्तकें प्रकाशित हुईं, लेकिन मिश्र जी की पुस्तकों का प्रचार आज कहीं नहीं दीख

पड़ता। स्कूल और विद्यालयों की कोर्स-बुकों में उनके लेख और कविताओं का प्रचार कुछ हद तक है, लेकिन साहित्य के क्षेत्र में उनकी कीर्ति लोप सी हो रही है।

पं. प्रताप नारायण मिश्र सत्य भाषी थे। उनके मुंह से भूलकर भी असत्य कभी सुनने को नहीं मिला। वे बड़े निर्भीक और बड़े हाजिर जवाब थे।

कालाकांकर में प्रवाास काल में पितृपक्ष में आग्रह करने पर उन्होंने 'तृष्यन्ताम' शीर्षक से लंबी कविता लिखी। उसमें उन्होंने समाज नीति, राजनीति और धर्म सब भर दिया। उन्होंने कचहरियों की देशा को देखकर उसमें लिखा है–

अब निज दुखहू रोय सकत नाहिं,
प्रजा खरीदे बिन इस्टाम।

पंडित जी अपने कान हिलाया करते थे। जब दो-चार मित्र इकट्ठे होते तब कहने पर पशुओं की तरह कान हिलने लगते थे। हंसी-दिल्लगी में भी कभी झूठ नहीं बोलते थे। एक बार भादों के महीने में वे अपने हाथों में मेंहदी रचाए हुए आए। मैंने पूछा, "पंडित जी, तीज में आप मेंहदी रचाते हैं?" उन्होंने छूटते ही कहा, 'अरे भाई! मेंहदी न रचाऊं तो मेहरिया मारन लगे। यह उसी की आज्ञा से तीज की सौगात है।"

मिश्र जी बड़े हंसोड़ थे। कविता तो चलते-चलते करते थे। एक बार कानपुर के मित्र-मंडली के आयोजन से एक नाटक खेला गया। उसमे हिंदी के बड़े-बड़े उद्भट लेखकों ने भाग लिया। शब्दकोषों के रचयिता राधा बाबू भी उसमे थे। प्रसिद्ध कवि और सुलेखक राय देवी प्रसाद पूर्ण का भी उसमें सहयोग था।

मिश्र जी नास बहुत सूंघते थे। सुघनी भरा बेल सदा अपने अंदर खद्दर के कुर्तेवाले पाकेट में रखते थे और जब चाहा बेल निकालकर हथेली पर नास उड़लते और सीधे नाक में सुटक जाते थे। एक बार उसी नाटक में राधा बाबू पियक्कड़ बनकर आये और झूम-झूम कर कहने लगे–

कहां गई मोरि नास की पुडिया,
कहां गई मेरी बोतल।
जिसको पीके ऐसे चलिहौं,
जै लड्डू कोतल।
चलो दिल्ली चलें हरे-हरे खेतन की सैर करें।

इसे पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने अपने ऊपर ताना समझा। उस समय वे नेपथ्य में मछली बेचने वाली मल्लाहिन का स्वांग भर चुके थे। झट स्टेज पर आकर बोले–

बाम्हन छत्री सभी पियत हैं,
बनिया आगरवाला।
हो मल्लाहिन पिउ लयी तो
क्या कोई हंसेगा साला।
चलो दिल्ली चले हरे-हरे खेतन की सैर करें।
मुंहतोड़ जवाब की कविता सुनकर सभी बड़े प्रसन्न हुए।

पंडित जी कविता में अपना उपनाम 'बरहमन' रखते थे, इसी से उन्होंने अपने मासिक पत्र का नाम 'ब्राह्मण' रखा था। उर्दू शायरी भी उनकी बड़ी चुटीली होती थी। उन्होंने नीचे लिखी पुस्तकें लिखी हैं–

श्रृंगार बिलास, मन की लहर, प्रेम प्रश्नावली, कलिकौतुक रूपक, कलि प्रभाव नाटक, हठी हमीर, गौ संकट, जुआरी-जुआरी, लोकोक्ति शतक, दंगल खंड, रसखान शतक, तृष्यन्ताम्, ब्राडला स्वागत, भारत दुर्दशा, शैव सर्वस्व, मानस विनोद, वर्णमाला, शिशु विज्ञान, स्वास्थ्य रक्षा, प्रताप संग्रह।

और नीचे लिखी पुस्तकों का अनुवाद किया–

राजसिंह, इंदिरा, युगलांगुलीय, सेनवंश व सूबे बंगाल का इतिहास, नीतिरत्नावली, शाकुन्तल, वर्ण परिचय, कथावल संगीत, चरिताष्टक, पंचामृत।

कालाकांकर प्रवास में उन्होंने ब्राडला-स्वागत और तृष्यन्ताम् नाम से कविताएं लिखी थीं।

मिश्र जी हिंदी की दीन-दशा पर बड़ा दुख करते और साथ ही बंगला उन्नतावस्था पर बहुत प्रसन्न होते थे। वे कहा कहते थे कि देशी भाषाओं में बंग भाषा का साहित्य पर खूब भूरा-पूरा है। इसका कारण यह है कि उसके लेखक धनी-मनी और समृद्धशाली तथा ऊंचे पदों पर पहुँचकर भी अपनी मातृभाषा के प्रचार का खूब उद्योग करते हैं। उसके लेखक अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में ऊंचा ज्ञान प्राप्त कर उन उन भाषाओं के सब उपयोगी विषय अपनी मातृभाषा में लाकर साहित्य भण्डार भरने में सदा सहायक होते हैं। उस भाषा के पाठक भी बहुत हैं। उन दिनों बंग भाषा में 'दैनिक चन्द्रिका' निकलती थी। उसमें समाचार और राजनैतिक लेखों के सिवा साहित्यिक लेख भी खूब होते थे। पंडित

जी ने राजा रामपाल सिंह को वही दिखाकर 'हिंदोस्थान' में साहित्य स्तम्भ का कालम सन्निवेश कराया था।

पंडित जी कहा करते थे- भारतेन्दु के पास धन था। उनकी कीर्ति धन-बल से ही थोड़े ही दिनों में खूब फैली। मेरे पास भी रुपया होता तो मैं भी हिंदी में बहुत कुछ काम करता। हिंदी में पाठकों की संख्या इतनी कम है कि उनके भरोसे कोई ग्रंथकार उत्साहित होकर आगे नहीं बढ़ सकता। वे दिन भी कभी आएंगे जब हिंदी के पाठक बंगला के पाठकों की तरह खूब बढ़ेंगे, जिनके भरोसे हिंदी के ग्रंथकार फलेंगे-फूलेंगे और उदर-भरण की चिंता से मुक्त होकर हिंदी में ग्रंथ-रत्न संग्रह करके गरीबिनी हिंदी को उन्नत करेंगे। शायद मेरे मरने के बाद वे दिन आयें।

कालाकांकर के जंगल में घूमते हुए एक बार मुझसे उन्होंने कहा था- "बच्चा, मेरे पास एक अनमोल वस्तु है। जिसे मैंने बेदाम लिया है, लेकिन उसकी तुलना में संसार की दौलत भी पलड़े पर रखी जाए तो वह हल्की होगी। उसको हम भी बेदाम देने को तैयार हैं, लेकिन कोई लेने वाला नहीं मिलता।" मैं अचकचाकर उनका मुंह ताकने लगा और पूछा, "वह कौन सी चीज है, पंडित जी? जरा मुझे भी बताइए।"

पंडित जी ने कहा, "यों नाम जानकर क्या करोगे? तुम लेते हो तो अलबत्ते मैं देने को तैयार हूं।" मैंने कहा, "इतना महान पदार्थ, जिसकी तुलना में दुनिया भर की संपत्ति हल्की है, मैं भला कहीं पा सकता हूं।"

पंडित जी बोले, "नहीं, वह कोई ऐसी भारी या नायाब चीज नहीं है, जिसके बोझ से तुम पिस जाओगे। वह संसार में अतुलनीय है और अनमोल होने पर भी ऐसी है कि जो जब चाहे ले ले। उसमें कुछ दाम नहीं लगेगा, न कुछ बोझ ही उठाना पड़ेगा।"

मैं तो बिल्कुल न समझकर अचरज में आ गया। कहा, "अगर मेरे साध्य का हो, मैं ग्रहण कर सकता हूं तो ऐसा अनमोल पदार्थ लेने को तैयार हूं।" उन्होंने भूत झाडने वाले ओझाओं की तरह अकड़कर कहा, "ले बच्चा! ये सत्य भाषण है।"

मैं तो सकते में आ गया और कुछ देर तक विस्मय में पड़े रहकर फिर बोला, "पंडित जी, है तो जरूर यह अनमोल और जगत में इसकी तुलना में कुछ भी नहीं है, लेकिन बहुत ही कठिन ही नहीं, बल्कि असाध्य भी है।"

उन्होंने कहा, "नहीं बच्चा! यह असाध्य नहीं और कष्ट साध्य भी नहीं। तुम चाहो तो बड़ी सुगमता से इसे सिद्ध कर लोगे।"

मैंने कहा, "पंडित जी! रात-दिन मैं झूठ बोला करता हूं। यहां तक कि बेजरूरत झूठ बोलने की बान-सी पड़ गई है। जिसका झूठ तो ओडन-डासन और चबैना है वह कैसे सत्य भाषण कर सकता है?" उन्होंने उसी दम से कहा, "इसका रास्ता मैं बता देता हूं। तुम आज से ही मन में सत्य बोलने की ठान लो और जब मुंह से इच्छा या अनिच्छा से झूठ बोल जाओ तब याददाश्त लिख लिया करो और मुझे संध्या को बतला दिया करो कि आज इतना झूठ बोला। बस, इसके सिवा और कुछ भी उपाय दरकार नहीं है।"

मैं उस घटना के बाद वाले अपने अनुभव से कहता हूं, उनकी ये बात बिल्कुल सत्य है। उस दिन से मैं नम्बर लिखने लगा और महीने भर नहीं बीता कि अभ्यासवश अनजाने अर्थात इच्छा विरुद्ध जो झूठ निकल जाता था वही रह गया था। स्वयं अपने मन में रुकावट हो गई और मैं उनका इस विषय में चेला हो गया।

एक बार राजा रामपाल सिंह 'हिंदोस्थान' पत्र के लिए अग्रलेख लिख रहे थे। जो कुछ वे बोले जाते थे उसको लिखने में जो उनसे दोबारा कुछ भी पूछता था उस पर बहुत बिगड़ उठते थे। मैं तेज लिखता था। इस काम के लिए वे सदा मुझे बुलाया करते थे। सफर में भी मुझे साथ रखते थे। एक बार वे अशुद्ध बोल गए, लेकिन मैंने शुद्ध लिख लिया। जब समाप्त होने पर सुनने लगे तो जहां मैंने सुधारकर लिखा था उसको सुनते ही अशुद्ध कहकर उसे सुधारने को कहा। पंडित जी वहीं बैठे थे। उन्होंने कहा कि लड़के ने शुद्ध लिखा है। इस पर राजा साहब बिगड़कर पंडित जी से बोले, "आप बड़े गुस्ताख हैं।" पंडित जी ने छूटते ही कहा, "अगर सच्ची बात कहना आपके दरबार में गुस्ताखी है तो मैं सदा गुस्ताख हूं।"

राजा साहब को और क्रोध आया और गर्म होकर बोले, "निकल जाव यहां से।"

पंडित जी बोले, "हम यहां से चले।" यह कहकर उसी दम बारादरी से उठे और चले गए। फिर कभी उनके यहां नहीं गए और थोड़े दिन में अपना हिसाब चुकाकर कानपुर चले गए। बाबू बालमुकुंद गुप्त, पं. रामलाल मिश्र आदि किसी की भी बात उन्होंने नहीं सुनी।

पंडित जी कभी स्नान नहीं करते थे। मित्रों के आग्रह करने पर टाल जाते थे। जब कभी कोई त्योहार या बड़ा पर्व आता, बहुत उद्योग करने पर कभी-कभी स्नान कर लेते थे। कालाकांकर में उनके डेरे के सामने ही थोड़ी दूर पर गंगा जी बहती थी, लेकिन अपने मन में उन्होंने कभी स्नान नहीं किया। जब मित्र-मंडली उनको स्नान कराने पर तुल जाती थी तब भी बड़ा समर लेना पड़ता था।

एक बार उन्हें लोग टांगकर गंगा तट पर ले गए। किनारे जाकर भी भागने लगे। तब सबने उन्हें उठाकर गंगा में फेंकना चाहा। उन्होंने कहा, "अच्छा गंगा में ऐसा डालना कि मेरा पांव पहले गंगा में न पड़कर मस्तक ही पड़े।" तब वैसा ही किया गया। कालाकांकर में मिश्र जी को तीस रुपये मासिक दिए जाते थे। उस समय वह तीस रुपया उनके निर्वाह के लिए काफी थे। कानपुर से मकानों का किराया आया करता था।

पंडित जी के कालाकांकर में रहते समय पंडित श्रीधर पाठक की पुस्तक 'एकान्तवासी योगी' का प्रकाशन हुआ और खड़ी बोली में व्यवहृत हो इस पर बड़ा विवाद छिड़ा। 'हिंदोस्थान' में 'स्वतंत्र स्तंभ' नाम का एक अलग कालम था। उसमें खड़ी बोली की कविता के पक्ष और विपक्ष के लेख सालाना प्रकाशित किए जाते थे। पाठक जी के पक्ष में मुजफ्फरपुर की कलक्टरी के पेशकार बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री मुख्य थे। उन्होंने विलायत से सुंदरतापूर्वक खड़ी बोली काव्य छपवाकर यहां मंगाया और बिना मूल्य वितरित किया। खड़ी बोली की कविता का प्रचार ही उनका मुख्य उद्देश्य था। इसके सिवा गढ़वाल के पं. गोविंद प्रसाद मिश्र खड़ी बोली में कविता करके उत्साह बढ़ाते थे। लेकिन विपक्ष में बड़े-बड़े प्रभावशाली कवियों ने कलम उठाए थे।

पं. प्रताप नारायण मिश्र खड़ी बोली की कविता के विरोधियों में प्रधान थे। लखनऊ के 'रतिक पंथ' के संपादक से लेखक व सुकवि पं. शिवनाथ शर्मा भी खड़ी बोली की कविता के विरोधी थे। लेकिन राष्ट्रभाषा के प्रचार को और जिस भाषा का साधारण बोल-चाल में प्रचार है उसको कविता में भी अधिकार देना उसकी और राष्ट्रभाषा दोनों की उन्नति के लिए परमावश्यक है, इस विचार से प्रेरित होकर सबको खड़ी बोली की कविता के आगे अवनत होना पड़ा। इसके सिवा पं. श्रीधर पाठक ने भी यह सत्य प्रमाणित कर दिया कि उत्तम और रोचक लालित्य पूर्ण कविता करना कवि की शक्ति पर निर्भर है, भाषा पर नहीं।

तब पंडित जी ने राष्ट्रभाषा की उन्नति का ध्यान करके कह दिया, "अच्छी बात है। आप कविता कर चलिए। मैं भी उस पर रोड़ा-कंकड़ फेंकता चलूंगा। लेकिन, याद रखिए, यह सड़क ऐसी सुंदर नहीं बनेगी कि कवि की निरंकुश शक्ति बेरोक-टोक दौड़ सके।"

पाठक जी ने कहा, "हम इंजीनियरों को आप जैसे कंकड़ फेंकने वाले खचिवाहों की बहुत जरूरत है। आप उसे फेंकते चलिए। देखिएगा, यह सड़क ऐसी सुंदर और उत्तम बनेगी कि कवि लोग बे-रोक इस पर सरपट दौड़ेंगे।"

मिश्र जी की आत्मा स्वर्ग लोक से यह देखकर खूब प्रसन्न होती होगी कि खड़ी बोली काव्य किस उन्नत दिशा को प्राप्त है और कैसे-कैसे उद्‌भट कवि इन दिनों हुए हैं जिनकी मर्यादा और काव्य शक्ति के आगे अब बिरले ही किसी कवि की ब्रज-भाषा की कविता में रुचि देखी जाती है। पंडित जी का जन्म अश्विनी कृष्ण नौमी को संवत 1913 वि. में हुआ था। अड़तालीस वर्ष की उम्र में आप अषाढ़, शुक्ल चौथ को संवत 1951 वि. में परलोकवासी हो गए।

जीवनी

मिश्र जी उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के अंतर्गत बैजे गाँव बेथर के निवासी थे, कात्यायन गोत्रीय, कान्यकुब्ज ब्राह्मण पं. संकठा प्रसाद मिश्र के पुत्र थे। बड़े होने पर वह पिता के साथ कानपुर में रहने लगे और अक्षरारंभ के पश्चात उनसे ही ज्योतिष पढ़ने लगे। किंतु उधर रुचि न होने से पिता ने उन्हें अंग्रेजी स्कूल में भती करा दिया। तब से कई स्कूलों का चक्कर लगाने पर भी वह पिता की लालसा के विपरीत पढ़ाई-लिखाई से विरत ही रहे और पिता की मृत्यु के पश्चात् 18-19 वर्ष की अवस्था में उन्होंने स्कूली शिक्षा से अपना पिंड छुड़ा लिया।

इस प्रकार मिश्रजी की शिक्षा अधूरी ही रह गई। किंतु उन्होंने प्रतिभा और स्वाध्याय के बल से अपनी योग्यता पर्याप्त बढ़ा ली थी। वह हिंदी, उर्दू और बँगला तो अच्छी जानते ही थे, फारसी, अंग्रेजी और संस्कृत में भी उनकी अच्छी गति थी।

मिश्र जी छात्रावस्था से ही 'कवि वचन सुधा' के गद्य-पद्य-मय लेखों का नियमित पाठ करते थे, जिससे हिंदी के प्रति उनका अनुराग उत्पन्न हुआ। लावनी गायकों की टोली में आशु रचना करने तथा ललितजी की रामलीला में अभिनय करते हुए उनसे काव्य रचना की शिक्षा ग्रहण करने से वह स्वयं

मौलिक रचना का अभ्यास करने लगे। इसी बीच वह भारतेंदु के संपर्क में आए। उनका आशीर्वाद तथा प्रोत्साहन पाकर वह हिंदी गद्य तथा पद्य रचना करने लगे। 1882 के आस-पास 'प्रेमपुष्पावली' प्रकाशित हुई और भारतेंदु जी ने उसकी प्रशंसा की तो उनका उत्साह बहुत बढ़ गया।

15 मार्च 1883 को, होली के दिन, अपने कई मित्रों के सहयोग से मिश्रजी ने 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र निकाला। यह अपने रूप-रंग में ही नहीं, विषय और भाषा शैली की दृष्टि से भी भारतेंदु युग का विलक्षण पत्र था। सजीवता, सादगी, बाँकपन और फक्कड़पन के कारण भारतेंदुकालीन साहित्यकारों में जो स्थान मिश्रजी का था, वही तत्कालीन हिंदी पत्रकारिता में इस पत्र का था, किंतु यह कभी नियत समय पर नहीं निकलता था। दो-तीन बार तो इसके बंद होने तक की नौबत आ गई थी। इसका कारण मिश्रजी का व्याधि मंदिर शरीर और अर्थाभाव था। रामदीन सिंह आदि की सहायता से यह येनकेन प्रकारेण संपादक के जीवन काल तक निकलता रहा। उनकी मृत्यु के बाद भी रामदीन सिंह के संपादकत्व में कई वर्षों तक निकला, परंतु पहले जैसा आकर्षण उसमें न रह।

1889 में मिश्र जी 25 रू. मासिक पर 'हिंदोस्थान' के सहायक संपादक होकर कालाकांकर आए। उन दिनों पं. मदनमोहन मालवीय उसके संपादक थे। यहाँ बालमुकुंद गुप्त ने मिश्रजी से हिंदी सीखी। मालवीय जी के हटने पर मिश्रजी अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति के कारण वहाँ न टिक सके। कालाकांकर से लौटने के बाद वह प्रायः रुग्ण रहने लगे। फिर भी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक कार्यों में पूर्ववत रुचि लेते रहे और 'ब्राह्मण' के लिए लेख आदि प्रस्तुत करते रहे। 1891 में उन्होंने कानपुर में 'रसिक समाज' की स्थापना की। कांग्रेस के कार्यक्रमों के अतिरिक्त भारत धर्म मंडल, धर्मसभा, गोरक्षिणी सभा और अन्य सभा-समितियों के सक्रिय कार्यकर्ता और सहायक बने रहे। कानपुर की कई नाट्य सभाओं और गोरक्षिणी समितियों की स्थापना उन्हीं के प्रयत्नों से हुई थी।

मिश्रजी जितने परिहासप्रिय और जिंदादिल व्यक्ति थे उतने ही अनियमित, अनियंत्रित, लापरवाह और काहिल थे। रोग के कारण उनका शरीर युवावस्था में ही जर्जर हो गया था। तो भी स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का वह सदा उल्लंघन करते रहे। इससे उनका स्वास्थ्य दिनों-दिन गिरता गया। 1892 के अंत में वह गंभीर रूप से बीमार पड़े और लगातार डेढ़ वर्षों तक बीमार ही रहे। अंत में 38

वर्ष की आयु में 6 जुलाई 1894 को दस बजे रात में भारतेंदु मंडल के इस नक्षत्र का अवसान हो गया।

रचनाएँ

प्रताप नारायण मिश्र भारतेंदु के विचारों और आदर्शों के महान प्रचारक और व्याख्याता थे। वह प्रेम को परमधर्म मानते थे। हिंदी, हिंदू, हिदुस्तान उनका प्रसिद्ध नारा था। समाज सुधार को दृष्टि में रखकर उन्होंने सैकड़ों लेख लिखे हैं। बालकृष्ण भट्ट की तरह वह आधुनिक हिंदी निबंधों को परंपरा को पुष्ट कर हिंदी साहित्य के सभी अंगों की पूर्णता के लिये रचनारत रहे। एक सफल व्यंग्यकार और हास्यपूर्ण गद्य-पद्य-रचनाकार के रूप में हिंदी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। मिश्र जी की मुख्य कृतियाँ निम्नांकित हैं–

(क) नाटक–गो संकट, भारत दुर्दशा, कलिकौतुक, कलिप्रभाव, हठी हम्मीर। जुआरी-खुआरी (प्रहसन)। संगीत शाकुंतल (कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुंतम्' का अनुवाद)।

(ख) निबंध–संग्रह निबंध नवनीत, प्रताप पीयूष, प्रताप समीक्षा

(ग) अनूदित गद्य कृतियाँ–राजसिंह, अमरसिंह, इन्दिरा, राधारानी, युगलांगुरीय, चरिताष्टक, पंचामृत, नीतिरत्नमाला,बात

(घ) कविता–प्रेम पुष्पावली, मन की लहर, ब्रैडला स्वागत, दंगल खंड, तृप्यन्ताम्, लोकोक्तिशतक, दीवो बरहमन (उर्दू)।

वर्ण्य-विषय

मिश्रजी के निबंधों में विषय की पर्याप्त विविधता है। देव-प्रेम, समाज-सुधार एवं साधारण मनोरंजन आदि मिश्रजी के निबंधों के मुख्य विषय थे। उन्होंने 'ब्राह्मण' मासिक पत्र में हर प्रकार के विषय पर निबंध लिखे। जैसे-घूरे के लत्ता बीने-कनातन के डोल बांधे, समझदार की मौत है,आप, बात, मनोयोग, बृद्ध, भौं, मुच्छ, ह, ट, द आदि।

मिश्रजी 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' के कट्टर समर्थक थे, अतः उनकी रचनाओं में इनके प्रति विशेष मोह प्रकट हुआ है।

भाषा

खड़ी बोली के रूप में प्रचलित जनभाषा का प्रयोग मिश्रजी ने अपने साहित्य में किया। प्रचलित मुहावरों, कहावतों तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग

इनकी रचनाओं में हुआ है। भाषा की दृष्टि से मिश्रजी ने भारतेंदु का अनुसरण किया और जन साधारण की भाषा को अपनाया। भारतेंदुजी के समान ही मिश्रजी भाषा की कृतिमता से दूर रहे। उनकी भाषा स्वाभाविक है। उसमें पंडिताऊपन और पूर्वीपन अधिक है तथा ग्रामीण शब्दों का प्रयोग स्वच्छंदता पूर्वक हुआ है। संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, आदि के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग है। भाषा विषय के अनुकूल है। गंभीर विषयों पर लिखते समय भाषा और गंभीर हो गई है। कहावतों और मुहावरों के प्रयोग में मिश्रजी बड़े कुशल थे। मुहावरों का जितना सुंदर प्रयोग उन्होंने किया है, वैसा बहुत कम लेखकों ने किया है। कहीं-कहीं तो उन्होंने मुहावरों की झड़ी-सी लगा दी है।

शैली

मिश्रजी की शैली वर्णनात्मक, विचारात्मक तथा हास्य-व्यंग्यात्मक है।

विचारात्मक शैली- साहित्यिक और विचारात्मक निबंधों में मिश्रजी ने इस शैली को अपनाया है। कहीं-कहीं इस शैली में हास्य और व्यंग्य का पुट भी मिलता है। इस शैली की भाषा संयत और गंभीर है। 'मनोयोग' शीर्षक निबंध का एक अंश देखिए-इसी से लोगों ने कहा है कि मन शरीर रूपी नगर का राजा है। और स्वभाव उसका चंचल है। यदि स्वच्छ रहे तो बहुधा कुत्सित ही मार्ग में धावमान रहता है।

व्यंग्यात्मक शैली-इस शैली में मिश्रजी ने अपने हास्य-व्यंग्यपूर्ण निबंध लिखे हैं। यह शैली मिश्रजी की प्रतिनिधि शैली है, जो सर्वथा उनके अनुकूल है। वे हास्य-विनोद प्रिय व्यक्ति थे। अतः प्रत्येक विषय का प्रतिपादन हास्य और विनोदपूर्ण ढंग से करते थे। हास्य और विनोद के साथ-साथ इस शैली में व्यंग्य के दर्शन होते हैं। विषय के अनुसार व्यंग्य कहीं-कहीं बड़ा तीखा और मार्मिक हो गया है। इस शैली में भाषा सरल, सरस और प्रवाहमयी है। उसमें उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हुआ है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग के कारण यह शैली अधिक प्रभावपूर्ण हो गई है। एक उदाहरण देखिए-दो-एक बार धोखा खाके धोखेबाजों की हिकमत सीख लो और कुछ अपनी ओर से झपकी-फुंदनी जोड़ कर उसी की जूती उसी का सर कर दिखाओ तो बड़े भारी अनुभवशाली वरंच 'गुरु गुड़ ही रहा और चेला शक्कर हो गया' का जीवित उदाहरण कहलाओगे।

समालोचना

मिश्रजी भारतेंदु मंडल के प्रमुख लेखकों में से एक हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य की विविध रूपों में सेवा की। वे कवि होने के साथ-साथ उच्चकोटि के मौलिक निबंध लेखक और नाटककार थे। हिंदी गद्य के विकास में मिश्रजी का बड़ा योगदान रहा है। आचार्य शुक्ल जी ने पं. बालकृष्ण भट्ट के साथ मिश्रजी को भी महत्त्व देते हुए अपने हिंदी-साहित्य के इतिहास में लिखा है- पं. प्रतापनारायण मिश्र और पं. बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी गद्य साहित्य में वही काम किया जो अंग्रेजी गद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया।

6

बाबूराव विष्णु पराड़कर

बाबूराव विष्णु पराड़कर हिन्दी के जाने-माने पत्रकार, साहित्यकार एवं हिन्दीसेवी थे। उन्होंने हिन्दी दैनिक 'आज' का सम्पादन किया। भारत की आजादी के आंदोलन में अखबार को बाबूराव विष्णु पराड़कर ने एक तलवार की तरह उपयोग किया। उनकी पत्रकारिता ही क्रांतिकारिता थी। उनके युग में पत्रकारिता एक मिशन हुआ करता था।

एक जेब में पिस्तौल, दूसरी में गुप्त पत्र 'रणभेरी' और हाथों में 'आज', 'संसार' जैसे पत्रों को संवारने, जुझारू तेवर देने वाली लेखनी के धनी पराड़कराजी ने जेल जाने, अखबार की बंदी, अर्थदंड जैसे दमन की परवाह किए बगैर पत्रकारिता का वरण किया। मुफलिसी में सारा जीवन न्यौछावर करने वाले पराड़कर जी ने आजादी के बाद देश की आर्थिक गुलामी के खिलाफ धारदार लेखनी चलाई।

मराठी भाषी होते हुए भी हिंदी के इस सेवक की जीवन यात्रा अविस्मरणीय है।

सम्पादकाचार्य पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़कर भारत, भारतीय और भारतीयता के उन्नायक थे। राष्ट्र की मुक्ति और समाज की सर्वांगीण उन्नति के लिए इन्होंने 50 वर्षो तक प्रचंड साधना की। राष्ट्रीय जागरण, राष्ट्रभाषा की गौरव वृद्धि के लिए पराड़कर जी सतत स्मरणीय है।

पराड़कर जी का जन्म काशी के एक मराठा परिवार में हुआ था। इनके पूर्वज पूना के निवासी थे। इनके पिता विष्णुराव अपनी बाल्यावस्था में ही काशी चले आए। वे बिहार के विभिन्न विद्यालयों में अध्यापक थे। यद्यपि

पराड़कर जी ने अक्षर-ज्ञान काशी में प्राप्त किया किन्तु छपरा और भागलपुर में उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा मिली। वे मात्र 15 के ही थे कि पिताजी का देहावसान हो गया। पढ़ाई छोड़कर उन्हें परिवार के भरण-पोषण का मार्ग ढूँढ़ना पढ़ा।

कलकत्ता से प्रकाशित "हिंदी बंगवासी" के लिए एक उप-सम्पादक का विज्ञापन पराड़कर जी ने कही देख लिया। इनके प्रार्थना पत्र को देखकर सम्पादक हरिकृष्ण जौहर ने इन्हें कलकत्ता बुला लिया। कलकत्ता में पराड़कर जी के मामा सखाराम गणेश देउकर पहले ही से "हितवती" के प्रधान सम्पादक पद पर कार्यरत थे। मामा के सानिध्य में इनके व्यक्तित्त्व का विकास हुआ। हिंदी, अंग्रेजी और बंगला भाषा में निष्णात होने का स्वर्णिम अवसर पराड़कर जी को कलकत्ता में ही प्राप्त हुआ।

स्वाध्याय की आदत के चलते इनका बौद्धिक विकास हुआ तथा पत्रकरोचित लेखन में इन्हें दक्षता प्राप्त हुई। "हिंदी बंगवासी" के संचालक प्रतिक्रियावादी नीतिवाले थे परिणामस्वरुप पराड़कर जी से मतभेद हो गया और उन्हें पत्र से हटना पड़ा। इसके पश्चात पराड़कर जी "हितवार्ता" के हिंदी संस्करण के संपादन में जुट गए। पत्रकारिता का दायित्व निभाने के साथ वे नेशनल कालेज ने हिंदी और मराठी के अध्यापन का कार्य भी करने लगे। यह कॉलेज क्रांन्तिकारी युवकों का केंद्र था जिसके प्राचार्य योगी अरविन्द घोष थे। क्रांतिधर्मिता पराड़कर जी के रग-रग में समां गई। मामा देउकर की बंगला पुस्तक "देशेर कथा" के अनुवाद के पराड़कर की मुख्य भूमिका थी। "देश की बात" के प्रकाशन होते ही ग्रंथ जब्त हो गया जबकि मूल पुस्तक की ओर किसी की दृष्टि नहीं गयी थी।

क्रान्तिकारी युवकों से तादातम्य होने पर पराड़कर जी के विचार प्रखर होते गए जिसका प्रकाशन "भारत मित्र" में होता था। वर्ष 1916 में क्रन्तिकारी पराड़कर गिरफ्तार हुए। राजबंदी के रूप में लगभग साढ़े तीन वर्षो तक वे बंगाल के विविध जेलो में थे। वे अकसर कहा करते थे कि "मैं गुप्त समितियों मैं कार्य करने के लिए ही कलकत्ता गया था, पत्रकार बनने नहीं। पत्रकरिता तो मेरे गले पड़ गयी।"

वर्ष 1920 में जेल से मुक्त होने पर पराड़कर जी काशी लौट आए तथा ज्ञानमंडल से सम्बद्ध हो गए। राष्ट्ररत्न शिवप्रसाद गुप्त जब विश्व-भ्रमण कर काशी लौटे तो उनके मन में हिंदी में एक सर्वांग सुन्दर दैनिक निकलने कि बात आयी। उन्होंने पराड़कर जी को लोकमान्य तिलक को पुणे भेजा ताकि पत्र के

लिए निर्देश प्राप्त हो सके। इस सन्दर्भ में पराड़कर जी ने "आज" के पहले अंक में लिखा "यहाँ हम इतना ही कह देना आवश्यक समझते हैं कि "आज" की जो नीति निर्धारित की गयी है, उससे स्वर्गवासी लोकमान्य कि सहानुभूति थी। लोकमान्य के दर्शन करने तथा पत्र की नीति के सम्बन्ध में आपके उद्देश्य लेने के लिए इसका लेखक गत सौर ज्येष्ठ मास के अन्त में पुणे गया था। उस समय "आज" की नीति के सम्बन्ध में आपसे बहुत कुछ बातें हुई थी तथा आपने अनेक बहुमूल्य उपदेश भी दिए थे। पर सबसे प्रधान उपदेश यही कि स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयत्न करो, लोगो को उनके स्वाभाविक अधिकार बता दो तथा धर्म का कर्तव्य पालन करते हुए भी यदि विघ्न उपस्थित हो तो उसकी परवाह मत करो और ईश्वर के न्याय पर विश्वास रखो। यह उपदेश पालन करना हमारे जीवन का उद्देश्य होगा।" पराड़कर जी ने अपनी डायरी में लिखा "ऐशी ही परतन्त्रता" विषनदि, मांगल्याविंध्यवंसिनी।"

मराठी में लिखित उनकी निम्नलिखित पंक्तियां स्वतंत्रता की महता को प्रतिपादित करती है "मृत जे ज्यानां जिवन्त करिते सुधा, बोलती सारे। मृत राष्ट्राणां जीवतं, करिते स्वतंत्रता अनुभव रे। मृनुनी हयन्तो-स्वतंत्रता ही सुधाची भुलोकिं ची, अथवा जाण सुधा असैती स्वतंत्रता स्वर्गीची।।" जिसका मतलब यह है कि मृत व्यक्ति को जीवित करने की शक्ति जिसमें है, उसे लोग अमृत कहते है। राष्ट्र को जीवित करने की शक्ति जिसमें है, उसे स्वतंत्रता कहते हैं। स्वतंत्रता पृथ्वी ही नहीं स्वर्ग की भी सुधा है।

इसी स्वतंत्रता की ध्वनि कप अनुग्रहित करने के लिए पराड़कर जी ने शब्दों में सामर्थ्य भर दिया ताकि बहरे फिरंगियों तक अपनी बातें पहुँचायी जा सके। लगता है निम्नलिखित पंक्तियों को उन्होंने आजादी के पूर्व अच्छी तरह समझ लिया था- "शब्दों में सामर्थ्य का भरे नया अंदाज। बहरे कानों को हुए अब अपनी आवाज।"

5 सितम्बर, 1920 को "आज" की सम्पादकीय टिप्पणी में उन्होंने लिखा था- "हमारा उद्देश्य अपने देश के लिए सर्ब प्रकार से स्वातंत्रय उपार्जन है। हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते है। हमारा लक्ष्य है कि हम अपने देश के गौरव को बढ़ावे, अपने देशवासियो में स्वाभिमान-संचार करें। उनको ऐसा बनावे की भारतीय होने का उन्हें अभिमान हो, संकोच न हो, यह अभिमान स्वतंत्रता देवी की उपासना करने से मिलता है।"

यही कारण था कि उनकी सम्पादकीय पंक्तिया मंत्रवत सिद्ध हुई। क्रान्तिकारी पराड़कर जी ने भारत की स्वाधीनता हेतु सर्वस्व अर्पित करने का संदेश नवयुवकों को दिया। सन् 1920 से 1942 तक काशी के क्रान्तिकारी आंदोलन के अग्रणी नेता वे ही थे। काशी में क्रान्तिकारी दल की स्थापना के मूल श्री पराड़कर जी ही थे। आचार्य नरेन्द्रदेव के अनुसार वे प्रखर उग्र राष्ट्रवादी थे- "पराड़कर जी उग्र राष्ट्रवादी थे और बंगाल के विप्लववादियों से उनका घनिष्ट सम्बन्ध था। काशी आने पर भी उनका यह पुराना सम्बन्ध नहीं टूटा और समय-समय पर क्रांतिकारी उनसे सलाह लिया करते थे।"

"रणभेरी" के सम्पादन द्वारा पराड़कर जी ने राष्ट्रीय आंदोलन को एक अप्रतिम शक्ति प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया। महर्षि अरविन्द घोष, रासबिहारी बोस, शिवराम राजगुरु सदृश क्रांतिकारियों के सानिध्य में श्री पराड़कर जी ने कलम के साथ-साथ तलवार की पूजा की। उनकी मनोभावना जानने के लिए 25 मार्च 1931 को प्रकाशित "आज" के अग्रलेख की निम्नलिखित पंक्तियां प्रस्तुत है- "सरदार भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव सोमवार को संध्या समय फाँसी पर लटका दिये गए। साधारणत फाँसी सवेरे दी जाती है। इस अवसर पर किसी कारण से शाम को दी गई। सारे देश ने दया के लिए प्रार्थना की। लाहौर के कानून पेशा लोगों ने अन्त तक उन्हें बचाने का यत्न किया, पर सब व्यर्थ हुआ, इस पर अधिक कहना-सुनना व्यर्थ है। हृदय का रक्त मुँह में लाकर इतना अवश्य कहेंगे कि यह प्रश्न तीन आदमियों के प्राणों का ही नहीं था, प्रश्न था राष्ट्र की प्रार्थना का, वह प्रार्थना अस्वीकृत हो गयी। भारतीय आकाश में प्रेम का जो सूर्योदय हुआ था, वह फिर से मेघाछन्न हो गया। हम तो इतना ही कहेंगे की ब्रिटिश शासकों का हृदय बदलने का जो प्रमाण हम ढूंढ़ रहे थे, वह हमें नहीं मिला। अब भी देश में नौकरशाही प्रथा प्रबल है।"

वर्ष 1930 में सरकारी आर्डिनेंस के विरुद्ध "आज" का प्रकाशन बंद हो गया। राष्ट्रीय आंदोलन से सुपरिचित कराने के निमित पराड़कर जी ने "आज के समाचार" बुलेटिन निकाला जिसके बंद होने पर "रणभेरी" नाम की भूमिगत पत्रिका निकाली गई। पत्र का लक्ष्य था- "रणभेरी बज उठी बीरवर पहनो केसरिया बाना"

"रणभेरी" का प्रकाशन कर पराड़कर जी ने क्रांतिकारी पत्रकारिता का प्रयोग कर स्वतंत्रता संग्राम को उद्देलित किया। 16 अगस्त 1930 की "रणभेरी" में पराड़कर जी ने लिखा- "रणभेरी उसके (पुलिस के) सर पर बजेगी और तब

तक बजती रहेगी जब तक काले कानून रहेंगें और काशी में देशभक्ति रहेगी। डरा-धमका कर लोगों को देश द्रोही बनाने का जमाना गया। "वर्ष 1925 में वृन्दावन में हिंदी साहित्य सम्मलेन हुआ।

इसी अवसर पर हिंदी सम्पादक सम्मलेन का भी आयोजन हुआ। इस अवसर पर संपादकाचार्य पराड़कर जी ने पत्रकारिता के सन्दर्भ में हो अभिमत प्रकट किया वह आह भी उपयोगी और पत्रकारिता-जगत हेतु माननीय है "हमारे समाचार पत्रों की वर्तमान अवस्था यघपि संतोषजनक नहीं है पर भविष्य उज्ज्वल है, पर यही बात सम्पादकों के भविष्य के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती, इसका कारण मैं आगे चलकर बताऊँगा। पहले पत्रों का प्रचार अधिक न होने के कारणों पर विचार करना आवश्यक है। मेरी अल्पमति के अनुसार इसके मुख्य तीन कारण हैं-(1) पत्रों का समाज के प्रतिबिम्ब न होना, (2) धनाभाव और (3)जनता में, विशेषकर हिंदी भाषियों में साक्षरता का अल्प प्रचार। पत्रों का समाज के प्रकृत जीवन से सम्बद्ध ना होने को मैं सबसे बड़ा कारण इसलिए समझता हूँ कि इसके निराकरण का उपाय बहुत-कुछ हमारे ही हाथ में है पर हम उधर ध्यान नहीं देते।

समाचार-पत्र, समाज का प्रतिबिम्ब भी होना चाहिए और उसे अपने पाठको के सामने उच्च आदर्श भी रखने चाहिए। समाज की प्रकृत अवस्था का वर्णन, गुण-दोष विवेचन, सुधार-मार्ग प्रदर्शन और मनोरंजन, यह सब समाचार पत्रों का कर्तव्य है। आजकल हमारे अच्छे सम्पादक आदर्श की ओर ही अधिक ध्यान देते हैं, अपने पत्रों को समाज का प्रतिबिम्ब बनाने कि ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते। विदेशी और अर्द्ध-विदेशी समाचार समितियाँ जो समाचार देती है, वे भी हमारी टीका-टिप्पणी के विषय होते हैं। समाचार संग्रह के हमारे स्वतंत्र साधन नहीं है। जो समाचार उपयुक्त समाचार समितियों से मिलते है, प्रायः वह लड़ाई-झगड़ों के और ऊपरी आंदोलनों के ही होते हैं और प्रायः नौकरशाही रंग में रंग होते हैं। हम और गहरे जाने का प्रयत्न नहीं करते। हमारे पाठक किन-किन श्रेणियों के हैं, उनका रहन-सहन कैसा है, उनकी जीविका के साधन क्या है, उनको जीवन-संग्राम में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनका आमोद-प्रमोद क्या है, उनकी रुचि कैसी है, वह क्या सोचते हैं और क्या चाहते हैं, इन बातों का हम सम्पादकों को बिलकुल पता नहीं रहता।

यदि मेरे किसी आदरणीय भाई को इन बातों का ज्ञान हो भी तो उसे कार्य में परिणित होते देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ है। इन बातों का हम

पता लगाया करें। लोगों को वही समाचार दे जो वह चाहते हैं और उनके जीवन संग्राम में सहायक बनने का प्रयत्न करें तो हमारे पत्रों का प्रचार देखते-देखते बढ़ जाएगा। समाचार-पत्र पढ़ना लोगों के डेली लाइफ का अंग बन जायेगा। यह अभाव केवल हिंदी पत्रों में नहीं है, इंडो-इंग्लिश, बंगला, मराठी, गुजरती, उर्दू आदि जिन-जिन भाषाओं के पत्र देखने का मुझे अवसर मिला है, सबमें यही दिखाई देता है।"

"संसार" और पराड़कर जी सन् 1943 से 14 अगस्त, 1947 तक पराड़कर जी 'संसार' के प्रधान सम्पादक थे। "संसार" के अग्रलेखों ने पाठको में नवीन जागृति पैदा की। स्वतंत्रता, आंदोलन में मर-मिट जाने की भावना भरने में 'संसार' अग्रणी पत्र था-

"किसी के कान गढ़ता, चलो दिल्ली, चलो दिल्ली। सुनाई अब यही पड़ता, चलो दिल्ली, चलो दिल्ली।"

ज्वालामुखी के मुख पर दलन, दासता, दोहन और दकियानूसी जर्जर अवस्थाओं के विरुद्ध विद्रोह की ध्वजा उड़ाना तो युग-युग में मानव-जाति की विशेषता रही है। दंड और दमन का समय लड़ चुका। पत्रकार के रूप में पराड़कर जी की दूरदर्शिता को स्पष्ट करने के निमित 25 मई 1944 को "संसार" में प्रकाशित उनकी पंक्तियां दृष्टद्रव्य है- "फिर भी हम समझते है कि भारत में अरुणोदय होने जा रहा है। इसका कारण यह है कि समस्या जब अत्यंत जटिल और असह्य हो जाती है तब उसका निपटारा हो ही जाता है। रोग आप अपनी दवा बन जाता है। हमारा विश्वास है कि रोग से भारत मुक्ति पा जाएगा, भय का स्थान आत्म-विश्वास ग्रहण करेगा-जगत में भारत अपना पद पा जाएगा।"

15 अगस्त 1947 के आज के लेख में पराड़कर जी ने लिखा स्वतंत्र होने के साथ-साथ हमारे कंधो पर जितना भरी उत्तरदायित्व आ गया है, उसे हमें न भूलना चाहिए। पत्रकारिता और पराड़कर जी की उक्तियाँ -"अपने पत्र की भाषा और अंग्रेजी दोनों का अच्छा ज्ञाता हुए बिना भारतीय भाषा के पत्रों का उपसम्पादक तो क्या संवाददाता होना भी कठिन है। पत्र बेचने के लाभ से अश्लील समाचारों को महत्त्व देकर तथा दुराचरण मूलक अपराधों का चित्ताकर्षक वर्णन कर हम परमात्मा की दृष्टि में अपराधियों से भी बड़े अपराधी ठहर रहे है, इस बात को कभी भी न भूलना चाहिए।"

वैसे सामान्य तौर पर देखा जाय तो सम्पादक में साहित्य और भाषा ज्ञान के अतिरिक्त भारत के इतिहास का सूक्ष्म और संसार के इतिहास का साधारण ज्ञान तथा समाज शास्त्र, राजनीती शास्त्र और अंतर्राष्ट्रीय विधानों का साधारण ज्ञान होना आवश्यक है। समाज के जीवन में जिन प्रश्नो पर उचित निर्णय की आवश्यकता होती है और जिन निर्णयों पर समाज का जीवन अन्त में निर्भर रहता है, उनके बारे में जनता को योग्य जानकारी कराना, उनके सम्बन्ध में जनमत का निर्माण और नेतृत्व करना, उस मत को प्रकट करना उससे अधिक से अधिक लाभ जनता को पहुँचाना एक आदर्श पत्रकार का कर्तव्य है।

आजादी के बाद पराड़कर जी ने पत्रकारिता को नए भारत के निर्माण के लिए युवाओं को प्रेरित करने का जरिया बनाया। सटीक व छोटे वाक्यों के द्वारा बढ़ी खूबसूरती से जनता तक अपनी बात पहुँचाने में बाबूरावजी को महारत हासिल थी। अपनी इसी महारत के चलते पराड़कर जी ने "आज", "भारत मित्र" और "'संसार" नामक समाचार पत्रों को एक नई बुलंदियों तक पहुँचाया। वाराणसी में 12 जनवरी 1955 को पराड़कर जी ने इस दुनिया को अलविदा कह दिया। वाराणसी में 12 जनवरी 1955 को हिंदी पत्रकारिता में मील का पत्थर कहे जाने वाले बाबूराव विष्णु पराड़कर जी ने इस दुनिया को अलविदा कह दिया।

पत्रकारिता के प्रेरणा स्रोत

हिंदी पत्रकारिता के इस भीष्म पितामह के प्रेरणा स्रोत थे, उनके मामा बंगला भाषा के प्रख्यात लेखक सखाराम गणेश देउकर। उन्होंने ही पराड़कर जी का राजनीतिक संस्कार किया। मामाजी द्वारा बाल्यकाल में ही बोए गए संस्कारों के बीज तब अनुकूल वातावरण पाकर लहलहाती समृद्ध फसल बन गए,जब आगे चलकर उन्हें लोकमान्य तिलक और योगी अरविंद घोष जैसे महान नेताओं का संपर्क एवं उनके दर्शन के स्वाध्याय का अवसर मिला।

पत्रकार जीवन

पराड़कर जी का पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण सन् 1906 में हिंदी बंगवासी में सहायक संपादक के रूप में हुआ था किंतु उसमें आत्मसंतोष न होने के कारण उन्होंने महान क्रांतिकारी योगी अरविंद घोष के नेशनल कालेज में हिंदी और मराठी का अध्यापन भी शुरू कर दिया। बंगवासी के प्रबंधक को

यह बात जँची नहीं और उसने ऐसा करने से मना किया किंतु बंगवासी के माध्यम से कांग्रेस की खिल्ली उड़ानेवाले और कटु आलोचना करनेवाले प्रबंध संपादक की बात यह उग्र राष्ट्रीय व्यक्तित्त्व भला कैसे सहन कर सकता था ? उन्होंने आत्महनन के मूल्य पर नौकरी करना उचित नहीं समझा और नौकरी छोड़ दी। सन् 1907 में उन्होंने " हितवार्ता " का संपादक पद सँभाला। यह पत्र उनके अनुकूल था क्योंकि इसमें उन्हें राजनीतिक विषयों पर गंभीर समीक्षात्मक लेख प्रस्तुत करने का मौका मिलता था।

"हितवार्ता में रहने के दौरान पराड़कर जी ने नेशनल कालेज का अध्यापन कार्य नहीं छोड़ा,बल्कि उसमें उन्होंने हिंदी अध्यापन के लिए पं अंबिका प्रसाद वाजपेयी को भी बुला लिया था,किंतु जब नेशनल कालेज भी गवर्नमेंट के प्रभाव क्षेत्र में आ गया तो अंततः उन्हें कालेज छोड़ना ही पड़ा। पराड़कर जी के जीवनी लेखक लक्ष्मीशंकर व्यास लिखते हैं कि महर्षि अरविंद घोष का नेशनल कालेज एक प्रकार से तत्कालीन क्रांतिकारियों का एक प्रधान केंद्र बन गया था। पराड़कर जी इस कालेज में हिंदी-मराठी का अध्यापन-कार्य करते थे, साथ ही यहाँ उनका क्रांतिदलवालों से भी संपर्क होता था। अध्यापन के समय पराड़कर जी छात्रों को फ्रांस और रूसी क्रांति का इतिहास बताते हुए इस बात पर बल देते थे कि देश के युवकों पर भारत माता की स्वतंत्रत का भारी उत्तरदायित्व है। हमारा देश परतंत्र है,इसे स्वतंत्र करना चाहिए।

सन् 1910 में हितवार्ता के प्रकाशन के बंद होने के बाद पराड़कर जी ने भारत मित्र में पं अंबिका प्रसाद वाजपेयी के साथ काम करना शुरू कर दिया। इन दोनों तपस्वियों ने मिलकर भारत मित्र के स्तर को बहुत उन्नत किया था। प्रतिदिन यह पत्र 4000 की संख्या में छपता था। दुर्भाग्यवश उन्हीं दिनों कोलकाता के तत्कालीन डिप्टी पुलिस सुपरिंटेंडेंट की हत्या हो गई और 1 जुलाई 1916 को क्रांतिकारी दल में कार्य करने के अपराध में उन्हें साढ़े तीन वर्ष का कारावास हो गया। किन्तु, प्रमाण के अभाव में जनता के भावी प्रतिकार की आशंका से मजबूर होकर अंग्रेज सरकार ने 1920 में उन्हें जेल से मुक्त कर दिया। भारत मित्र के तत्कालीन संपादक पं. लक्ष्मण नारायण गर्दे ने उनसे भारत मित्र के संपादन हेतु अनुरोध किया किंतु पराड़कर जी ने स्वीकार नहीं किया और काशी चले गए।

काशी में उन दिनों हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि के लिए बाबू शिवराम प्रसाद गुप्त ने 'ज्ञानमंडल ' की स्थापना की थी। उन्होंने पराड़कर जी से अपने

प्रकाशन से एक दैनिक पत्र का संपादन- भार उठाने के लिये आग्रह किया और उस आग्रह पर पराड़कर जी ने पुनः अपने पत्रकार रूप को ग्रहण किया। इस प्रकार 'काशी' से इनके संपादन में 'आज' निकला और बीच में कई बार 'आज' से संबंध टूटते रहने के बावजूद इनके पत्रकार- जीवन का अधिक समय 'आज' में ही बीता। इनके क्रांतिकारी–काल की उपलब्धियों में से इनके द्वारा 'संसार' का संपादन और 'रणभेरी' का प्रकाशन भी है। स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद भी उनकी लेखनी सामाजिक पुनर्जागरण में सार्थक भूमिका निबाहती रही।

सम्मान और पुरस्कार

पराड़कर जी सन् 1925 में वृंदावन साहित्य सम्मेलन के अवसर पर आयोजित प्रथम संपादक सम्मेलन के सभापति बनाये गये थे। इस अवसर पर उन्होंने हिंदी पत्रकारिता के अतीत और वर्तमान पर ही नहीं, उसके भविष्य की रूपरेखा भी एक युगद्रष्टा की भाँति प्रस्तुत की थी। सन् 1938 में आज हिंदी-साहित्य सम्मेलन के सत्ताईसवें अधिवेशन के सभापति चुने गए थे। सन् 1953 में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा ने इन्हें हिंदी सेवा के लिये 1501 रु. का 'महात्मा गांधी पुरस्कार' दिया था।

हिंदी की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा

पराड़कर जी के हिन्दी प्रेम के बारे में कृष्ण बिहारी मिश्र 3 लिखते हैं कि हिंदी के पुराने पंडितों से इनका संबंध था। इतना ही नहीं, हिंदी के अनेक श्रेष्ठ लेखकों के निर्माण में पराड़कर जी का योग रहा है। हिंदी के सभी पुराने-नए श्रेष्ठ लेखक पराड़कर जी का सम्मान करते थे। पराड़कर जी केवल हिंदी के पत्रकार ही नहीं थे, बल्कि अहिंदी भाषी परिवार में जन्म ले उन्होंने हिंदी को जो समर्थन दिया तथा हिंदी भाषा और साहित्य को अपनी अनवरत साधना द्वारा जो समृद्धि दी,उसके लिए हिंदी संसार पर उनका अशेष ऋण है। चूँकि उनका कई देशी भाषाओं पर अधिकार था इसलिए हिंदी का वे अधिक उपकार कर सके।

हिंदी की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का पक्ष समर्थन करते हुए पराड़कर जी ने लिखा था कि "यह सारे देश की भाषा है। इसमें प्रांतीय अभिमान बिल्कुल नहीं है,जो बात अन्य भाषाओं के संबंध में नहीं कही जा सकती। यही नहीं हिंदी में प्रांतीय अभाव के साथ-साथ इसमें अन्य प्रांतों के संबंध में अवज्ञासूचक कोई

शब्द भी नहीं है,यह भी इसकी राष्ट्रीयता का एक प्रमाण है। इसके लेखकों का लक्ष्य हिंद होता है,कोई प्रांत विशेष नहीं। हिंदी राष्ट्र के लिए राष्ट्र के मुँह से बोलती है क्योंकि वह राष्ट्र की भाषा है।"

लोकप्रिय अग्रलेख

चरखे का संदेशा,समस्या और समाधान,महात्मा गाँधी की पुकार और क्रांतिकारियों की फाँसी आदि लेख पराड़कर जी के लोकप्रिय अग्रलेखों में से हैं। 'चरखे का संदेशा' में पराड़कर जी ने चरखा,एकता और अछूतोद्धार का संदेश घर-घर पहुँचाने की अपील की है। उनका विश्वास है कि यदि हम अन्न और वस्त्र के मामले में स्वतंत्र हो जायँ तो कोई संदेह नहीं कि स्वराज्य हम हासिल कर लेंगे। 'महात्मा गांधी की पुकार' में महात्मा गाँधी के मार्मिक भाषणों का उदाहरण देते हुए उन्होंने भारत की जिंदादिली और गांधी जैसे नेता के नेतृत्व को ईश्वर की कृपा का परिचायक बतलाया है। 'क्रांतिकारियों की फाँसी' में जिस शैली में यथार्थ को सहज ढंग से पराड़कर जी ने प्रस्तुत किया है, उसे पढ़कर कलेजा टूक-टूक हो जाता है। निरंकुश अंग्रेजी साम्राज्य को निर्भीकता से चुनौती देने की क्षमता पराड़कर जी के संपादकीय लेखों में बराबर होती थी।

29 अक्तूबर'1930 से 8 मार्च 1931 तक सरकारी नीति के विरोध में संपादकीय स्थल को खाली रखकर उस पर उनका केवल यह वाक्य होता था–"देश की दरिद्रता, विदेश जानेवाली लक्ष्मी, सिर पर बरसानेवाली लाठियाँ, देशभक्तों से भरनेवाले कारागार–इन सबको देखकर प्रत्येक देशभक्त के हृदय में जो अहिंसामूलक विचार उत्पन्न हों,वही संपादकीय विचार है।"

संपादक और पत्रकारिता–ज्ञान सीमा और धर्म

संपादकों के लिए अपेक्षित न्यूनतम ज्ञान सीमा के संदर्भ में पराड़कर जी की मान्यता थी कि एक संपादक के लिए साहित्य,भाषा विज्ञान,समाजशास्त्र,राजनीतिशास्त्र तथा अंतर्राष्ट्रीय विधानों का सामान्य ज्ञान होना अनिवार्य है। उनके अनुसार किसी भी समाचार-पत्र के मुख्यत: दो धर्म होते हैं-एक तो समाज का चित्र खींचना और दूसरे सदुपदेश देना। इस दूसरे धर्म पर पराड़कर जी ज्यादा बल देते थे। उनकी यह मान्यता थी कि देश की सच्ची सेवा इसी शिक्षा धर्म के द्वारा की जा सकती है। यही कारण था कि वे अपने पत्रों में हमेशा ऊँचे चरित्रों एवं ऊँचे आदर्शों को स्थान दिया करते थे। आज की

सर्वांगत: अपराध पत्रकारिता की कल्पना उन्होंने भविष्य द्रष्टा की भाँति पाँच दशक पूर्व ही कर ली थी और कहा था कि "भ्रातृभाव से मैं आप सब संपादकों से प्रार्थना करता हूँ कि परमेश्वर ने आपको जो बड़ा पद दिया है उसका सदुपयोग कीजिए और समाज को सदा उन्नत करते रहना अपना धर्म समझिए।

पराड़कर जी ने स्वतंत्रता संग्राम के एक उग्र क्रांतिकारी और एक सफल राष्ट्रीय पत्रकार के दायित्व का सफल निर्वहन किया है। आपने हिंदी पत्रकारिता को राष्ट्रीय जागरण का ही माध्यम नहीं बनाया है,वरन् भाषा और साहित्य के उत्थान में भी ऐतिहासिक भूमिका दी है। डा संपूर्णानंद ने इनकी हिंदी सेवा का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि " दु:खमय कौटुंबिक जीवन,अच्छिद्र आर्थिक कष्ट, निरंतर राजनीतिक संघर्ष–इन सबके बीच में रहते हुए पराड़कर जी ने हिंदी पत्रकारिता को जो अमूल्य निधि प्रदान की,उससे हिंदी जगत जल्दी उऋण नहीं हो सकता।

7

गणेश शंकर विद्यार्थी

अपनी बेबाकी और अलग अंदाज से दूसरों के मुंह पर ताला लगाना एक बेहद मुश्किल काम होता है। कलम की ताकत हमेशा से ही तलवार से अधिक रही है और ऐसे कई पत्रकार हैं जिन्होंने अपनी कलम से सत्ता तक की राह बदल दी। गणेश शंकर विद्यार्थी भी ऐसे ही पत्रकार रहे हैं जिन्होंने अपने कलम की ताकत से अंग्रेजी शासन की नीव हिला दी थी।

26 सितंबर 1890 को कानपुर में जन्मे गणेश शंकर विद्यार्थी एक निडर और निष्पक्ष पत्रकार तो थे ही, एक समाज-सेवी, स्वतंत्रता सेनानी और कुशल राजनीतिज्ञ भी थे। गणेश शंकर विद्यार्थी एक ऐसे स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे जो कलम और वाणी के साथ-साथ महात्मा गांधी के अहिंसक समर्थकों और क्रांतिकारियों को समान रूप से देश की आजादी में सक्रिय सहयोग प्रदान करते रहे।

गणेश शंकर विद्यार्थी की शिक्षा-दीक्षा मुंगावली (ग्वालियर) में हुई थी। इन्होंने उर्दू-फारसी का अध्ययन किया। वह आर्थिक कठिनाइयों के कारण एंट्रेंस तक ही पढ़ सके, किन्तु उनका स्वतंत्र अध्ययन अनवरत चलता ही रहा। अपनी लगन के बल पर उन्होंने पत्रकारिता के गुणों को खुद में सहेज लिया था। शुरू में गणेश शंकर जी को एक नौकरी भी मिली थी पर अंग्रेज अधिकारियों से ना पटने के कारण उन्होंने वह नौकरी छोड़ दी।

पत्रकारिता के क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य करने के कारण उन्हें पांच बार सश्रम कारागार और अर्थदंड अंग्रेजी शासन ने दिया। विद्यार्थी जी के जेल जाने पर 'प्रताप' का संपादन माखनलाल चतुर्वेदी व बालकृष्ण शर्मा नवीन करते थे।

उनके समय में श्यामलाल गुप्त पार्षद ने राष्ट्र को एक ऐसा बलिदानी गीत दिया जो देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक छा गया। यह गीत 'झण्डा ऊंचा रहे हमारा' है। इस गीत की रचना के प्रेरक थे अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी। जालियावाला बाग के बलिदान दिवस 13 अप्रैल 1924 को कानपुर में इस झंडा गीत के गाने का शुभारंभ हुआ था।

विद्यार्थी जी की शैली में भावात्मकता, ओज, गाम्भीर्य और निर्भीकता भी पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। उनकी भाषा कुछ इस तरह की थी जो हर किसी के मन पर तीर की भांति चुभती थी। गरीबों की हर छोटी से छोटी परेशानी को वह अपनी कलम की ताकत से दर्द की कहानी में बदल देते थे।

गणेश शंकर विद्यार्थी की मृत्यु कानपुर के हिन्दू-मुस्लिम दंगे में निस्सहायों को बचाते हुए 25 मार्च, 1931 ई. को हुई. गणेश शंकर जी की मृत्यु देश के लिए एक बहुत बड़ा झटका रही। गणेश शंकर विद्यार्थी एक ऐसे साहित्यकार रहे हैं जिन्होंने देश में अपनी कलम से सुधार की क्रांति उत्पन्न की।

जीवन परिचय

पंडित गणेश शंकर 'विद्यार्थी' का जन्म आश्विन शुक्ल 14, रविवार सं. 1947 (1890 ई.) को अपने ननिहाल, इलाहाबाद के अतरसुइया मोहल्ले में श्रीवास्तव (कायस्थ) परिवार में हुआ था। इनके पिता मुंशी जयनारायण कायस्थ हथगाँव, जिला फतेहपुर (उत्तर प्रदेश) के निवासी थे। माता का नाम गोमती देवी था। पिता ग्वालियर रियासत में मुंगावली के ऐंग्लो वर्नाक्युलर स्कूल के हेडमास्टर थे। वहीं विद्यार्थी जी का बाल्यकाल बीता तथा शिक्षा-दीक्षा हुई। विद्यारंभ उर्दू से हुआ और 1905 ई. में भेलसा से अंग्रेजी मिडिल परीक्षा पास की। 1907 ई. में प्राइवेट परीक्षार्थी के रूप में कानपुर से एंट्रेंस परीक्षा पास करके आगे की पढ़ाई के लिए इलाहाबाद के कायस्थ पाठशाला कालेज में भर्ती हुए। उसी समय से पत्रकारिता की ओर झुकाव हुआ और भारत में अंग्रेजी राज के यशस्वी लेखक पंडित सुन्दर लाल कायस्थ इलाहाबाद के साथ उनके हिंदी साप्ताहिक कर्मयोगी के संपादन में सहयोग देने लगे। लगभग एक वर्ष कालेज में पढ़ने के बाद 1908 ई. में कानपुर के करेंसी आफिस में 30 रु. मासिक की नौकरी की। परंतु अंग्रेज अफसर से झगड़ा हो जाने के कारण उसे छोड़कर पृथ्वीनाथ हाई स्कूल, कानपुर में 1910 ई. तक अध्यापकी की। इसी अवधि में

सरस्वती, कर्मयोगी, स्वराज्य (उर्दू) तथा हितवार्ता (कलकत्ता) में समय-समय पर लेख लिखने लगे।

1911 में विद्यार्थी जी सरस्वती में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के सहायक के रूप में नियुक्त हुए। कुछ समय बाद 'सरस्वती' छोड़कर 'अभ्युदय' में सहायक संपादक हुए। यहाँ सितंबर, 1913 तक रहे। दो ही महीने बाद 9 नवम्बर 1913 को कानपुर से स्वयं अपना हिंदी साप्ताहिक प्रताप के नाम से निकाला। इसी समय से 'विद्यार्थी' जी का राजनीतिक, सामाजिक और प्रौढ़ साहित्यिक जीवन प्रारंभ हुआ। पहले इन्होंने लोकमान्य तिलक को अपना राजनीतिक गुरु माना, किंतु राजनीति में गांधी जी के अवतरण के बाद आप उनके अनन्य भक्त हो गए। श्रीमती एनीं बेसेंट के 'होमरूल' आंदोलन में विद्यार्थी जी ने बहुत लगन से काम किया और कानपुर के मजदूर वर्ग के एक छात्र नेता हो गए। कांग्रेस के विभिन्न आंदोलनों में भाग लेने तथा अधिकारियों के अत्याचारों के विरुद्ध निर्भीक होकर 'प्रताप' में लेख लिखने के संबंध में ये 5 बार जेल गए और 'प्रताप' से कई बार जमानत माँगी गई। कुछ ही वर्षों में वे उत्तर प्रदेश (तब संयुक्तप्रात) के चोटी के कांग्रेस नेता हो गए। 1925 ई. में कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन की स्वागत-समिति के प्रधानमंत्री हुए तथा 1930 ई. में प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष हुए। इसी नाते सन् 1930 ई. के सत्याग्रह आंदोलन के अपने प्रदेश के सर्वप्रथम 'डिक्टेटर' नियुक्त हुए।

साप्ताहिक 'प्रताप' के प्रकाशन के 7 वर्ष बाद 1920 ई. में विद्यार्थी जी ने उसे दैनिक कर दिया और 'प्रभा' नाम की एक साहित्यिक तथा राजनीतिक मासिक पत्रिका भी अपने प्रेस से निकाली। 'प्रताप' किसानों और मजदूरों का हिमायती पत्र रहा। उसमें देशी राज्यों की प्रजा के कष्टों पर विशेष सतर्क रहते थे। 'चिट्ठी पत्री' स्तंभ 'प्रताप' की निजी विशेषता थी। विद्यार्थी जो स्वयं तो बड़े पत्रकार थे ही, उन्होंने कितने ही नवयुवकों को पत्रकार, लेखक और कवि बनने की प्रेरणा तथा ट्रेनिंग दी। ये 'प्रताप' में सुरुचि और भाषा की सरलता पर विशेष ध्यान देते थे। फलतः सरल, मुहावरेदार और लचीलापन लिए हुए चुस्त हिंद की एक नई शैली का इन्होंने प्रवर्तन किया। कई उपनामों से भी ये प्रताप तथा अन्य पत्रों में लेख लिखा करते थे।

अपने जेल जीवन में इन्होंने विक्टर ह्यूगो के दो उपन्यासों, 'ला मिजरेबिल्स' तथा 'नाइंटी थ्री' का अनुवाद किया। हिंदी साहित्य सम्मलेन के 19 वें (गोरखपुर) अधिवेशन के ये सभापति चुने गए। विद्यार्थी जी बड़े सुधारवादी

किंतु साथ ही धर्मपरायण और ईश्वर भक्त थे। वक्ता भी बहुत प्रभावपूर्ण और उच्च कोटि के थे। यह स्वभाव के अत्यंत सरल, किंतु क्रोधी और हठी भी थे। कानपुर के सांप्रदायिक दंगे में मुस्लिमों द्वारा 25 मार्च 1931 ई. को इनकी हत्या कर दी गई।

व्यावसायिक शुरुआत

गणेश शंकर विद्यार्थी अपनी आर्थिक कठिनाइयों के कारण एण्ट्रेंस तक ही पढ़ सके। किन्तु उनका स्वतंत्र अध्ययन अनवरत चलता ही रहा। अपनी मेहनत और लगन के बल पर उन्होंने पत्रकारिता के गुणों को खुद में भली प्रकार से सहेज लिया था। शुरु में गणेश शंकर जी को सफलता के अनुसार ही एक नौकरी भी मिली थी, लेकिन उनकी अंग्रेज अधिकारियों से नहीं पटी, जिस कारण उन्होंने वह नौकरी छोड़ दी।

सम्पादन कार्य

इसके बाद कानपुर में गणेश जी ने करेंसी ऑफिस में नौकरी की, किन्तु यहाँ भी अंग्रेज अधिकारियों से इनकी नहीं पटी। अत: यह नौकरी छोड़कर अध्यापक हो गए। महावीर प्रसाद द्विवेदी इनकी योग्यता पर रीझे हुए थे। उन्होंने विद्यार्थी जी को अपने पास 'सरस्वती' के लिए बुला लिया। विद्यार्थी जी की रुचि राजनीति की ओर पहले से ही थी। यह एक ही वर्ष के बाद 'अभ्युदय' नामक पत्र में चले गये और फिर कुछ दिनों तक वहीं पर रहे। इसके बाद सन् 1907 से 1912 तक का इनका जीवन अत्यन्त संकटापन्न रहा। इन्होंने कुछ दिनों तक 'प्रभा' का भी सम्पादन किया था। 1913, अक्टूबर मास में 'प्रताप' (साप्ताहिक) के सम्पादक हुए। इन्होंने अपने पत्र में किसानों की आवाज बुलन्द की।

लोकप्रियता

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं पर विद्यार्थी जी के विचार बड़े ही निर्भीक होते थे। विद्यार्थी जी ने देशी रियासतों की प्रजा पर किये गये अत्याचारों का भी तीव्र विरोध किया। गणेश शंकर विद्यार्थी कानपुर के लोकप्रिय नेता तथा पत्रकार, शैलीकार एवं निबन्ध लेखक रहे थे। यह अपनी अतुल देश भक्ति और अनुपम आत्मोसर्ग के लिए चिरस्मरणीय रहेंगे। विद्यार्थी

जी ने प्रेमचन्द की तरह पहले उर्दू में लिखना प्रारम्भ किया था। उसके बाद हिन्दी में पत्रकारिता के माध्यम से वे आये और आजीवन पत्रकार रहे। उनके अधिकांश निबन्ध त्याग और बलिदान सम्बन्धी विषयों पर आधारित हैं। इसके अतिरिक्त वे एक बहुत अच्छे वक्ता भी थे।

साहित्यिक अभिरुचि

पत्रकारिता के साथ-साथ गणेश शंकर विद्यार्थी की साहित्यिक अभिरुचियाँ भी निखरती जा रही थीं। आपकी रचनायें 'सरस्वती', 'कर्मयोगी', 'स्वराज्य', 'हितवार्ता' में छपती रहीं। आपने 'सरस्वती' में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सहायक के रूप में काम किया था। हिन्दी में 'शेखचिल्ली की कहानियाँ' आपकी देन है। 'अभ्युदय' नामक पत्र जो कि इलाहाबाद से निकलता था, से भी विद्यार्थी जी जुड़े। गणेश शंकर विद्यार्थी ने अंततोगत्वा कानपुर लौटकर 'प्रताप' अखबार की शुरूआत की। 'प्रताप' भारत की आजादी की लड़ाई का मुख-पत्र साबित हुआ। कानपुर का साहित्य समाज 'प्रताप' से जुड़ गया। क्रान्तिकारी विचारों व भारत की स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया था-प्रताप। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के विचारों से प्रेरित गणेश शंकर विद्यार्थी 'जंग-ए-आजादी' के एक निष्ठावान सिपाही थे। महात्मा गाँधी उनके नेता और वे क्रान्तिकारियों के सहयोगी थे। सरदार भगत सिंह को 'प्रताप' से विद्यार्थी जी ने ही जोड़ा था। विद्यार्थी जी ने राम प्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा प्रताप में छापी, क्रान्तिकारियों के विचार व लेख प्रताप में निरन्तर छपते रहते।

भाषा-शैली

गणेश शंकर विद्यार्थी की भाषा में अपूर्व शक्ति है। उसमें सरलता और प्रवाहमयता सर्वत्र मिलती है। विद्यार्थी जी की शैली में भावात्मकता, ओज, गाम्भीर्य और निर्भीकता भी पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। उसमें आप वक्रता प्रधान शैली ग्रहण कर लेते हैं। जिससे निबन्ध कला का ह्रास भले होता दिखे, किन्तु पाठक के मन पर गहरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। उनकी भाषा कुछ इस तरह की थी, जो हर किसी के मन पर तीर की भांति चुभती थी। गरीबों की हर छोटी से छोटी परेशानी को वह अपनी कलम की ताकत से दर्द की कहानी में बदल देते थे।

पत्रकारिता के पुरोधा

विद्यार्थी जी का बचपन विदिशा और मुंगावली में बीता। किशोर अवस्था में उन्होंने समाचार पत्रों के प्रति अपनी रुचि को जाहिर कर दिया था। वे उन दिनों प्रकाशित होने वाले भारत मित्र, बंगवासी जैसे अन्य समाचार पत्रों का गंभीरता पूर्वक अध्ययन करते थे। इसका असर यह हुआ कि पठन-पाठन के प्रति उनकी रुचि दिनों दिन बढ़ती गई। उन्होंने अपने समय के विख्यात विचारकों वाल्टेयर, थोरो, इमर्सन, जान स्टुअर्ट मिल, शेख सादी सहित अन्य रचनाकारों की कृतियों का अध्ययन किया। वे लोकमान्य तिलक के राष्ट्रीय दर्शन से बेहद प्रभावित थे। महात्मा गांधी ने उन दिनों अंग्रेजों के खिलाफ अहिंसात्मक आंदोलन की शुरूआत की थी, जिससे विद्यार्थी जी सहमत नहीं थे, क्योंकि वे स्वभाव से उग्रवादी विचारों के थे। विद्यार्थी जी ने मात्र 16 वर्ष की अल्प आयु में 'हमारी आत्मोसर्गता' नामक एक किताब लिख डाली थी। वर्ष 1911 में भारत के चर्चित समाचार पत्र 'सरस्वती' में उनका पहला लेख 'आत्मोसर्ग' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था, जिसका संपादक हिन्दी के उद्भूत, विद्धान, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा किया जाता था। वे द्विवेदी के व्यक्तित्त्व एवं विचारों से प्रभावित होकर पत्रकारिता के क्षेत्र में आये। श्री द्विवेदी के सान्निध्य में सरस्वती में काम करते हुए उन्होंने साहित्यिक, सांस्कृतिक सरोकारों के प्रति अपना रुझान बढ़ाया। इसके साथ ही वे महामना पंडित मदन मोहन मालवीय के पत्र 'अभ्युदय' से भी जुड़ गये। इन समाचार पत्रों से जुड़े और स्वाधीनता के लिए समर्पित पंडित मदन मोहन मालवीय, जो कि राष्ट्रवाद की विचारधारा का जन जन में प्रसार कर सके।

'प्रताप' का प्रकाशन

अपने सहयोगियों एवं वरिष्ठजनों से सहयोग मार्गदर्शन का आश्वासन पाकर अंततः विद्यार्थी जी ने 9 नवम्बर 1913 से 'प्रताप' नामक समाचार पत्र का प्रकाशन प्रारंभ कर दिया। इस समाचार पत्र के प्रथम अंक में ही उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि हम राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन, सामाजिक आर्थिक क्रांति, जातीय गौरव, साहित्यिक सांस्कृतिक विरासत के लिए, अपने हक अधिकार के लिए संघर्ष करेंगे। विद्यार्थी जी ने अपने इस संकल्प को प्रताप में लिखे अग्रलेखों को अभिव्यक्त किया जिसके कारण अंग्रेजों ने उन्हें जेल भेजा,

जुर्माना किया और 22 अगस्त 1918 में प्रताप में प्रकाशित नानक सिंह की 'सौदा ए वतन' नामक कविता से नाराज अंग्रेजों ने विद्यार्थी जी पर राजद्रोह का आरोप लगाया व 'प्रताप' का प्रकाशन बंद करवा दिया। आर्थिक संकट से जूझते विद्यार्थी जी ने किसी तरह व्यवस्था जुटाई तो 8 जुलाई 1918 को फिर प्रताप की शुरूआत हो गई। प्रताप के इस अंक में विद्यार्थी जी ने सरकार की दमनपूर्ण नीति की ऐसी जोरदार खिलाफत कर दी कि आम जनता प्रताप को आर्थिक सहयोग देने के लिए मुक्त हस्त से दान करने लगी। जनता के सहयोग से आर्थिक संकट हल हो जाने पर साप्ताहिक प्रताप का प्रकाशन 23 नवम्बर 1990 से दैनिक समाचार पत्र के रुप में किया जाने लगा। लगातार अंग्रेजों के विरोध में लिखने से प्रताप की पहचान सरकार विरोधी बन गई और तत्कालीन मजिस्टेट मि. स्ट्राइफ ने अपने हुक्मनामें में प्रताप को 'बदनाम पत्र' की संज्ञा देकर जमानत की राशि जप्त कर ली। अंग्रेजों का कोपभाजन बने विद्यार्थी जी को 23 जुलाई 1921, 16 अक्टूबर 1921 में भी जेल की सजा दी गई परन्तु उन्होंने सरकार के विरुद्ध कलम की धार को कम नहीं किया। जेलयात्रा के दौरान उनकी भेंट माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सहित अन्य साहित्यकारों से भी हुई।

मृत्यु

गणेश शंकर विद्यार्थी की मृत्यु कानपुर के हिन्दू-मुस्लिम दंगे में निस्सहायों को बचाते हुए 25 मार्च सन् 1931 ई. में हो गई। विद्यार्थी जी साम्प्रदायिकता की भेंट चढ़ गए थे। उनका शव अस्पताल की लाशों के मध्य पड़ा मिला। वह इतना फूल गया था कि, उसे पहचानना तक मुश्किल था। नम आँखों से 29 मार्च को विद्यार्थी जी का अंतिम संस्कार कर दिया गया। गणेश शंकर विद्यार्थी एक ऐसे साहित्यकार रहे, जिन्होंने देश में अपनी कलम से सुधार की क्रांति उत्पन्न की।

8

भीमराव अंबेडकर

डॉ. आंबेडकर ने 27 सितंबर, 1951 को केंद्रीय मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया था। अपने त्यागपत्र देने के कारणों के संबंध में उन्होंने एक वक्तव्य 10 अक्टूबर 1951 को नई दिल्ली में जारी किया था। संसद के बाहर इस वक्तव्य को जारी करने का कारण यह था कि संसद में उन्हें यह वक्तव्य देने से रोका गया था, क्योंकि वे वक्तव्य की प्रति अध्यक्ष को भाषण से पहले नहीं सौंपना चाहते थे।

यह वक्तव्य उनके त्यागपत्र देने के कारणों के संबंध में था। इस वक्तव्य में संसद को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि उन्हें तीन वजहों से त्याग पत्र के संबंध में वक्तव्य देना पड़ रहा है। तीसरी वजह पत्रकारिता से संबंधित है। उन्होंने कहा कि "तीसरे, हमारे यहां के अखबार भी हैं, जो कुछ लोगों के लिए सदियों पुराने पक्षपात और अन्य के खिलाफ पूर्वाग्रह रखते आए हैं। उनकी धारणाएं तथ्यों पर कम ही आधारित होती हैं। जब उन्हें कोई रिक्त स्थान दिखाई देता है, वे उसे भरने के लिए ऐसी बातों का सहारा लेते हैं, जिसमें उनके प्रिय लोग बेहतर नजर आएं और जिनका वे पक्ष नहीं लेते, वे गलत नजर आएं। ऐसा ही कुछ मेरे मामले में हुआ है, ऐसा मुझे लगता है।"

कल्पना कीजिए, डॉ. आंबेडकर जैसे व्यक्तित्त्व को अखबारों के सदियों पुराने पक्षपात और पूर्वाग्रह ने इस कदर व्यथित किया कि उन्हें सार्वजनिक तौर पर उनके पक्षपातपूर्ण, पूर्वाग्रह ग्रसित और तथ्यहीन रवैये की हकीकत को लोगों के सामने उजागर करने के लिए वक्तव्य जारी करना पड़ा। अखबारों के चरित्र के बारे में डॉ. आंबेडकर के वक्तव्य पर गौर करें तो चार बातें सामने आती हैं।

पहली बात यह कि 1951 में भी पक्षपात और पूर्वाग्रहयुक्त नजरिया भारतीय अखबारों का पहला लक्षण था। दूसरी बात यह कि अखबारों की रिपोर्टें तथ्यों पर आधारित नहीं होती थीं और तीसरी बात यह कि वे सच को ऐसे प्रस्तुत करते हैं जिससे उनके पसंदीदा लोग सही नजर आएं और जिन्हें वे नापसंद करते हैं, उनकी गलत तस्वीर प्रस्तुत हो। चौथी बात यह है कि अखबारों के इस तरह के बर्ताव का शिकार डॉ. आंबेडकर जैसा व्यक्तित्त्व भी उस समय हुआ, जब वे भारत के संविधान के मुख्य वास्तुकार के रूप में स्थापित हो चुके थे और केंद्रीय मंत्रिमंडल के सदस्य थे तथा उस समय संसद के सदस्य और भारत के चंद शीर्ष नेताओं एवं शख्सियतों में एक थे।

अखबारों के चरित्र संबंधी डॉ. आंबेडकर के उपरोक्त वक्तव्य में ध्यान देने की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे सदियों पुराने पक्षपात और पूर्वाग्रह की बात कर रहे हैं। कोई भी सहज निष्कर्ष निकाल सकता है कि यहां सीधा इशारा सदियों पुराने जातिगत पक्षपात और पूर्वाग्रह की तरफ है। इस वक्तव्य में वे परोक्ष तौर पर यह भी रेखांकित कर रहे हैं कि किसी भी अखबार को किन बुनियादी शर्तों का पालन करना चाहिए। पहला यह कि किसी भी अखबार को पक्षपातहीन और पूर्वाग्रह मुक्त रिपोर्टिंग करनी चाहिए। दूसरी बात, यह रिपोर्टिंग तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए न कि मनोगत धारणाओं पर। तीसरी बात यह कि किसी भी व्यक्तित्त्व को नायक या खलनायक अपनी पसंद-नापसंद के आधार पर नहीं, बल्कि तथ्यों के आधार पर बनाना चाहिए।

अधिकांश भारतीय अखबार सदियों पुराने जातिगत पक्षपात और जाति आधरित पूर्वाग्रह और पक्षपात से ग्रस्त हैं, जिसका अहसास बाबासाहेब को वर्षों पहले ही हो गया था। इसकी सबसे पहली मुखर अभिव्यक्ति 31 जनवरी, 1920 को 'मूकनायक' पाक्षिक के प्रथम संपादकीय/अग्रलेख में इस रूप में हुई–"मुंबई से निकलने वाले समाचार पत्रों को बारीकी से देखा जाए तो पता चलता है कि उनमें अधिकतर पत्र किसी विशिष्ट जाति के हित को संरक्षित करते हैं। दूसरी जातियों की उन्हें परवाह नहीं। इतना ही नहीं, कभी-कभी उन्हें नुकसान पहुँचाने वाली बातें भी उन पत्रों में दिखाई देती हैं"।

चूंकि अधिकांश अखबार जातीय पक्षपात और पूर्वाग्रह से भरे होने के साथ अन्य जातियों (बहिष्कृतों) के हितों को नुकसान भी पहुँचा रहे थे। इस स्थिति में डॉ. आंबेडकर को बहिष्कृतों के हितों की रक्षा करने के लिए अखबार की सख्त जरूरत महसूस हुई। उन्होंने लिखा–"बहिष्कृत लोगों पर आज हो रहे

और भविष्य में होने वाले अन्याय पर योजनाबद्ध तरीके से विचार करना होगा। उसी के साथ भावी प्रगति तथा उसे प्राप्त करने के रास्ते की सच्ची जानकारी के संबंध में भी चर्चा करनी होगी। चर्चा करने के लिए समाचार-पत्र जैसी दूसरी जगह नहीं है"।

उपर्युक्त पंक्तियों में सबसे अंतिम पंक्ति पर ध्यान देना अत्यन्त जरूरी है, जिसमें उन्होंने रेखांकित किया है कि बहिष्कृतों के हितों के लिए समाचार-पत्र कितना महत्त्वपूर्ण हैं। यहां यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि आंबेडकर के लिए यहां बहिष्कृत का अर्थ अछूत कहे जाने वाले समुदाय से है। 'मूकनायक' के पहले संपादकीय में उन्होंने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है–"सत्ता और ज्ञान के अभाव में ब्राह्मणेत्तर (मुख्य रूप से वर्तमान के ओबीसी) पिछड़े रह गए। यही कारण है कि उनकी प्रगति नहीं हो सकी, यह बात स्पष्ट है। परंतु उनके दुख में दरिद्रता शामिल नहीं थी क्योंकि उनके लिए खेती, व्यापार-उद्योग अथवा नौकरी करके जीवन-यापन करना कठिन नहीं था। लेकिन सामाजिक भेद-भाव के कारण अछूत, बहिष्कृत समाज पर जो प्रभाव पड़ा, वह बड़ा ही भयानक है। दुर्बलता, द्ररिद्रता और अज्ञान की त्रिवेणी (तीन नदियों का मिलन स्थल) में इतना बड़ा बहिष्कृत, अछूत समाज पूर्णतः बह गया है"।

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि डॉ. आंबेडकर बहिष्कृत और अछूत शब्द का प्रयोग एक दूसरे के पर्याय के रूप में कर रहे हैं और इसी बहिष्कृत समाज पर होने वाले अत्याचारों से दुनिया को परिचित कराने और इससे मुक्ति के उपायों पर विचार करने के लिए उन्होंने अपना पहला अखबार 'मूकनायक' निकाला था। लेकिन यहां भी स्पष्ट कर लेना जरूरी है कि उन्होंने अपने इस अखबार और उनके द्वारा बाद में निकाले गए अन्य चार अखबारों (बहिष्कृत भारत, समता, जनता और प्रबुद्ध भारत) को कभी भी उन्होंने सदियों के जातीय पक्षपात और पूर्वाग्रह से ग्रसित होने नहीं दिया। उनका मानना था कि यदि कोई अखबार किसी जाति विशेष को नुकसान पहुँचाता है तो वह पूरे समाज का अहित करता है जिसमें सभी जातियां शामिल हैं। इस तथ्य को उन्होंने 'मूकनायक' के पहले ही संपादकीय में एक ही नांव (पानी वाली जहाज) में सवार लोगों के उदाहरण से समझाया। जातिवादी समाचार-पत्रों को चेताते और समझाते हुए उन्होंने लिखा–"ऐसे समाचार-पत्रों से हमारा कहना है कि समाज में यदि कोई एक जाति पतन की ओर जाती है तब उसकी अवनति का कलंक दूसरी जातियों पर लगने से रोका नहीं जा सकता है। समाज एक नाव की तरह

ही है। जिस तरह किसी बोट (पानी वाली जहाज) में बैठकर सफर कर रहे होते हैं। यदि उसी समय किसी यात्री के मन में जान-बूझकर दूसरे यात्रियों को हानि पहुँचाने की इच्छा उठती है तो इस तरह हानि पहुँचाने की नीयत से उठी गड़बड़ी देखने लायक होती है। किसी यात्री ने अपने दुष्ट स्वभाव के कारण यदि दूसरे के कमरे (पानी की जहाजों में अलग-अलग कमरे होते हैं) में छेद कर दिया तो बोट में दूसरों के साथ देर से ही सही स्वयं उसे भी डूब कर जल समाधि लेनी पड़ेगी यानी मरना पड़ेगा। उसी तरह एक जाति का नुकसान करने से, प्रत्यक्ष न सही पर अप्रत्यक्ष रूप से दूसरी जाति को हानि पहुँचाने वाली जाति की भी हानि निश्चित है। यहां संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं है। इसलिए स्वयं का हित साधने वाले समाचार-पत्रों द्वारा दूसरों का नुकसान करके, अपना हित साधने की मूर्खता से हम लोगों को सीखने की आवश्यकता नहीं है।"

उपर्युक्त पंक्तियों में डॉ. आंबेडकर यह इस बात की घोषणा कर दी थी कि उनका अखबार किसी जाति विशेष के हितों को नुकसान पहुँचाने के लिए नहीं, बल्कि एक समाज के नव-निर्माण के लिए है, जिसमें कोई किसी का अहित न करे और सबके हितों की रक्षा हो।

भारतीय समाचार-पत्रों के जातिवादी चरित्र के साथ ही पत्रकारिता के व्यावसायिक स्वरूप और अनैतिक आचरण से आंबेडकर व्यथित और आक्रोशित थे। अपनी व्यथा को उन्होंने इन शब्दों में प्रकट किया–"भारत में पत्रकारिता पहले एक पेशा थी। अब वह एक व्यापार बन गई है। अखबार चलाने वालों को नैतिकता से उतना ही मतलब रहता है जितना कि किसी साबुन बनाने वाले को। पत्रकारिता स्वयं को जनता के जिम्मेदार सलाहकार के रूप में नहीं देखती। भारत में पत्रकार यह नहीं मानते कि बिना किसी प्रयोजन के समाचार देना, निर्भयतापूर्वक उन लोगों की निंदा करना जो गलत रास्ते पर जा रहे हों–फिर चाहे वे कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों, पूरे समुदाय के हितों की रक्षा करने वाली नीति को प्रतिपादित करना उनका पहला और प्राथमिक कर्तव्य है। व्यक्ति पूजा उनका मुख्य कर्तव्य बन गया है। भारतीय प्रेस में समाचार को सनसनीखेज बनाना, तार्किक विचारों के स्थान पर अतार्किक जुनूनी बातें लिखना और जिम्मेदार लोगों की बुद्धि को जाग्रत करने के बजाय गैर-जिम्मेदार लोगों की भावनाएं भड़काना आम बात हैं। 3 व्यक्ति पूजा की खातिर देश के हितों की इतनी विवेकहीन बलि इसके पहले कभी नहीं दी गई। व्यक्ति पूजा कभी इतनी अंधी नहीं थी जितनी कि वह आज के भारत में है। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता

होती है कि इसके कुछ सम्मानित अपवाद हैं, परंतु उनकी संख्या बहुत कम है और उनकी आवाज कभी सुनी नहीं जाती।''

भारतीय अखबारों के संदर्भ में डॉ. आंबेडकर के उपर्युक्त कथनों का विश्लेषण करें तो पाते हैं कि इसमें उन्होंने भारतीय अखबारों (मीडिया) के लिए कुछ मानक प्रस्तुत किए हैं, जो निम्न हैं–

- पत्रकारिता को पक्षपात और पूर्वाग्रह से मुक्त होना चाहिए। भारत में इसका विशेष संदर्भ जातीय पक्षपात और पूर्वाग्रह है।
- पत्रकारिता तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए, मनोगत धारणाओं पर नहीं।
- पत्रकारिता मिशन होना चाहिए, व्यवसाय नहीं।
- पत्रकारिता और पत्रकारों की अपनी नैतिकता होनी चाहिए।
- निर्भीकता पत्रकारिता और पत्रकार का अनिवार्य लक्षण है।
- सामाजिक हितों का पक्षपोषण करना पत्रकारिता और पत्रकार का कर्तव्य है।
- पत्रकारिता में व्यक्ति पूजा के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए।
- सनसनीखेज खबरों की जगह पत्रकारिता का कार्य वस्तुगत रिपोर्टिंग है।
- जनता की भावनाओं को भड़काने की जगह, उसके तर्क एवं विवेक को जाग्रत करना पत्रकारिता और पत्रकार का दायित्व है।

बहिष्कृत समाज के लिए अखबार की कितनी अहमियत, आंबेडकर महसूस करते थे, इसका अंदाजा उनके इस कथन से लगाया जा सकता है–"अछूतों के पास कोई अखबार नहीं है। कांग्रेसी अखबारों ने अपने दरवाजे हमारे लिए बंद कर रखे हैं और उन्होंने यह निश्चय कर रखा है कि वे हमें हमारी बात प्रचारित-प्रसारित करने के लिए थोड़ी भी जगह अपने अखबारों में नहीं देंगे"

एक तरफ वे बहिष्कृत समाज के लिए अखबार की सख्त जरूरत महूसस कर रहे थे, दूसरी तरफ अखबार निकालने के लिए आवश्यक संसाधनों की कमी से चिंतित एवं निराश थे। अपनी चिंता और निराशा को उन्होंने इन शब्दों में प्रकट किया–"यह निराशाजनक है कि इस कार्य (समाचार-पत्र) के लिए हमारे पास पर्याप्त संसाधन नहीं हैं। हमारे पास पैसा नहीं है, हमारे पास समाचार-पत्र नहीं है। पूरे भारत में प्रतिदिन हमारे लोग अधिनायकवादी लोगों के बेहरहमी और भेदभाव का शिकार होते हैं, लेकिन इन सारी बातों को कोई

अखबार जगह नहीं देते हैं। एक सुनियोजित षड्यंत्र के तहत तमाम तरीकों से सामाजिक-राजनीतिक मसलों पर हमारे विचारों को रोकने में शामिल हैं।"

इतना ही नहीं, उन्हें इस तथ्य का भी अहसास था कि समाचार-पत्रों के मालिक तो उच्च जातियों के हैं ही, उन समाचार एजेंसियों पर भी उच्च जातियों का नियंत्रण है, जो समाचारों को वितरित करती हैं। इसका उदाहरण देते हुए डॉ. आंबेडकर लिखते हैं कि–"एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया के सभी कर्मचारी मद्रासी ब्राह्मण हैं। एसोसिएटेड प्रेस ही समाचारों की मुख्य प्रसारक एजेंसी है। सच्चाई यह है कि एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया पूरी तरह से इन्हीं के हाथ में है। ये सभी कांग्रेस समर्थक हैं, वे कोई भी ऐसा समाचार नहीं प्रकाशित होने देते जो कांग्रेस के खिलाफ हो। ये ऐसी वजहें हैं जिनके संबंध में अछूत कुछ भी करने की स्थिति में नहीं हैं।"

भारतीय अखबारों का स्वरूप और चरित्र का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण करते हुए और बहिष्कृतों के हितों के लिए अखबार की सख्त आवश्यकता को महसूस करते हुए डॉ. आंबेडकर ने पत्रकारिता जगत में प्रवेश किया। उन्हें इसका गहरा अहसास था कि एक संसाधनहीन समाज के लिए अखबार निकालना कितना चुनौती-भरा और दुसाध्य कार्य है। इस चुनौती को स्वीकार करते हुए करीब 29 वर्ष की उम्र में उन्होंने पहला अखबार 'मूकनायक' निकाला और आजीवन खुद को पत्रकारिता से अलग नहीं कर पाए। पत्रकारिता उनके संघर्षों का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण हमेशा बनी रही।

डॉ. आंबेडकर ने 65 वर्ष 7 महीने 22 दिन के अपनी जिंदगी में करीब 36 वर्ष तक पत्रकारिता की। हां, बीच-बीच में कुछ अंतराल आते रहे। उनकी पत्रकारिता का काल 1920 से 1956 तक विस्तारित है। 'मूकनायक' का पहला अंक 31 जनवरी 1920 को निकला, जबकि अंतिम अखबार 'प्रबुद्ध भारत' का पहला अंक 4 फरवरी, 1956 को प्रकाशित हुआ। इसके बीच में 'बहिष्कृत भारत' का पहला अंक 3 अप्रैल 1927 को, 'समता' का पहला अंक 29 जून 1928 और 'जनता' का पहला 24 नवंबर 1930 को प्रकाशित हुआ।

'मूकनायक' से 'प्रबुद्ध भारत' तक की उनकी यात्रा उनके जीवन-यात्रा, चिंतनदृयात्रा और संघर्ष-यात्रा का भी प्रतीक है। 'मूकनायक' 'प्रबुद्ध भारत' में ही अपनी और पूरे भारतीय समाज की मुक्ति देखता है। डॉ. आंबेडकर की पत्रकारिता का संघर्ष 'मूकनायक' के माध्यम से मूक लोगों की आवाज बनने से शुरू होकर 'प्रबुद्ध भारत' के निर्माण के स्वप्न के साथ विराम लेती है।

'प्रबुद्ध भारत' अर्थात एक नए भारत का निर्माण। डॉ. आंबेडकर की गहन अध्येता गेल ओमवेट इसे नए राष्ट्र के निर्माण हेतु डॉ. आंबेडकर का स्वप्न कहती हैं। "डॉ. आंबेडकर का बुनियादी संघर्ष एक अलग स्वाधीनता का संघर्ष था। यह संघर्ष भारतीय समाज के सर्वाधिक संतप्त वर्ग की मुक्ति का संघर्ष था। उनका स्वाधीनता संग्राम उपनिवेशवाद के विरुध चलाए जा रहे स्वाधीनता संग्राम से वृहत और गहरा था। उनकी नजर नवराष्ट्र के निर्माण पर थी।"

डॉ. आंबेडकर की पत्रकारिता और उनके सारे समाचार-पत्रों का यदि विश्लेषण किया जाए तो हम पायेंगे कि वे एक पत्रकार के रूप में भी बहिष्कृत समाज की मुक्ति के साथ नए राष्ट्र के निर्माण के लिए कार्य करते रहें क्योंकि उनको इस तथ्य का गहरा अहसास था कि बहिष्कृत भारत (दलित समाज) की पूर्ण मुक्ति और प्रबुद्ध भारत का निर्माण एक दूसरे के पर्याय हैं।

जीवन परिचय

डॉ. भीमराव अंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को महूँ (मध्य प्रदेश) में हुआ था। वे महार जाति के सदस्य थे। उनके परिवार का सैन्य-सेवा से संबंध था। उनके पिता का नाम रामजी सकपाल तथा माता का भीमाबाई था। वे अपने माता-पिता की चौदहवीं सन्तान थे। भीम चौदहवां बालक था जिन्हें भीवा भी पुकारा जाता था। रामजी सकपाल फौज में सुबेदार थे। उन्होंने सन् 1894 में सेना से अवकाश ले लिया था। भीम की प्रारम्भिक शिक्षा सतारा से प्रारम्भ हुई, जब भीम छः वर्ष के थे तब उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। माता की मृत्यु के बाद उनका पालन-पोषण उनकी बुआ ने किया। विद्यालय में अस्पृश्य बच्चे किसी भी चीज से हाथ नहीं लगा सकते थे। परन्तु भीम के पढ़ने की लगन को देखकर कुछ अध्यापक उनसे स्नेह भी करते थे।

डॉ. अम्बेडकर के सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश 1924 में हुआ। अम्बेडकर की औपचारिक शिक्षा समाप्त हो चुकी थी। इस दौरान अम्बेडकर को यह अहसास हो चला था कि जातिगत भेदभाव व्यापक थे, जिसमें निजी मान-मर्दन शामिल था। यह स्थिति छोटे से गांव से लेकर शहरी झोंपड़ पट्टी और भारत के ऊंचे से ऊंचे स्तर तक व्याप्त थी। अस्पृश्यता और इसे संपोषित करने वाला सांस्कृतिक-धार्मिक जीवन पक्ष अम्बेडकर के दिलो-दिमाग को आंदोलित कर रहा था अतः इसे दूर करना उनके जीवन का मूल उद्देश्य बन गया।

20 जुलाई, 1924 के दिन 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना घोषित कर उन्होंने सामाजिक तथा सार्वजनिक जीवन में पदार्पण करने का निश्चय किया। अस्पृश्य जनता के लिए एक सर्वव्यापी आंदोलन का समस्त भार संभाल सकने वाली संस्था की स्थापना कर, उसके द्वारा विभिन्न आंदोलनों के कार्यक्रमों की योजना कार्यान्वित करने का उन्होंने दृढ़ निश्चय किया। इस प्रकार अम्बेडकर अछूतों के धार्मिक और सामाजिक अधिकारों के लिए संघर्ष के साथ सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किए।

डॉ. भीमराव अंबेडकर के प्रेरणा स्रोत

डॉ. अम्बेडकर में सामाजिक सुधार और सामाजिक परिवर्तन की भावनाओं ने अचानक जन्म नहीं लिया था। उनके चरित्र गठन में कई व्यक्तियों के विचारों तथा उनके अध्ययन काल में हुए भेदभाव का बड़ा योगदान है। ''अम्बेडकर ने तीन महापुरूषों को अपना प्रेरणास्रोत बताया है। उनमें पहले कबीर, दूसरे महात्मा ज्योतिबा फुले और तीसरे थे भगवान बुद्ध। कबीर ने उन्हें भक्ति भावना प्रदान की, ज्योतिबा फुले ने उन्हें ब्राह्मण विरोध के लिए प्रेरित किया, सामूहिक पश्चाताप का विचार दिया और शिक्षा तथा आर्थिक उत्थान का सन्देश दिया। बुद्ध से उन्हें मानसिक और दार्शनिक पिपासा बुझाने वाला अमृत मिला और अछूतों के उद्धार का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ, जिसका माध्यम था सामूहिक धर्म-परिवर्तन।

डॉ. भीमराव अंबेडकर की शिक्षा

सतारा से प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात उन्होंने हाईस्कूल की शिक्षा के लिए बम्बई के ऐलिफिन्सटन सरकारी हाईस्कूल में प्रवेश लिया। परन्तु वहाँ भी भीम को अनेक बार अस्पृश्यता के अभिशाप से अपमानित होना पड़ा। विद्यार्थियों के साथ-साथ कुछ अध्यापकों के संकुचित दृष्टिकोण को भी उन्होंने कितनी बार अनुभव किया। इस प्रकार कटु अनुभव लेते हुए उन्होंने सन् 1907 में हाईस्कूल की परीक्षा उतीर्ण की।

हाईस्कूल की शिक्षा के बाद उनका विवाह रमाबाई से हो गया। उनके परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण बड़ौदा के महाराज के द्वारा प्रदान की गयी छात्रवृति से उन्होंने आगे की शिक्षा पूर्ण की तथा सन् 1912 में बी.ए. की परीक्षा तृतीय श्रेणी से उतीर्ण की। शिक्षा समाप्ति के पश्चात उन्होंने

बड़ौदा रियासत में लैफ्टिनेंट पद पर नौकरी कर ली परन्तु पिता की मृत्यु हो जाने के कारण उन्हें नौकरी छोड़कर वापिस बम्बई आना पड़ा था।

बड़ौदा के महाराज की कृपा से ही वे जून, 1913 में उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका गये। वहाँ से (भारत का प्राचीन व्यापार) शोध प्रबन्ध पर डॉ. तथा (भारत का राष्ट्रीय लाभांश) शोध प्रबन्ध पर पी.एच.डी. की डिग्री प्राप्त करके सन् 1917 में वे भारत वापिस आ गये और बड़ौदा रियासत में सेना सचिव पद पर नियुक्त हो गये। परन्तु अस्पृष्य होने के कारण इतनी उच्च उपाधियों के बाद भी स्वर्ण अधिकारियों का व्यवहार उनके विरूद्ध ही रहा। उनके लिए दफ्तर में बैठने तथा पीने के पानी तक की सही व्यवस्था न थी।

इस प्रकार अनेक दुख सहकर वे वापिस बम्बई आ गये आरै बम्बई के लार्ड सिडेनहम कॉलिज में प्राध्यापक पद पर पढ़ाने लगे।

अस्पृष्य समाज का होने के कारण उन्होंने अनेक बार अपमानजनक स्थिति का सामना किया। परन्तु फिर भी उनके कद नहीं डगमगाऐ और उन्होंने निश्चय किया कि वे अस्पृष्य वर्ग की इस अपमानजनक स्थिति को समाप्त करके रहेगें। अछतू समाज की सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं से लोगों को अवगत कराने के लिए उन्होंने कोल्हापुर के महाराज की सहायता से 31 जनवरी, 1920 को मूकनायक पाक्षिक पत्र निकाला।

5 जुलाई, 1920 को डॉ. भीमराव अंबेडकर ने प्राध्यापक पद से इस्तीफा दे दिया और अपने अधूरे अध्ययन को पूरा करने के लिए लन्दन चले गये। तथा वहाँ से एम0एस-सी., डी.एस-सी. तथा बार-एट-लॉ की डिग्रियां प्राप्त करके सन् 1923 में वापिस बम्बई आ गये और बैरिस्टर के रूप में कार्य करने लगे तथा सामाजिक कार्यों में अपनी भागीदारी बढ़ायी।

सामाजिक सुधार

बी. आर. आम्बेडकर के नेतृत्व में उन्होंने अपना संघर्ष तेज कर दिया। सामाजिक समानता के लिए वे प्रयत्नशील हो उठे। आम्बेडकर ने 'ऑल इण्डिया क्लासेस एसोसिएशन' का संगठन किया। दक्षिण भारत में बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में गैर-ब्राह्मणों ने 'दि सेल्फ रेस्पेक्ट मूवमेंट' प्रारम्भ किया जिसका उद्देश्य उन भेदभावों को दूर करना था जिन्हें ब्राह्मणों ने उन पर थोप दिया था। सम्पूर्ण भारत में दलित जाति के लोगों ने उनके मन्दिरों में प्रवेश-निषेध एवं इस तरह के अन्य प्रतिबन्धों के विरुद्ध अनेक आन्दोलनों का सूत्रपात किया। परन्तु

विदेशी शासन काल में अस्पृश्यता विरोधी संघर्ष पूरी तरह से सफल नहीं हो पाया। विदेशी शासकों को इस बात का भय था कि ऐसा होने से समाज का परम्परावादी एवं रूढ़िवादी वर्ग उनका विरोधी हो जाएगा। अतः क्रान्तिकारी समाज-सुधार का कार्य केवल स्वतन्त्र भारत की सरकार ही कर सकती थी। पुनः सामाजिक पुनरुद्धार की समस्या राजनीतिक एवं आर्थिक पुनरुद्धार की समस्याओं के साथ गहरे तौर पर जुड़ी हुई थी। जैसे, दलितों के सामाजिक पुनरुत्थान के लिए उनका आर्थिक पुनरुत्थान आवश्यक था। इसी प्रकार इसके लिए उनके बीच शिक्षा का प्रसार और राजनीतिक अधिकार भी अनिवार्य थे।

छुआछूत के विरुद्ध संघर्ष

1920 के दशक में बंबई में एक बार बोलते हुए उन्होंने साफ-साफ कहा था—जहाँ मेरे व्यक्तिगत हित और देशहित में टकराव होगा वहाँ मैं देश के हित को प्राथमिकता दूँगा, लेकिन जहाँ दलित जातियों के हित और देश के हित में टकराव होगा, वहाँ मैं दलित जातियों को प्राथमिकता दूँगा। वे अंतिम समय तक दलित-वर्ग के मसीहा थे और उन्होंने जीवनपर्यंत अछूतोद्धार के लिए कार्य किया। जब महात्मा गाँधी ने दलितों को अल्पसंख्यकों की तरह पृथक् निर्वाचन मंडल देने के ब्रिटिश नीति के खिलाफ आमरण अनशन किया। सन् 1927 में उन्होंने हिन्दुओं द्वारा निजी सम्पत्ति घोषित सार्वजनिक तालाब से पानी लेने के लिए अछूतों को अधिकार दिलाने के लिए एक सत्याग्रह का नेतृत्व किया। उन्होंने सन् 1937 में बंबई उच्च न्यायालय में यह मुकदमा जीता।

आम्बेडकर ने ऋग्वेद से उद्धरण देकर दिखाया है कि आर्य गौर वर्ण के और श्याम वर्ण के भी थे। अश्विनी देवों ने श्याव और रुक्षती का विवाह कराया। श्याव श्याम वर्ण का है और रुक्षती गौर वर्ण की है। अश्विनी वंदना की रक्षा करते हैं और वह गौर वर्ण की है। एक प्रार्थना में ऋषि कहते हैं कि उन्हें पिशंग वर्ण अर्थात् भूरे रंग का पुत्र प्राप्त हो। आम्बेडकर का निष्कर्ष है— इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि वैदिक आर्यों में रंगभेद की भावना नहीं थी। होती भी कैसे? वे एक रंग के थे ही नहीं। कुछ गोरे थे, कुछ काले थे, कुछ भूरे थे। दशरथ के पुत्र राम श्याम वर्ण के थे। इसी तरह यदुवंशी कृष्ण भी श्याम वर्ण के थे। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों के रचनाकार दीर्घतमस हैं। उनके नाम से ही प्रतीत होता है, वे श्याम वर्ण के थे। आर्यों में एक प्रसिद्ध ऋषि कण्व थे। ऋग्वेद में उनका जो विवरण मिलता है, उससे ज्ञात होता है, वे श्याम वर्ण के

थे। इसी तरह आम्बेडकर ने इस धारणा का खंडन किया कि आर्य गोरी नस्ल के ही थे।

आम्बेडकर ने मंदिरों में अछूतों के प्रवेश करने के अधिकार को लेकर भी संघर्ष किया। वह लंदन में हुए गोलमेज सम्मेलन के शिष्टमंडल के भी सदस्य थे, जहाँ उन्होंने अछूतों के लिए अलग निर्वाचन मंडल की मांग की। महात्मा गांधी ने इसे हिन्दू समाज में विभाजक मानते हुए विरोध किया।

1931 में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री को सम्बोधित करते हुए आम्बेडकर ने गोलमेज सम्मेलन में कहा–ब्रिटिश पार्लियामेंट और प्रवक्ताओं ने हमेशा यह कहा है कि वे दलित वर्गों के ट्रस्टी हैं। मुझे विश्वास है, कि यह बात सभ्य लोगों की वैसी झूठी बात नहीं है, जो आपसी सम्बन्धों को मधुर बनाने के लिए कही जाती है। मेरी राय में किसी भी सरकार का यह निश्चित कर्तव्य होगा कि जो धरोहर उसके पास है, उसे वह गँवा न दे। यदि ब्रिटिश सरकार हमें उन लोगों की दया के भरोसे छोड़ देती है जिन्होंने हमारी खुशहाली की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया, तो यह बहुत बड़ी गद्दारी होगी। हमारी तबाही और बर्बादी की बुनियाद पर ही ये लोग धनीमानी और बड़े बने हैं।

सन् 1932 में पूना समझौते में गांधी और आम्बेडकर, आपसी विचार-विमर्श के बाद एक मध्यमार्ग पर सहमत हुए। आम्बेडकर ने शीघ्र ही हरिजनों में अपना नेतृत्व स्थापित कर लिया और उनकी ओर से कई पत्रिकाएं निकालीं, वह हरिजनों के लिए सरकारी विधान परिषदों में विशेष प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में भी सफल हुए। आम्बेडकर ने हरिजनों का पक्ष लेने के महात्मा गांधी के दावे को चुनौती दी और व्हॉट कांग्रेस ऐंड गांधी हैव डन टु द अनटचेबल्स (सन् 1945) नामक लेख लिखा। सन् 1947 में आम्बेडकर भारत सरकार के कानून मंत्री बने। उन्होंने भारत के संविधान की रूपरेखा बनाने में प्रमुख भूमिका निभाई, जिसमें उन्होंने अछूतों के साथ भेदभाव को प्रतिबंधित किया और चतुराई से इसे संविधान सभा द्वारा पारित कराया। सरकार में अपना प्रभाव घटने से निराश होकर उन्होंने सन् 1951 में त्याग पत्र दे दिया। सन् 1956 में वह नागपुर में एक समारोह में अपने दो लाख अछूत साथियों के साथ हिन्दू धर्म त्यागकर बौद्ध बन गए, क्योंकि छुआछूत अब भी हिन्दू धर्म का अंग बनी हुई थी। डॉक्टर आम्बेडकर को सन् 1990 में मरणोपरांत भारत रत्न से सम्मानित किया गया।

पत्रकारिता

डॉ. आंबेडकर ने अपने सामाजिक/राजनीतिक आंदोलन को मीडिया के माध्यम से भी चलाया और अछूतों के अधिकारों की आवाज उठाई। मूकनायक आंबेडकर द्वारा स्थापित पहली पत्रिका थी। बाल गंगाधर तिलक उन दिनों केसरी नामक समाचार-पत्र निकालते थे। केसरी में पूरी विज्ञापन शुल्क के साथ मूकनायक का विज्ञापन छापने के लिए अनुरोध किया गया, लेकिन तिलक ने इसे छापने से इंकार कर दिया।

मूकनायक के संपादक पीएन भाटकर थे, जो महार जाति के थे। उन्होंने कॉलेज तक की शिक्षा प्राप्त की थी। मूकनायक के पहले तेरह संपादकीय लेख डॉ. आंबेडकर ने लिखे। पहले लेख में आंबेडकर ने हिंदू समाज का वर्णन ऐसी बहुमंजिली इमारत के रूप में किया, जिसमें एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर जाने के लिए न तो कोई सीढ़ी है और न कोई प्रवेश द्वार। सभी को उसी मंजिल में जीना और मरना है, जिसमें वे जन्मे हैं।

मीडिया के प्रति डॉ. अंबेडकर का नजरिया

18 जनवरी 1943 को पूना के गोखले मेमोरियल हाल में महादेव गोविन्द रानाडे के 101वीं जयंती समारोह में 'रानाडे, गाँधी और जिन्ना' शीर्षक से दिया गया डॉ. आंबेडकर का व्याख्यान मीडिया के चरित्र के बारे में उनकी दृष्टि को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा, 'मेरी निंदा कांग्रेसी समाचार पत्रों द्वारा की जाती है। मैं कांग्रेसी समाचार-पत्रों को भली-भांति जनता हूं। मैं उनकी आलोचना को कोई महत्त्व नहीं देता। उन्होंने कभी मेरे तर्कों का खंडन नहीं किया। वे तो मेरे हर कार्य की आलोचना, भर्त्सना व निंदा करना जानते हैं। वे मेरी हर बात की गलत सूचना देते हैं, उसे गलत तरीके से प्रस्तुत करते हैं और उसका गलत अर्थ लगाते हैं। मेरे किसी भी कार्य से कांग्रेसी-पत्र प्रसन्न नहीं होते। यदि मैं कहूं कि मेरे प्रति कांग्रेसी पत्रों का यह द्वेष व बैर-भाव अछूतों के प्रति हिंदुओं के घृणा भाव की अभिव्यक्ति ही है, तो अनुचित नहीं होगा।'

आज जिस तरीके से मीडिया के विभिन्न साधन व्यक्ति पूजा और सरकार की आलोचना को राष्ट्र की आलोचना साबित करने में लगे हैं या राजनीतिक दलों के प्रवक्ता की तरह काम कर रहे हैं, उसे देखते हुए डॉ. आंबेडकर के विचार आज भी प्रासंगिक हैं। यदि आज डॉ. आंबेडकर होते तो अंदाजा लगाया

जा सकता है कि उनके निशाने पर कौन सी विचारधारा और पार्टी तथा नेता होते।

अछूतों के प्रति मीडिया का दृष्टिकोण

अस्पृश्यों के जीवन और आन्दोलन में प्रेस की भूमिका और सीमाओं को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा–'भारत के बाहर के लोग विश्वास करते हैं कि कांग्रेस ही एकमात्र संस्था है, जो भारत का प्रतिनिधित्व करती है, यहां तक कि अस्पृश्यों का भी। इसका कारण यह है कि अस्पृश्यों के पास अपना कोई साधन नहीं है, जिससे वे कांग्रेस के मुकाबले अपना दावा जता सकें। अस्पृश्यों की इस कमजोरी के और भी कई कारण हैं। अस्पृश्यों के पास अपना कोई प्रेस नहीं है। कांग्रेस का प्रेस उनके लिए बंद हैं। उसने अस्पृश्यों का रत्ती भर भी प्रचार न करने की कसम खा रखी है। अस्पृश्य अपना प्रेस स्थापित नहीं कर सकते। यह स्पष्ट है कि कोई भी समाचार-पत्र बिना विज्ञापन राशि के नहीं चल सकता। विज्ञापन राशि केवल व्यावसायिक विज्ञापनों से आती है। चाहे छोटे व्यवसायी हो या बड़े, वे सभी कांग्रेस से जुड़े हैं और गैर-कांग्रेसी संस्था का पक्ष नहीं ले सकते। भारत के एसोसिएटेड प्रेस का स्टाफ, जो भारत की समाचार एजेंसी है, सम्पूर्ण रूप से मद्रासी ब्राह्मणों से भरी पड़ी है। वास्तव में भारत का सम्पूर्ण प्रेस उन्हीं की मुट्ठी में है और वे पूर्णतया कांग्रेस के पिट्ठू हैं, जो कांग्रेस के विरुद्ध किसी समाचार को नहीं छाप सकते।'

इस सन्दर्भ में मीडिया स्टडीज ग्रुप द्वारा मीडिया में दलित/आदिवासी/पिछड़ों की भागीदारी के सन्दर्भ में मीडियाकर्मियों की सामजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन प्रासंगिक है। 2006 में किया गया ये शोध बताता है कि 21वीं सदी में भी भारत की मीडिया का सामाजिक चरित्र बदला नहीं है और जाति वर्चस्व यहां अब भी काम कर रहा है।

लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका और अंबेडकर

आल इंडिया शिड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन ने जनवरी 1945 में अपने साप्ताहिक मुख्य-पत्र 'पीपल्स हेराल्ड' की शुरुआत की। इस पत्र का मुख्य उद्देश्य अस्पृश्यों की आकांक्षाओं, मांगों, शिकायतों को स्वर देना था। इस पत्र के उद्घाटनकर्ता की हैसियत से डॉ. आंबेडकर ने कहा, 'आधुनिक प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में अच्छी सरकार के लिए समाचार-पत्र मूल आधार है। इसलिए भारत

के अनुसूचित जाति के अतुलनीय दुर्भाग्य और दुर्दशा को खत्म करने में तब तक सफलता नहीं मिल सकती, जब तक 8 करोड़ अस्पृश्यों को राजनीतिक रूप से शिक्षित न कर लें। यदि विभिन्न विधानसभाओं के विधायकों के व्यवहार की रिपोर्टिंग करते हुए समाचार-पत्र लोगों से कहें कि विधायकों से पूछो ऐसा क्यों है, कैसे हुआ, तब मेरे दिमाग में कोई दुविधा नहीं है कि विधायकों के व्यवहार में बड़ी तबदीली आ सकती है। इस तरह वर्तमान दुर्व्यवस्था, जिसके भोगी हमारे समुदाय के लोग हैं, पर रोक लग सकती है। इसलिए मैं इस समाचार पत्र को एक वैसे साधन के रूप में देख रहा हूं, जो वैसे लोगों का शुद्धिकरण कर सकता है, जो अपने राजनीतिक जीवन में गलत दिशा में गए हैं।'

1937 के विधानसभा चुनाव में मराठी समाचार-पत्र की भूमिका का हवाला देते हुए आंबेडकर ने सुझाव दिया–'समाचार-पत्र न केवल मतदाताओं को प्रशिक्षित करते हैं बल्कि यह भी सुनिश्चित करते हैं कि जिसे उन्होंने अपने मत से चुना है, वे उनके साथ खड़े हैं, अपना कर्तव्य ठीक ढंग से निभा रहे हैं और किसी के साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं कर रहे।' उन्होंने आगे कहा, 'मैं सोलह वर्षों तक बॉम्बे में एक साप्ताहिक का संपादन किया है। इस पत्र ने जो व्यापक प्रभाव उत्पन्न किया, उसका प्रमाण बॉम्बे के विधानसभा चुनाव में दिखा, जिसमें मैंने सभी समुदायों का वोट प्राप्त कर कांग्रेस के अपने प्रतिस्पर्धी को हराया।'

जाहिर है आंबेडकर ने लोकतंत्र के प्रहरी के तौर पर और जनता के राजनीतिक प्रशिक्षण में समाचार पत्रों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया।

राजनीतिक परिचय

येओला नासिक में 13 अक्टूबर, 1935 को आम्बेडकर ने एक रैली को संबोधित किया। 13 अक्टूबर 1935 को, आम्बेडकर को सरकारी लॉ कॉलेज का प्रधानाचार्य नियुक्त किया गया और इस पद पर उन्होंने दो वर्ष तक कार्य किया। इसके चलते आम्बेडकर बंबई में बस गये, उन्होंने यहाँ एक बड़े घर का निर्माण कराया, जिसमे उनके निजी पुस्तकालय में 50000 से अधिक पुस्तकें थीं। इसी वर्ष उनकी पत्नी रमाबाई की एक लंबी बीमारी के बाद मृत्यु हो गई। रमाबाई अपनी मृत्यु से पहले तीर्थयात्रा के लिये पंढरपुर जाना चाहती थीं पर आम्बेडकर ने उन्हें इसकी इजाजत नहीं दी। आम्बेडकर ने कहा की उस हिन्दू तीर्थ में जहाँ उनको

अछूत माना जाता है, जाने का कोई औचित्य नहीं है इसके बजाय उन्होंने उनके लिये एक नया पंढरपुर बनाने की बात कही। भले ही अस्पृश्यता के खिलाफ उनकी लड़ाई को भारत भर से समर्थन हासिल हो रहा था पर उन्होंने अपना रवैया और अपने विचारों को रूढ़िवादी हिंदुओं के प्रति और कठोर कर लिया। उनकी रूढ़िवादी हिंदुओं की आलोचना का उत्तर बड़ी संख्या में हिन्दू कार्यकर्ताओं द्वारा की गयी उनकी आलोचना से मिला। 13 अक्टूबर को नासिक के निकट येओला में एक सम्मेलन में बोलते हुए आम्बेडकर ने धर्म परिवर्तन करने की अपनी इच्छा प्रकट की। उन्होंने अपने अनुयायियों से भी हिन्दू धर्म छोड़ कोई और धर्म अपनाने का आह्वान किया। उन्होंने अपनी इस बात को भारत भर में कई सार्वजनिक सभाओं में दोहराया भी।

स्वतंत्र लेबर पार्टी

आम्बेडकर ने 1936 में स्वतंत्र लेबर पार्टी की स्थापना की, जो 1937 में केन्द्रीय विधान सभा चुनावों में 15 सीटें जीती। उन्होंने अपनी पुस्तक जाति के विनाश भी इसी वर्ष प्रकाशित की जो उनके न्यूयॉर्क में लिखे एक शोधपत्र पर आधारित थी। इस सफल और लोकप्रिय पुस्तक में आम्बेडकर ने हिन्दू धार्मिक नेताओं और जाति व्यवस्था की जोरदार आलोचना की। उन्होंने अस्पृश्य समुदाय के लोगों को गाँधी द्वारा रचित शब्द हरिजन पुकारने के कांग्रेस के फैसले की कड़ी निंदा की। आम्बेडकर ने रक्षा सलाहकार समिति और वाइसराय की कार्यकारी परिषद के लिए श्रम मंत्री के रूप में सेवारत रहे।

मार्च 1940 में मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर अधिवेशन में प्रसिद्ध पाकिस्तान प्रस्ताव पास किया। आम्बेडकर ने तीन साल पहले इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी नाम से एक दल संगठित किया था। उसने पाकिस्तान प्रस्ताव का अध्ययन करने के लिए एक समिति बनाई। इस समिति के लिए दिसम्बर 1940 तक आम्बेडकर ने अपनी रिपोर्ट तैयार कर ली। वह 'पाकिस्तान या भारत का विभाजन'-'पाकिस्तान ऑर द पार्टीशन ऑफ इंडिया'-नाम से प्रकाशित हुई।

1941 और 1945 के बीच में उन्होंने बड़ी संख्या में अत्यधिक विवादास्पद पुस्तकें और पर्चे प्रकाशित किये जिनमे थॉट्स ऑन पाकिस्तान भी शामिल है, जिसमें उन्होंने मुस्लिम लीग की मुसलमानों के लिए एक अलग देश पाकिस्तान की माँग की आलोचना की। 'वॉट कॉंग्रेस एंड गांधी हैव डन टू द अनटचेबल्स' (काँग्रेस और गान्धी ने अछूतों के लिये क्या किया) के साथ, आम्बेडकर ने

गांधी और कांग्रेस दोनों पर अपने हमलों को तीखा कर दिया उन्होंने उन पर ढोंग करने का आरोप लगाया। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हू वर द शुद्राज?(शूद्र कौन थे?)' के द्वारा हिन्दू जाति व्यवस्था के पदानुक्रम में सबसे नीची जाति यानी शूद्रों के अस्तित्त्व में आने की व्याख्या की। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि किस तरह से अछूत, शूद्रों से अलग हैं। आम्बेडकर ने अपनी राजनीतिक पार्टी को अखिल भारतीय अनुसूचित जाति फेडरेशन में बदलते देखा, हालांकि 1946 में आयोजित भारत के संविधान सभा के लिए हुये चुनाव में इसने खराब प्रदर्शन किया। 1948 में हू वर द शुद्राज? की उत्तरकथा 'द अनटचेबलस: ए थीसिस ऑन द ओरिजन ऑफ अनटचेबिलिटी (अस्पृश्य: अस्पृश्यता के मूल पर एक शोध)' में आम्बेडकर ने हिन्दू धर्म को लताड़ा। आम्बेडकर इस्लाम और दक्षिण एशिया में उसकी रीतियों के भी आलोचक थे। उन्होंने भारत विभाजन का तो पक्ष लिया पर मुस्लिम समाज में व्याप्त बाल विवाह की प्रथा और महिलाओं के साथ होने वाले दुर्व्यवहार की घोर निंदा की।

मेहनत मजदूरी करने वालों को पारिश्रमिक दिया जाता था, यह बड़ा महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। शूद्रों की स्थिति का विवेचन करते हुए अक्सर इतिहासकार यही बात भूल जाते हैं। आम्बेडकर का मूल वाक्य अंग्रेजी में इस प्रकार है– Besides few slaves there was a considerable amount of free labours paid in money or food.

उन्होंने लिखा कि मुस्लिम समाज में तो हिन्दू समाज से भी अधिक सामाजिक बुराइयाँ हैं और मुसलमान उन्हें 'भाईचारे' जैसे नर्म शब्दों के प्रयोग से छुपाते हैं। उन्होंने मुसलमानों द्वारा अर्जल वर्गों के खिलाफ भेदभाव जिन्हें 'निचले दर्जे का' माना जाता था के साथ ही मुस्लिम समाज में महिलाओं के उत्पीड़न की दमनकारी पर्दा प्रथा की भी आलोचना की। उन्होंने कहा हालाँकि पर्दा हिंदुओं में भी होता है पर उसे धर्मिक मान्यता केवल मुसलमानों ने दी है। उन्होंने इस्लाम में कट्टरता की आलोचना की जिसके कारण इस्लाम की नातियों का अक्षरक्ष अनुपालन की बद्धता के कारण समाज बहुत कट्टर हो गया है और उसे को बदलना बहुत मुश्किल हो गया है। उन्होंने आगे लिखा कि भारतीय मुसलमान अपने समाज का सुधार करने में विफल रहे हैं जबकि इसके विपरीत तुर्की जैसे देशों ने अपने आपको बहुत बदल लिया है।

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि भारत में छोटी जोत की समस्या बुनियादी समस्या नहीं है। बल्कि यह एक मूल समस्या से निकली हुई समस्या है अर्थात्

सामाजिक अर्थव्यवस्था में असामंजस्य की समस्या है। इतनी अधिक भूमि में खेती होने के बावजूद उसकी जनसंख्या के अनुपात से बहुत कम भूमि में खेती होती है।

हालांकि वे मुहम्मद अली जिन्ना और मुस्लिम लीग की विभाजनकारी सांप्रदायिक रणनीति के घोर आलोचक थे पर उन्होंने तर्क दिया कि हिन्दुओं और मुसलमानों को पृथक् कर देना चाहिए और पाकिस्तान का गठन हो जाना चाहिये क्योंकि एक ही देश का नेतृत्व करने के लिए, जातीय राष्ट्रवाद के चलते देश के भीतर और अधिक हिंसा पनपेगी। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के सांप्रदायिक विभाजन के बारे में अपने विचार के पक्ष में ऑटोमोन साम्राज्य और चेकोस्लोवाकिया के विघटन जैसी ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख किया। उन्होंने पूछा कि क्या पाकिस्तान की स्थापना के लिये पर्याप्त कारण मौजूद थे? और सुझाव दिया कि हिन्दू और मुसलमानों के बीच के मतभेद एक कम कठोर कदम से भी मिटाना संभव हो सकता था। उन्होंने लिखा है कि पाकिस्तान को अपने अस्तित्त्व का औचित्य सिद्ध करना चाहिये। कनाडा जैसे देशों में भी सांप्रदायिक मुद्दे हमेशा से रहे हैं पर आज भी अंग्रेज और फ्रांसीसी एक साथ रहते हैं, तो क्या हिन्दू और मुसलमान भी साथ नहीं रह सकते। उन्होंने चेताया कि दो देश बनाने के समाधान का वास्तविक क्रियान्वयन अत्यन्त कठिनाई भरा होगा। विशाल जनसंख्या के स्थानान्तरण के साथ सीमा विवाद की समस्या भी रहेगी। भारत की स्वतंत्रता के बाद होने वाली हिंसा को ध्यान में रख कर यह भविष्यवाणी कितनी सही थी।

आम्बेडकर बनाम गाँधी

महात्मा गांधी के विपरीत डॉ. आम्बेडकर गांवों की अपेक्षा नगरों में एवं ग्रामीण शिल्पों या कृषि की व्यवस्था की तुलना में पश्चिमी समाज की औद्योगिक विकास में भारत और दलितों का भविष्य देखते थे। वे मार्क्सवादी समाजवाद की तुलना में बौद्ध मानववाद के समर्थक थे जिसके केन्द्र में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व की भावना है। आम्बेडकर, महात्मा गांधी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उग्र आलोचक थे। उनके समकालीनों और आधुनिक विद्वानों ने उनके महात्मा गांधी (जो कि पहले भारतीय नेता थे जिन्होंने अस्पृश्यता और भेदभाव करने का मुद्दा सबसे पहले उठाया था) के विरोध की आलोचना है।

1932 में ग्राम पंचायत बिल पर बम्बई की विधान सभा में बोलते हुए आम्बेडकर ने कहा–बहुतों ने ग्राम पंचायतों की प्राचीन व्यवस्था की बहुत प्रशंसा की है। कुछ लोगों ने उन्हें ग्रामीण प्रजातन्त्र कहा है। इन देहाती प्रजातन्त्रों का गुण जो भी हो, मुझे यह कहने में जरा भी दुविधा नहीं है कि वे भारत में सार्वजनिक जीवन के लिए अभिशाप हैं। यदि भारत राष्ट्रवाद उत्पन्न करने में सफल नहीं हुआ, यदि भारत राष्ट्रीय भावना के निर्माण में सफल नहीं हुआ, तो इसका मुख्य कारण मेरी समझ में ग्राम व्यवस्था का अस्तित्त्व है। इससे हमारे लोगों में विशिष्ट स्थानीयता की भावना भर गई उससे बड़ी नागरिक भावना के लिए थोड़ी भी जगह न रही। प्राचीन ग्राम पंचायतों की व्यवस्था के अन्तर्गत एकताबद्ध जनता के देश के बदले भारत ग्राम पंचायतों का ढीला-ढाला समुदाय बन गया। वे सब एक ही राजा की प्रजा थे, इसके सिवा उनके बीच और कोई बन्धन नहीं था।

गांधी का दर्शन भारत के पारंपरिक ग्रामीण जीवन के प्रति अधिक सकारात्मक, लेकिन रूमानी था, और उनका दृष्टिकोण अस्पृश्यों के प्रति भावनात्मक था उन्होंने उन्हें हरिजन कह कर पुकारा। आम्बेडकर ने इस विशेषण को सिरे से अस्वीकार कर दिया। उन्होंने अपने अनुयायियों को गांव छोड़ कर शहर जाकर बसने और शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया।

मृत्यु

आम्बेडकर 1948 से मधुमेह से पीड़ित थे। और वो जून से अक्टूबर 1954 तक बहुत बीमार रहे। राजनीतिक मुद्दों से परेशान आम्बेडकर का स्वास्थ्य बद से बदतर होता चला गया और 1955 के दौरान किये गये लगातार काम ने उन्हें तोड़ कर रख दिया। अपनी अंतिम पाण्डुलिपि बुद्ध और उनके धम्म को पूरा करने के तीन दिन के बाद 6 दिसंबर 1956 को आम्बेडकर की मृत्यु नई दिल्ली में उनके घर में हो गई। 7 दिसंबर को चौपाटी समुद्र तट पर बौद्ध शैली में अंतिम संस्कार किया गया जिसमें सैकड़ों हजारों समर्थकों, कार्यकर्ताओं और प्रशंसकों भाग लिया। एक स्मारक आम्बेडकर के दिल्ली स्थित उनके घर 26 अलीपुर रोड में स्थापित किया गया है। आम्बेडकर जयंती पर सार्वजनिक अवकाश रखा जाता है। अपने अनुयायियों को उनका संदेश था।

9

बाल गंगाधर तिलक

बाल गंगाधर तिलक एक भारतीय राष्ट्रवादी, शिक्षक, समाज सुधारक, वकील और एक स्वतन्त्रता सेनानी थे। ये भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के पहले लोकप्रिय नेता हुए, ब्रिटिश औपनिवेशिक प्राधिकारी उन्हें 'भारतीय अशान्ति के पिता' कहते थे। उन्हें, 'लोकमान्य' का आदरणीय शीर्षक भी प्राप्त हुआ, जिसका अर्थ हैं लोगों द्वारा स्वीकृत (उनके नायक के रूप में)।

लोकमान्य तिलक जी ब्रिटिश राज के दौरान स्वराज के सबसे पहले और मजबूत अधिवक्ताओं में से एक थे, तथा भारतीय अन्त:करण में एक प्रबल आमूल परिवर्तनवादी थे। उनका मराठी भाषा में दिया गया नारा 'स्वराज्य हा माझा जन्मसिद्ध हक्क आहे आणि तो मी मिळवणारच' (स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर ही रहूँगा) बहुत प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कई नेताओं से एक करीबी सन्धि बनाई, जिनमें बिपिन चन्द्र पाल, लाला लाजपत राय, अरविन्द घोष और वी. ओ. चिदम्बरम पिल्लै शामिल थे।

जीवन परिचय

बाल गंगाधर तिलक का जन्म 23 जुलाई, सन् 1856 ई. को भारत के रत्नागिरि नामक स्थान पर हुआ था। इनका पूरा नाम 'लोकमान्य श्री बाल गंगाधर तिलक' था। तिलक का जन्म एक सुसंस्कृत, मध्यमवर्गीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम 'श्री गंगाधर रामचंद्र तिलक' था। श्री गंगाधर रामचंद्र तिलक पहले रत्नागिरि में सहायक अध्यापक थे और फिर पूना

तथा उसके बाद 'ठाणे' में सहायक उपशैक्षिक निरीक्षक हो गए थे। वे अपने समय के अत्यंत लोकप्रिय शिक्षक थे। उन्होंने 'त्रिकोणमिति' और 'व्याकरण' पर पुस्तकें लिखीं जो प्रकाशित हुईं। तथापि, वह अपने पुत्र की शिक्षा-दीक्षा पूरी करने के लिए अधिक समय तक जीवित नहीं रहे। लोकमान्य तिलक के पिता 'श्री गंगाधर रामचंद्र तिलक' का सन् 1872 ई. में निधन हो गया।

शिक्षा

बाल गंगाधर तिलक अपने पिता की मृत्यु के बाद 16 वर्ष की उम्र में अनाथ हो गए। उन्होंने तब भी बिना किसी व्यवधान के अपनी शिक्षा जारी रखी और अपने पिता की मृत्यु के चार महीने के अंदर मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली। वे 'डेक्कन कॉलेज' में भर्ती हो गए फिर उन्होंने सन् 1876 ई. में बी.ए. आनर्स की परीक्षा वहीं से पास की सन् 1879 ई. में उन्होंने बंबई विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की परीक्षा पास की और कघनून की पढ़ाई करते समय उन्होंने 'आगरकर' से दोस्ती कर ली जो बाद में 'फर्ग्युसन कॉलेज' के प्रिंसिपल हो गए। दोनों दोस्तों ने इस बात पर विचार करते हुए अनेक रातें गुजारीं कि वे देशवासियों की सेवा की कौन-सी सर्वोत्तम योजना बना सकते हैं।

अंत में उन्होंने संकल्प किया कि वे कभी सरकारी नौकरी स्वीकार नहीं करेंगे तथा नई पीढ़ी को सस्ती और अच्छी शिक्षा प्रदान करने के लिए एक प्राइवेट हाईस्कूल और कॉलेज चलाएँगे। उनके साथी छात्र इन आदर्शवादी बातों पर उनकी हँसी उड़ाते थे। लेकिन इन उपहासों या बाहरी कठिनाइयों का कोई असर उन दोनों उत्साही युवकों पर नहीं हुआ।

सार्वजनिक सेवा

तिलक जी ने स्कूल के भार से स्वयं को मुक्त करने के बाद अपना अधिकांश समय सार्वजनिक सेवा में लगाने का निश्चय किया। अब उन्हें थोड़ी फुरसत मिली थी। इसी समय लड़कियों के विवाह के लिए सहमति की आयु बढ़ाने का विधेयक वाइसराय की परिषद के सामने लाया जा रहा था। तिलक पूरे उत्साह से इस विवाद में कूद पड़े, इसलिए नहीं कि वे समाज-सुधार के सिद्धांतों के विरोधी थे, बल्कि इसलिए कि वे इस क्षेत्र में जोर-जबरदस्ती करने के विरुद्ध थे। सहमति की आयु का विधेयक, चाहे इसके उद्देश्य कितने ही प्रशंसनीय क्यों न रहे हों, वास्तव में हिन्दू समाज में सरकारी हस्तक्षेप से सुधार

लाने का प्रयास था। अत: समाज-सुधार के कुछ कट्टर समर्थक इसके विरुद्ध थे। इस विषय में तिलक के दृष्टिकोण से पूना का समाज दो भागों, कट्टरपंथी और सुधारवादियों में बँट गया। दोनों के बीच की खाई नए मतभेदों एवं नए झगड़ों के कारण बढ़ती गई।

विद्यालय की स्थापना

उसी समय इन्हीं विचारों के एक बुजुर्ग व्यक्ति 'विष्णु कृष्ण चिपलूनकर' उनसे मिले- जो 'विष्णु शास्त्री' के नाम से जाने जाते थे। उन्होंने उन्हीं दिनों सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया था, क्योंकि अपने अफसरों से उनकी नहीं बनती थी। वे इस निश्चय के साथ पूना आए थे कि वहाँ एक प्राइवेट हाईस्कूल चलाएंगे। वे मराठी के सर्वोत्तम गद्य-लेखक के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। तिलक और आंगरकर ने उनकी योजना को जानने के बाद उनके साथ विचार-विमर्श किया। बाद में इन तीनों के साथ एक और व्यक्ति शामिल हो गया- 'एम.बी. नामजोशी', जो असाधारण बुद्धि और ऊर्जा से परिपूर्ण थे। चिपलूनकर और तिलक ने नामजोशी की सहायता से 2 जनवरी, सन् 1880 ई. को पूना में 'न्यू इंग्लिश स्कूल' शुरू किया। 'वी.एस. आप्टे' ने जून में और आंगरकर वर्ष के अंत में एम.ए. करने के बाद उस स्कूल में शामिल हो गए। इन पाँच आदमियों ने अपनी गतिविधियों को स्कूल तक ही सीमित नहीं रखा।

प्लेग की बीमारी

तिलक ने प्लेग की बीमारी के दौरान देशवासियों की जो सेवा की, उसे भी नहीं भुलाया जा सकता। जैसे ही पूना में प्लेग के लक्षण प्रकट हुए उन्होंने 'हिन्दू प्लेग अस्पताल' शुरू किया और कई दिनों तक इसके लिए धन जुटाने का कार्य किया। जहाँ पूना के अधिकांश नेता नगर छोड़कर भाग गए थे, तिलक वहीं रहे। उन्होंने लोगों को दिलासा-भरोसा दिलाया। वे खोजी दलों के साथ स्वयंसेवक के रूप में गए, अस्पताल का प्रबंध किया, पृथक्करण शिविर में नि:शुल्क रसोई की व्यवस्था की, और जनता के सामने आ रही कठिनाइयों के बारे में श्री रेंड तथा महामहिम गवर्नर को बताते रहे। अपने समाचार-पत्रों में उन्होंने प्लेग की समाप्ति के लिए सरकार द्वारा उठाए गए विभिन्न कदमों का समर्थन दृढ़ता के साथ किया, इसी के साथ उन्होंने सलाह दी कि इन उपायों

को सहानुभूतिपूर्ण और मैत्रीपूर्ण ढंग से लागू किया जाए। उन्होंने जनता को सलाह दी कि वह अनावश्यक विरोध न करे।

समाचार पत्र का प्रकाशन

इसके बाद उन्होंने दो साप्ताहिक समाचार पत्रों, मराठी में केसरी और अंग्रेजी में द मराठा, के माध्यम से लोगों की राजनीतिक चेतना को जगाने का काम शुरू किया। इन समाचार पत्रों के जरिये ब्रिटिश शासन तथा उदार राष्ट्रवादियों की, जो पश्चिमी तर्ज पर सामाजिक सुधारों एवं संवैधानिक तरीके से राजनीतिक सुधारों का पक्ष लेते थे, कटु आलोचना के लिए वह विख्यात हो गए। उनका मानना था कि सामाजिक सुधार में जनशक्ति खर्च करने से वह स्वाधीनता के राजनीतिक संघर्ष में पूरी तरह नहीं लग पाएगी।

उन पत्रों ने देसी पत्रकारिता के क्षेत्र में शीघ्र ही अपना विशेष स्थान बना लिया। विष्णु शास्त्री चिपलूनकर ने इन दोनों समाचार-पत्रों के लिए दो मुद्रणालय भी स्थापित किए। छपाई के लिए 'आर्य भूषण' और 'ललित कला' को प्रोत्साहन देने के वास्ते 'चित्रशाला' दी गई। इन गतिविधियों में कुछ समय के लिए पाँचों व्यक्ति पूरी तरह व्यस्त हो गए। उन्होंने इन कार्यों को आगे बढ़ाया। 'न्यू इंग्लिश स्कूल' ने शीघ्र ही स्कूलों में पहला स्थान प्राप्त कर लिया। 'मराठा' और 'केसरी' भी डक्कन के प्रमुख समाचार-पत्र बन गए।

देशप्रेमियों के इस दल को शीघ्र ही अग्नि परीक्षा में होकर गुजरना पड़ा। केसरी और मराठा में प्रकाशित कुछ लेखों में कोल्हापुर के तत्कालीन महाराजा शिवाजी राव के साथ किए गए व्यवहार की कठोर आलोचना की गई थी। राज्य के तत्कालीन प्रशासक 'श्री एम. डब्ल्यू. बर्वे' ने इस पर मराठा और केसरी के संपादक के रूप में क्रमशः तिलक और श्री आंगरकर के विरुद्ध मान-हानि का मुकदमा चला दिया। कुछ समय बाद इन लोगों की कठिनाइयाँ और बढ़ गईं क्योंकि जब यह मामला विचाराधीन था, तभी 'श्री वी.के. चिपलूनकर' का देहांत हो गया। उसके बाद 'तिलक' और 'आंगरकर' को दोषी पाया गया। उन्हें चार-चार महीने की साधारण कैद की सजा सुना दी गई।

डक्कन एजुकेशन सोसाइटी का गठन

कोल्हापुर संबंधी मुकदमे से स्कूल और दोनों समाचार पत्रों की लोकप्रियता में और वृद्धि हुई। सभी ओर से लोगों ने स्वेच्छा से सहायता प्रदान की। श्री

चिपलूनकर की मृत्यु के बाद तिलक काफी समय तक इस छोटे दल के मार्गदर्शक और 'श्री नामजोशी' सक्रिय सदस्य रहे। सन् 1884 ई. के उत्तरार्ध में उन्होंने स्वयं को कानूनी अस्तित्त्व देने का निश्चय किया। उन्होंने इस उद्देश्य के लिए 'डक्कन एजुकेशन सोसाइटी', पूना का गठन किया और वे इस सोसाइटी के पहले आजीवन सदस्य बने। शीघ्र ही 'स्वर्गीय प्रोफेसर वी.वी. केलकर', 'प्रोफेसर धराप' और 'प्रोफेसर एम.एस. गोले' भी आजीवन सदस्य बन गए। बाद में 'प्रोफेसर गोखले', 'प्रोफेसर भाने' और 'प्रोफेसर पाटणकर' भी आजीवन सदस्य बने।

फर्ग्यूसन कॉलेज की स्थापना

सन् 1885 ई. में 'डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी' के तत्त्वावधान में 'फर्ग्यूसन कॉलेज' की स्थापना की गई और सभी आजीवन सदस्यों ने इस कॉलेज में 20 वर्ष तक प्रोफेसर के रूप में काम करने की स्वीकृति दी। सोसाइटी की संस्थाएं शीघ्र ही समृद्ध हो गईं। उन्होंने 'गद्रेवाड़ा' और 'कबूतरखाना खेल का मैदान' खरीद लिया। सर जेम्स फर्ग्यूसन की सरकार के वायदे के अनुसार बाद में लॉर्ड रे ने सोसाइटी को नानावाड़ा सौंप दिया। सोसाइटी ने 'चतुर श्रृंगी' के समीप कॉलेज के लिए एक भव्य इमारत का निर्माण किया। तथापि, स्कूल और कॉलेज के साथ तिलक का संबंध सन् 1890 ई. में समाप्त हो गया। वे कारण जिनकी वजह से ये संबंध समाप्त हुए, अनेक और अलग-अलग थे। वास्तव में विघटन की प्रक्रिया काफी पहले शुरू हो गई थी। 'विष्णु शास्त्री' के जीवन काल में ही 'चित्रशाला' एक स्वतंत्र प्रतिष्ठान हो गया था।

तिलक और आंगरकर के बीच मतभेद

सन् 1888 ई. के दौरान तिलक और आंगरकर के बीच सामाजिक और धार्मिक प्रश्नों पर मतभेद शुरू हो गए थे। इनके कारण 'श्री आंगरकर' ने 'केसरी' के सम्पादक पद से इस्तीफा दे दिया और अपने पत्र सुधारक का प्रकाशन शुरू किया। इसी समय यह स्पष्ट हो गया कि स्कूल और कॉलेज तथा समाचार-पत्रों के हित एक से नहीं हैं। अतः उनका विभाजन कर दिया गया, जिसके अनुसार 'आर्य भूषण प्रेस' और दो समाचार-पत्र तिलक, प्रो. केलकर और एच.एन. गोखले की संपत्ति बन गए। प्रो. केलकर दोनों पत्रों के प्रभारी संपादक बना दिए गए।

आजीवन सदस्यों का आचरण

यह स्थिति सन् 1890 ई. तक रही और अनिश्चित काल तक चलती रहती, अगर नए मतभेदों के कारण संबंधों की दरार अधिक नहीं बढ़ती। ये मतभेद मुख्य रूप से उन सिद्धांतों के बारे में थे, जिनसे आजीवन सदस्यों का आचरण और स्कूल का प्रबंध नियंत्रित होता था। यह स्थिति सन् 1889 ई. में 'प्रो. गोखले' के सार्वजनिक सभा का सदस्य बनने से पैदा हुई। तिलक शुरू से ही इस मत के थे कि आजीवन सदस्यों को 'जेसुइट पादरियों' की तरह सादा जीवन बिताना चाहिए और अपना संपूर्ण समय तथा ऊर्जा अध्यापन-कार्य में लगानी चाहिए। उनके अधिकतर सहयोगी इस बात से सहमत नहीं थे।

सोसाइटी से त्याग पत्र

तिलक के विचारों से उनके अधिकतर सहयोगियों के सहमत न होने के कारण तिलक ने नवंबर, सन् 1890 ई. में अपना त्याग पत्र भेज कर सोसाइटी से अपने सभी संबंध समाप्त कर लिये। प्रोफेसर के रूप में तिलक अत्यंत लोकप्रिय थे। वे गणित के स्थायी प्रोफेसर थे और बीच-बीच में संस्कृत तथा विज्ञान के प्रोफेसर के रूप में भी कार्य करते थे। मौलिकता और एक-एक बात का ध्यान रखना उनका आदर्श वाक्य था और वे जो भी विषय पढ़ाते थे उसमें उनके छात्रों को कभी भी शिकायत करने का अवसर नहीं मिलता था। गणितज्ञ के रूप में उनका जवाब नहीं था और वे अपने छात्रों को अक्सर 'डक्कन कॉलेज' के 'प्रो. छत्रे' की याद दिलाते थे, जो तिलक के गुरु भी थे।

कॉलेज से इस्तीफा देने के बाद तिलक ने कानून की कक्षा शुरू की। यह 'बंबई प्रेसीडेंसी' में अपने ढंग का पहला शैक्षणिक संस्थान था जो छात्रों को हाईकोर्ट और वकालत की परीक्षा के लिए तैयार करता था। उन्होंने 'केसरी' का भार भी अपने ऊपर ले लिया।

एकमात्र मालिक

प्रो. केलकर वर्ष के अंत तक 'मराठा' के संपादक बने रहे, परंतु शीघ्र ही उन्हें प्रो. केलकर को समाचार-पत्र के साथ अपना संबंध पूरी तरह समाप्त कर देना पड़ा। तब तिलक दोनों पत्रों के संपादक बन बए। एक वर्ष इन दोनों के बीच प्रेस और समाचार-पत्रों का विभाजन हो गया। तिलक 'केसरी' और

'मराठा' समाचार-पत्रों के एकमात्र मालिक और संपादक हो गए। प्रो. केलकर और श्री गोखले 'आर्य भूषण प्रेस' के मालिक रहे। दोनों समाचार-पत्रों को अपने जन्म के बाद इस तरह अनेक उतार-चढ़ावों से गुजरना पड़ा। तिलक द्वारा केसरी को संभालने के बाद उसकी ग्राहक संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। तब इसकी ग्राहक संख्या देश के किसी भी अन्य समाचार-पत्र की ग्राहक संख्या से बहुत अधिक थी।

स्वतंत्रता संग्राम

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नरम दल के लिए तिलक के विचार जरा ज्यादा ही उग्र थे। नरम दल के लोग छोटे सुधारों के लिए सरकार के पास वफादार प्रतिनिधि मंडल भेजने में विश्वास रखते थे। तिलक का लक्ष्य स्वराज था, छोटे- मोटे सुधार नहीं और उन्होंने कांग्रेस को अपने उग्र विचारों को स्वीकार करने के लिए राजी करने का प्रयास किया। इस मामले पर सन् 1907 ई. में कांग्रेस के 'सूरत अधिवेशन' में नरम दल के साथ उनका संघर्ष भी हुआ। राष्ट्रवादी शक्तियों में फूट का लाभ उठाकर सरकार ने तिलक पर राजद्रोह और आतंकवाद फैलाने का आरोप लगाकर उन्हें छह वर्ष के कारावास की सजा दे दी और मांडले, बर्मा, वर्तमान म्यांमार में निर्वासित कर दिया। 'मांडले जेल' में तिलक ने अपनी महान् कृति 'भगवद्गीता-रहस्य' का लेखन शुरू किया, जो हिन्दुओं की सबसे पवित्र पुस्तक का मूल टीका है। तिलक ने भगवद्गीता के इस रूढ़िवादी सार को खारिज कर दिया कि यह पुस्तक संन्यास की शिक्षा देती है, उनके अनुसार, इससे मानवता के प्रति निःस्वार्थ सेवा का संदेश मिलता है।

इंडियन होमरूल लीग की स्थापना

प्रथम विश्वयुद्ध के ठीक पहले सन् 1914 ई. में रिहा होने पर वह पुनः राजनीति में कूद पड़े और 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा' के नारे के साथ इंडियन होमरूल लीग की स्थापना की। सन् 1916 ई. में वह फिर से कांग्रेस में शामिल हो गए तथा हिंदुओं और मुसलमानों के बीच हुए ऐतिहासिक लखनऊ समझौते पर हस्ताक्षर किए, जो उनके एवं पाकिस्तान के भावी संस्थापक मुहम्मद अली जिन्ना के बीच हुआ था, 'इंडियन होमरूल लीग' के अध्यक्ष के रूप में तिलक सन् 1918 में इंग्लैंड गए। उन्होंने महसूस किया कि ब्रिटेन की राजनीति में 'लेबर पार्टी' एक उदीयमान शक्ति है,

इसलिए उन्होंने उसके नेताओं के साथ घनिष्ठ संबंध कायम किए। उनकी दूरदृष्टि सही साबित हुई। सन् 1947 ई. में 'लेबर सरकार' ने ही भारत की स्वतंत्रता को मंजूरी दी। तिलक पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने कहा था कि भारतीयों को विदेशी शासन के साथ सहयोग नहीं करना चाहिए, इस बात से वह बराबर इंकार करते रहे कि उन्होंने हिंसा के प्रयोग को उकसाया।

स्मरणोत्सव आंदोलन

तिलक सन् 1895 ई. में 'शिवाजी स्मरणोत्सव आंदोलन' के साथ जुड़ गए। उस वर्ष 23 अप्रैल के 'केसरी' में प्रकाशित एक लेख से जनता में इतना उत्साह जागृत हुआ कि रायगढ़ में शिवाजी की समाधि के पुनर्निर्माण के लिए थोड़े ही समय में 20,000 रू. एकत्र हो गए। इसमें से अधिकांश पैसा छोटे-छोटे चंदों से प्राप्त हुआ था।

उसी समय से शिवाजी के जन्मदिवस और राज्याभिषेक पर भी समारोह मनाए जाने लगे। जब सन् 1895 ई. के क्रिसमस के दौरान पूना में राष्ट्रीय कांग्रेस का ग्यारहवां अधिवेशन करने का निश्चय किया गया तो पूना की सभी पार्टियों ने सर्वसम्मति से तिलक को 'स्वागत समिति' का सचिव बनाया। इस हैसियत से 'कांग्रेस अधिवेशन' के आयोजन का सभी काम तिलक को करना पड़ा। उन्होंने सितंबर तक कार्य किया। जब इस विषय पर विवाद हो गया कि क्या कांग्रेस के पंडाल में सामाजिक परिषद भी होगी तो पार्टी में जबरदस्त झगड़ा हो गया जिसके कारण तिलक ने स्वयं को इस काम से अलग कर लिया। तथापि, उन्होंने कांग्रेस की गतिविधियों में दिलचस्पी लेना बन्द नहीं किया, बल्कि बाहर रहकर कांग्रेस अधिवेशन को सफल बनाने का पूरा प्रयास किया।

अकाल का प्रभाव

सन1896 ई. में 'बंबई प्रेसीडेंसी' को भंयकर अकाल का सामना करना पड़ा। तिलक पूरी तरह राहत-कार्यों में जुट गए। उन्होंने अकाल- संहिता (फैमीन कोड) लागू करने का आग्रह 'बंबई सरकार' से किया। अकाल का प्रभाव कम करने के लिए उन्होंने सरकार को अनेक सुझाव भी दिए। अगर उन सुझावों को स्वीकार कर लिया जाता तो लोगों की तकलीफें काफी कम हो जातीं। पूना में उन्होंने समय से सस्ते अनाज की दुकानें खोलकर अकाल के

कारण होने वाले दंगों को रोका। जब उन्होंने शोलापुर और अहमदनगर के बुनकरों की तकलीफों के बारे में सुना तो वे स्वयं मौके पर गए और उन्होंने स्थानीय नेताओं के साथ विचार-विमर्श करके एक योजना बनाई। इसके अंतर्गत स्थानीय समितियों को सरकार के साथ सहयोग करके इस वर्ग के लोगों को उपयुक्त राहत प्रदान करने को कहा गया। यह योजना वैसी ही थी, जैसी उत्तर पश्चिम प्रांत के उपराज्यपाल ने स्वीकार की थी। दुर्भाग्यवश इस विषय पर बंबई सरकार के असहानुभूतिपूर्ण आचरण के कारण यह योजना स्वीकार नहीं की गई और यही नहीं, बंबई सरकार ने इस तरह की योजनाओं को मंजूरी देने की व्यवस्था में संशोधन कर दिया। सरकार की नाराजगी का कारण यह था कि 'पूना सार्वजनिक सभा', जिसके प्रमुख नेता तिलक थे, ने जनता को उन रियासतों से परिचित कराया था, जिसे कानून के अंतर्गत वे पाने के अधिकारी थे। इसके अलावा, सभा ने सरकार अधिकारियों को अच्छा नहीं लगा। सभा ने सरकार को अनेक प्रतिवेदन भेजे, लेकिन उनका या तो संक्षिप्त और रूखा जवाब मिला या कोई जवाब मिला ही नहीं, और अंततः इस पर पूरे तौर पर पाबंदी लगा दी गई। यह सब अप्रत्यक्ष रूप से तिलक पर दबाव बनाने के लिए किया गया था, लेकिन वे निर्भर होकर अधिकाधिक कार्य करते रहे।

लेखक के रूप में

तिलक अपना सारा समय हलके-फुलके लेखन में लगाने वाले व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने अब अपने खाली समय का उपयोग किसी अच्छे कार्य में लगाने का संकल्प लेकर उसे अपनी प्रिय पुस्तकों भगवद्गीता और ऋग्वेद के पठन-पाठन में लगाया। वेदों के काल-निर्धारण से संबंधित अपने अनुसंधान के परिणामस्वरूप उन्होंने वेदों की प्राचीनता पर एक निबंध लिखा। जो गणित-ज्योतिषीय अवलोकन के प्रमाणों पर आधारित था। उन्होंने इस निबंध का सारांश इंटरनेशनल कांग्रेस ऑफ ओरिएंटलिस्ट के पास भेजा जो सन् 1892 ई. में लंदन में हुई। अगले वर्ष उन्होंने इस पूरे निबंध को पुस्तकाकार में दि ओरियॉन या दि रिसर्च इनटु द एंटिक्विटी ऑफ द वेदाज शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित किया। उन्होंने इस पुस्तक में ओरियॉन की ग्रीक परंपरा और 'लक्षत्रपुंज' के संस्कृत अर्थ 'अग्रायण या अग्रहायण' के बीच संबंध को ढूंढ़ा है। क्योंकि अग्रहायण शब्द का अर्थ वर्ष का प्रारंभ है, वे इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि ऋग्वेद के सभी स्रोत जिनमें इस शब्द का संदर्भ है या इसके

साथ जो भी विभिन्न परंपराएँ जुड़ी थीं, की रचना ग्रीक लोगों के हिंदुओं से पृथक् होने से पूर्व की गई होगी।

पुस्तक 'द आर्कटिक होम इन द वेदास'

यह वह समय रहा होगा, जब वर्ष का प्रारंभ सूर्य के ओरियॉन या मृगशिरा नक्षत्र पुंज में रहते समय अर्थात् ईसा से 4000 वर्ष पहले हुआ होगा। इस पुस्तक की प्रशंसा यूरोप और अमेरिकी विद्वानों ने की। अब यह कहा जा सकता है कि तिलक के निष्कर्षों को लगभग सभी ने स्वीकार कर लिया है। अनेक प्राच्यविदों, जैसेकि-मैक्समूलर, वेबर, जेकोबी, और विटने ने लेखक की विद्वता और मौलिकता को स्वीकार किया है। पुस्तक के प्रकाशन के बाद तिलक ने कुछ समय तक प्रोफेसर मैक्समूलर और वेबर के साथ पुस्तक में उठाए गए कुछ भाषा-विज्ञानीय प्रश्नों पर दोस्ताना पत्र व्यवहार किया। इसके परिणामस्वरूप दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हुए कि इस विषय के पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है।

तिलक की पुस्तक की प्रशंसा

अमेरिका के प्रो. विटने ने सन् 1894 ई. में अपनी मृत्यु से कुछ पहले 'जर्नल ऑफ दि अमरीकन ओरिएंटल सोसाइटी' में एक लेख लिख कर तिलक के सिद्धांतों की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। इसी तरह 'जॉन हॉपकिंस यूनिवर्सिटी' के 'डॉ. ब्लूमफील्ड' ने एक वार्षिकोत्सव में भाषण करते हुए तिलक की पुस्तक की प्रशंसा इन शब्दों में की थी-

''पिछले दो-तीन महीने के दौरान अत्यधिक महत्त्व की एक साहित्यिक घटना हुई है- एक ऐसी घटना, जो निश्चय ही आनंददायक स्मृतियों से अधिक विज्ञान और संस्कृति की दुनिया में उथल-पुथल मचा देगी। लगभग दस सप्ताह पहले मुझे भारत से एक छोटे आकार की पुस्तक मिली। उसकी साज-सज्जा भद्दी थी और स्थानीय प्रेस में छपाई के कारण उसमें अनेक गलतियाँ थीं। यह पुस्तक मुझे लेखक ने, जिससे मेरा कोई परिचय नहीं था, शुभकामनाओं के साथ भेजी थी। मैंने लेखक का नाम कभी भी नहीं सुना था। बाल गंगाधर तिलक, बी.ए. एल.एल.बी, लॉ के लेक्चरर और वकील, पूना। इस पुस्तक का प्रकाशन श्रीमती राधाबाई आत्माराम सैगून, पुस्तक-विक्रेता और प्रकाशक, बंबई ने किया है। पुस्तक का शीर्षक है 'ओरियॉन या रिसर्चेज इनटु द एंटिक्विटी

ऑफ वेदाज'। मेरे पास यह पुस्तक मुझे इसके पक्ष में करने के लिए नहीं भेजी गई थी। मैंने इसे एक ऐसी जगह पर रख दिया, जहाँ से मैं इसे रात्रि-भोज के बाद आसानी से उठा सकूँ और कुछ पृष्ठ पढ़ने के बाद अलग रख सकूँ। डाक के जरिए इस तरह की बहुत-सी-सामग्री मेरे पास पहुँचती रहती है।"

इसकी भूमिका बहुत उत्साहवर्धक नहीं थी। लेखक नम्रता के साथ सूचित करता है कि ऋग्वेद का रचनाकाल ईसा के जन्म से चार हजार वर्ष पहले से कम नहीं हो सकता और हिन्दू परंपरा के साथ इसका काल ईसा के 6000 वर्ष पूर्व होना चाहिए। हिंदुओं को प्रचुर कल्पना-शक्ति, के बारे में कुछ भी स्वीकार करने की प्रवृत्ति को ध्यान में रख कर मैंने सोचा कि मैं पुस्तक के कुछ पन्ने उलट कर उसे मुस्कुराहट के साथ अलग रख दूँगा। लेकिन कुछ ही समय बाद मेरी मुस्कुराहट गायब हो गई और मुझे लगा कि कोई असाधारण घटना हो गई है। सबसे पहले मैं लेखक की इस बात से प्रभावित हुआ कि उन्होंने वैदिक साहित्य और इस विषय से संबंधित पाश्चात्य साहित्य का गंभीर अध्ययन किया है। शीघ्र ही मेरा सतही अध्ययन गंभीर अध्ययन में बदल गया। उपहास की भावना के स्थान पर मैं लेखक की बातों का कायल होने लगा। निस्संदेह यह पुस्तक साहित्य के क्षेत्र में सनसनी पैदा करने वाली है। तिलक की खोज के परिणामों को समझने में काफी समय लगेगा।' अगर तिलक तत्काल उसी दिशा में आगे बढ़ते रहते और उन अनेक प्रश्नों का समाधान खोजते, जो उनकी पुस्तक में अनुत्तरित रह गए थे तो अच्छा होता, लेकिन लॉ लेक्चरर और पत्रकारिता व्यवसाय के कारण उनको भाषाशास्त्र और इतिहास से संबंधित प्रश्नों पर ध्यान देने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता था।

बापट केस

तिलक सन् 1894 ई. में एक महत्त्वपूर्ण मामले में व्यस्त हो गए। इस मामले के साथ उनके एक मित्र और 'बड़ौदा रियासत', दोनों के व्यापक हित जुड़े थे। यह प्रसिद्ध 'बापट केस' था। 'राव साहब डब्ल्यू. एस. बापट', जो बंदोबस्त विभाग के अध्यक्ष थे, पर भ्रष्टाचार के अनेक आरोपों पर मुकदमा चलाने के लिए विशेष आयोग नियुक्त किया गया था। यह केस बंदोबस्त विभाग के विरुद्ध एक षड्यंत्र का नतीजा था। यह षड्यंत्र वास्तव में 'ब्रिटिश 'पॉलिटिकल' विभाग का कारनामा था। श्री बापट के मुकदमे की कुछ विशेषताएँ थीं। यह मुकदमा महाराज के पीठ-पीछे चलाया जा रहा था। वे यूरोप

के दौरे पर थे। महाराजा के शत्रुओं को आशा थी कि मुकदमे के दौरान कुछ ऐसी बातें प्रकट की जाएगी जिनसे महाराज की प्रशासन क्षमता पर चोट पहुँचेगी। लोग केवल बंदोबस्त विभाग से ही नाराज नहीं थे, बल्कि वे कई उच्च अधिकारियों से भी नाराज थे। यह स्पष्ट था कि श्री बापट को बलि का बकरा बनाया जा रहा था। उन्हें न केवल अपने अपराधों की, बल्कि दूसरों के अपराधों की भी सजा दी जानी थी। अभियोजन पक्ष की ओर से माननीय 'पी.एम. मेहता' और बाद में बैरिस्टर 'श्री ब्रेन्सन' और बचाव पक्ष के लिए 'श्री एम.सी. आप्टे' और 'श्री डी.ए. खरे' वकील थे। लेकिन बचाव का अधिकांश भार तिलक पर था। अभियोजन पक्ष के गवाहों से की गई जिरह और बचाव पक्ष के लिए दिए गए उनके अकाट्य तर्क उनकी मेहनत और योग्यता के जीते-जागते प्रमाण हैं।

पाँच अधिवेशन

तिलक की गतिविधियाँ समकालीन राजनीति में थमी नहीं। अब वे 'राष्ट्रीय कांग्रेस की डक्कन स्थायी समिति' के सचिव नहीं रहे थे, लेकिन 'बंबई प्रांतीय सम्मेलन' के सचिव के रूप में उन्होंने उसके पाँच अधिवेशन आयोजित किए। पाँचवाँ अधिवेशन 'श्री पी.एम. मेहता' की अध्यक्षता में सन् 1892 ई. में आयोजित किया गया और पूरी तरह सफल रहा।

राजद्रोह का मुकदमा

तिलक ने संकट की घड़ी में जनता को भाग्य के भरोसे छोड़ देने के लिए पूना के नेताओं की आलोचना की। तिलक की गतिविधियों ने जल्दी ही उन्हें ब्रिटिश सरकार के साथ टकराव की स्थिति में ला खड़ा किया। लेकिन उनकी सार्वजनिक सेवाएं उन्हें मुकदमे और उत्पीड़न से नहीं बचा सकीं। सन् 1897 ई. में उन पर पहली बार राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। सरकार ने उन पर राजद्रोह का आरोप लगाकर उन्हें जेल भेज दिया। इस मुकदमे और सजा के कारण उन्हें लोकमान्य की उपाधि मिली। भारत के वाइसरॉय लॉर्ड कर्जन ने जब सन् 1905 ई. में बंगाल का विभाजन किया, तो तिलक ने बंगालियों द्वारा इस विभाजन को रद्द करने की मांग का जोरदार समर्थन किया और ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार की वकालत की, जो जल्दी ही एक देशव्यापी आंदोलन बन गया। अगले वर्ष उन्होंने सत्याग्रह के कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई, जिसे नए दल का सिद्धांत कहा जाता था। उन्हें उम्मीद थी कि इससे ब्रिटिश शासन का सम्मोहनकारी

प्रभाव खत्म होगा और लोग स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु बलिदान के लिए तैयार होंगे। तिलक द्वारा शुरू की गई राजनीतिक गतिविधियों, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और सत्याग्रह को बाद में मोहनदास करमचंद गाँधी ने अंग्रेजों के साथ अहिंसक असहयोग आंदोलन में अपनाया।

तिलक को जमानत

श्री रेंड और लेफ्टिनेंट आयर्स्ट की हत्या कुछ अज्ञात लोगों द्वारा 22 जून को कर दी गई। इससे बंबई और पूना में, विशेष रूप से 'एंग्लो इंडियन समुदाय' में जबरदस्त उत्तेजना फैली। 26 जुलाई को बंबई सरकार ने तिलक पर मुकदमा चलाने की मंजूरी प्रदान की और 27 जुलाई को पूर्वी भाषाओं के अनुवादक श्री बेग ने बंबई के 'चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट' श्री जे. सेंडर्स स्लेटर के सामने सूचना रखी। 27 जुलाई की रात में तिलक को बंबई में गिरफ्तार कर लिया गया और दूसरे दिन उन्हें मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। इसके फौरन बाद मजिस्ट्रेट के सामने जमानत की अर्जी दाखलि की गई। सरकार ने दृढ़ता और सफलता के साथ इसका विरोध किया।

29 तारीख को इसी तरह की एक अर्जी उच्च न्यायालय में दाखिल की गई, जिसे फिर से आवेदन करने की अनुमति के साथ अस्वीकार कर दिया गया। 2 अगस्त को यह केस हाई कोर्ट सेशन के सुपर्द कर दिया गया और अध्यक्ष न्यायाधीश, न्यायमूर्ति बदरुद्दीन तैयबजी के सामने जमानत की अर्जी फिर दाखिल की थी। जमानत की अर्जी का प्रबल विरोध एडवोकेट जनरल ने किया लेकिन न्यायाधीश ने तिलक को जमानत दे दी।

मुकदमे की सुनवाई

यह मुकदमा उचित समय पर, 8 सितंबर को सुनवाई के लिए आया। सुनवाई एक सप्ताह तक चली। कलकत्ता बार के श्री प्यू और उनकी सहायता के लिए श्री गार्थ बचाव पक्ष में तिलक की ओर से और एडवोकेट जनरल श्री बेसिल लाग अभियोजन पक्ष की ओर से थे। न्यायमूर्ति स्ट्रैची ने मुकदमें की सुनवाई की। जूरी के सदस्य थे पाँच यूरोपीय ईसाई, एक यूरोपीय यहूदी, दो हिन्दू और एक पारसी। जूरी के छह यूरोपीय सदस्यों ने आरोपी को दोषी ठहराया, जबकि तीन देशी सदस्यों ने उन्हें निर्दोष माना। न्यायाधीश ने बहुमत के निर्णय को स्वीकार कर लिया और तिलक को अठारह महीने की कड़ी कैदी

की सजा सुनाई। जब जूरी के सदस्य अपने निर्णय पर विचार करने के लिए चले गए थे, अभियुक्त की ओर से न्यायाधीश को आवेदन दिया गया कि कानून के कुछ प्रश्न पूरी बैंच के विचारार्थ सुरक्षित कर दिए जाएँ। इस आवेदन को स्वीकार नहीं किया गया। बाद में 'एडवोकेट जनरल' को दिया गया इसी तरह का एक प्रार्थनापत्र नामंजूर कर दिया गया। 17 सितंबर, सन् 1897 ई. को उच्च न्यायालय से यह प्रमाणपत्र जारी करने का अनुरोध किया गया कि यह केस 'प्रिवी काउंसिल' में अपील करने योग्य है। इस आवेदन की सुनवाई मुख्य न्यायाधीश सर चार्ल्स फैरन, न्यायमूर्ति कैंडी और न्यायमूर्ति स्ट्रैची ने की और उसे अस्वीकार कर दिया।

न्याय की अपील

प्रिवी काउंसिल में न्याय की अपील की गई। माननीय श्री एसक्विथ ने, जो बाद में इंग्लैंड के प्रधानमंत्री हुए, 19 नवंबर, 1897 को तिलक की अपील पर बहस की। लॉर्ड हेल्सबरी, लॉर्ड चांसलर जो उस समय इंग्लैंड के कैबिनेट मंत्री थे, लीक से हटकर काउंसिल की बैठक की अध्यक्षता करने गए। सभी को पता था कि कैबिनेट के एक अन्य मंत्री ने इस मुकदमें को चलाने की मंजूरी दी थी। श्री एसक्विथ ने अपनी बहस में इस बात पर बहुत जोर दिया कि न्यायमूर्ति स्ट्रैची ने जूरी को गलत निर्देश दिए थे। लेकिन प्रिवी काउंसिल ने समूची गवाही के सार और विवरण पर विचार करने के बाद फैसले में परिवर्तन करने लायक कोई बात नहीं पाई। परिणामस्वरूप अपील करने की अनुमति देने का प्रार्थनापत्र नामंजूर कर दिया गया।

इस प्रकार तिलक के लिए न्याय पाने के सभी रास्ते बंद को गए। लेकिन इन घटनाओं का गहरा असर ब्रिटेन की जनता पर पड़ा। प्रो. मैक्समूलर और सर विलियम हंटर ने अपनी विशाल हृदयता के साथ, जो उनके चरित्र का अभिन्न पहलू था, महारानी को एक प्रतिवेदन भेजने का आयोजन किया। इस पर महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के हस्ताक्षर थे। इस प्रतिवेदन में अनुरोध किया गया था कि तिलक के प्रति इस आधार पर दया प्रदर्शित की जाएँ कि वे एक विद्वान् हैं और उनकी रिहाई के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। अन्य बातों के साथ इस प्रार्थनापत्र का असर हुआ और बातचीत के बाद तिलक कुछ औपचारिक शर्तें मानने के लिए तैयार हो गए और उन्हें मंगलवार 6 सितंबर, 1898 को 'बंबई के महामहिम गर्वनर' के आदेशों पर छोड़ दिया गया।

रिहाई के बाद

तिलक कारावास में अत्यधिक दुर्बल हो गए थे। अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए उन्होंने पहले कुछ दिन 'सिंहगढ़ सेनीटोरियम' में बिताए, दिसंबर में मद्रास में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल होने के बाद उन्होंने श्रीलंका का दौरा किया। अपने आंदोलन को जहाँ छोड़ा था, वहीं से उसे फिर शुरू करने और आगे बढ़ाने में अगले दो वर्ष उन्होंने लगाए। उनके बहुत से काम उनके जेल जाने के कारण रुक गए थे। रायगढ़ किले में सन् 1900 ई. में एक विशाल 'शिवाजी महोत्सव' आयोजित किया गया। शिवाजी की स्मृति को स्थायी बनाने के लिए एक स्मारक बनाने की दिशा में भी कुछ काम आगे बढ़ा। लेकिन किसी भी अन्य कार्य से अधिक महत्त्वपूर्ण उनका वेदों की प्राचीनता-संबंधी कार्य था।

द आर्कटिक होम इन दि वेदाज

'ओरियॉन' पर पुस्तक के प्रकाशन के बाद उन्हें यह कार्य करने की जरूरत गहराई से महसूस हो रही थी। अपनी नई पुस्तक, द आर्कटिक होम इन दि वेदाज की प्रस्तावना में उन्होंने लिखा कि पिछले दस वर्षों के दौरान मेरा काफी समय उन प्रमाणों की खोज में लगा है, जो वेदों पर छाए कुहरे को उठा देंगे और तब उन पर गहरी दृष्टि डाली जा सकेगी। इसके बाद उन्होंने 'ओरियॉन' में व्यक्त विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए काम शुरू किया। मनुष्य जाति के आदिकालीन इतिहास से संबंधित भूविज्ञान और पुरातत्त्व की नवीनतम खोजों के अध्ययन के बाद वह एक अलग तरह की खोज की ओर धीरे-धीरे बढ़े और अंततः इस नतीजे पर पहुँचे कि वैदिक ऋषियों के पूर्वज हिमानी युग में उत्तर ध्रुवीय क्षेत्र में रहते थे। जेल में अपने जबरन अवकाश का उपयोग उन्होंने ऋग्वेद के संपूर्ण संस्करण जिसे उनके पास 'प्रोफेसर मैक्समूलर' ने भेजा था, की सहायता से अपने इन सिद्धान्तों को विकसित करने में किया।

नई पुस्तक का प्रकाशन

नई पुस्तक की पहली पांडुलिपि सिंहगढ़ में सन् 1898 ई. के अंत में लिखी गई, लेकिन तिलक ने जानबूझकर इसका प्रकाशन देर से किया। वे इस विषय में भारत के संस्कृत विद्वानों से विचार-विमर्श करना चाहते थे, क्योंकि

खोज अनेक दिशाओं में मुड़ रही थी। पुस्तक मार्च, सन् 1903 ई. में प्रकाशित की गई। सर्वत्र इसका स्वागत हुआ। उसके बारे में केवल एक विद्वान् 'बोस्टन विश्वविद्यालय' के अध्यक्ष और 'पेराडाइज फाउंड' के लेखक 'डॉ. एफ. डब्ल्यू. वारेन' के विचारों को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है, जो सितंबर सन् 1905 ई. की ओपन कोर्ट मैगजीन, शिकागो में प्रकाशित हुए थे।

डॉ. एफ. डब्ल्यू. वारेन के तिलक के प्रति विचार

''यहाँ केवल यह कहना पर्याप्त है कि वर्तमान लेखक ने अपनी राय के समर्थन में जो प्रमाण दिए हैं, वे इसके पहले किसी भारतीय या ईरानी विद्वान् द्वारा किसी परिकल्पना को सिद्ध करने के लिए दिए गए प्रमाणों से अधिक निर्णायक हैं। विषय की विवेचना करते हुए शुरू से लेकर आखिर तक पूरी स्पष्टवादिता और ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक खोज के तौर-तरीकों का पूरा सम्मान किया गया है। शुरू में मैं यह सोचता था कि इसके सच होने की संभावना बहुत कम है, लेकिन इसके पक्ष में जो प्रमाण एकत्र किए गए उनके कारण मुझे इसे स्वीकार करना पड़ा।

बीस वर्ष पहले मानव जाति के मूल स्थान संबंधी शोध करते समय मैंने सभी वैदिक और अवेस्ता-संबंधी रचनाएँ उस समय तक उपलब्ध उनके अनुवाद पढ़े और मैं उसी नतीजे पर पहुँचा जिस पर तिलक पहुँचे हैं। मेरे तर्क में प्राचीन ईरानियों के पौराणिक भूगोल और ब्रह्मांड-वर्णन के कुछ बिंदुओं पर नई रोशनी डाली गई थी। मेरे इस कार्य को ईरानी विषयों के आचार्य प्रोफेसर स्पीगेल ने स्वीकार किया। मैंने ठहरे हुए जल और अन्य वैदिक मिथकों की भी नई व्याख्या की। अत: मेरे लिए यह विशेष रूप से प्रसन्नता का विषय था कि तिलक भी लगभग उन्हीं मुख्य निष्कर्षों पर और अनेक गौण निष्कर्षों पर पहुँचे, जिन पर मैं पहुँचा था। उल्लेखनीय है कि तिलक अपनी खोज के लिए इन ग्रंथों के अनुवाद पर नहीं बल्कि उनके मूलपाठ पर निर्भर थे। सुदूर देश में रहने वाले इस व्यक्ति को मैं सार्वजनिक रूप से धन्यवाद देना चाहता हूँ, जिसने इस क्षेत्र में मेरे कार्य की सराहना करने की उदारता प्रदर्शित की। इस क्षेत्र में उनका काम ठोस, मोहक और अधिक आधिकारिक है। जो कोई भी मनोयोग के साथ इस पुस्तक को और जॉन ओ. नील की पुस्तक, दि नाइट ऑफ गाड्स को पढ़ेगा, वह कभी भी यह सवाल नहीं पूछेगा कि आर्यों का आदि देश कहाँ था।'

ताई महाराज का मुकदमा

जब तिलक की नई पुस्तक जनता के लिए जारी हुई, तब 'बंबई सरकार' के सुझाव पर वे एक और मुकदमे ताई महाराज केस में फँसे हुए थे। इस केस ने सन् 1901 ई. से तिलक का सारा समय ले लिया था। इसके कारण उन्हें न केवल यंत्रणादायक शारीरिक कष्ट, बल्कि मानसिक उत्पीड़न भी भोगना पड़ा और हजारों रुपये की हानि भी उठानी पड़ी।

इस मुकदमे की संक्षिप्त कहानी इस प्रकार है-पूना के एक प्रथम श्रेणी के सरदार श्री बाबा महाराज ने तिलक को अपने एस्टेट के चार ट्रस्टियों में से मुख्य ट्रस्टी बना रखा था। राजद्रोह के मुकदमे में उच्च न्यायालय द्वारा तिलक को जमानत पर छोड़े जाने के कुछ दिन बाद, 7 अगस्त सन् 1897 ई. को बाबा महाराज का स्वर्गवास हो गया। दुर्भाग्य कभी अकेले नहीं आता। विचित्र संयोग यह हुआ कि जिस दिन अपनी रिहाई के बाद तिलक बंबई से लौटे, मृत्यु शैय्या पर लेटे महाराज ने उन्हें बुलवाया और इस बात पर जोर दिया कि वे उनकी वसीयत के निष्पादक बनें। तिलक इस भारी जिम्मेदारी को लेने के लिए तैयार हो गए। उन्हें आशा थी कि उनके ऐसा करने से महाराज के परिवार को ऋणमुक्त किया जा सकेगा और ऋणमुक्त एस्टेट उत्तराधिकारी को सौंपा जा सकेगा। उसके बाद तिलक ने यह काम हाथ में लेने पर पाया कि दो मामलों की ओर तत्काल ध्यान देना आवश्यक है। पहला था ऋणों की समाप्ति और खर्च में कमी तथा दूसरा था ताई महाराज के लिए गोद लेने की व्यवस्था। क्योंकि उस समय फैल रहे प्लेग के कारण शहर में मानव जीवन खतरे में था, और 'ताई महाराज' एकमात्र ऐसी महिला थीं जो अपने पति के लिए लड़का गोद ले सकती थीं।

ऋणों की समाप्ति का अर्थ था खर्चों में कमी और बचत। ताई महाराज को यह पसंद न था। विधवा युवती तिलक के नेक इरादों से परिचित थीं। उन्होंने शुरू में 'एस्टेट' के नाममात्र के प्रतिनिधि के रूप में अपनी स्थिति को सहर्ष स्वीकार किया। इस्टेट का वास्तविक और प्रभावी स्वामित्व तो उनके पति द्वारा वसीयत में नियुक्त ट्रस्टियों के पास था। लेकिन ताई महाराज शीघ्र ही अपने प्रिय प्रभारी के प्रभाव में आ गईं। उसने उन्हें सिखाया कि वे 'एस्टेट' की न्यायपूर्ण अधिकारी हैं और एक बालक को गोद लेकर उन्हें उनके अधिकारों से वंचित किया जा रहा है। कुछ लुटेरे भी वहाँ थे, जो उक्त विधवा को मधुर

बातों से बरगलाकर उनके अत्यंत प्रिय हो गए थे। वे भविष्य में एक पेंशनर और एस्टेट पर आश्रित के रूप में उनकी भावी हालत के कमजोर पहलुओं का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करते थे। उनका यह भी कहना था कि अगर वे दृढ़ इच्छाशक्ति दिखाएं तो हमेशा के लिए आजाद हो सकती हैं, उस लड़के के साथ ऐसी व्यवस्था कर सकती हैं कि वह हमेशा आज्ञाकारी बालक की तरह आचरण करे और जायदाद का प्रबंध इस प्रकार से करे कि भविष्य में उनका और उनके प्रिय एवं सक्रिय सलाहाकारों का कल्याण होता रहें। गरीबी में जी रहे अनेक लड़के इस हालत में भी ऐसी जायदाद के लिए गोद लिये जाने लिए तैयार हो जाएँगे।

उनके भाई इस तरह की स्थिति में अत्यधिक प्रसन्न होंगे क्योंकि उनके पूर्वजों की संपत्ति का कम से कम एक वारिस कम हो जाएगा। इस अभागी महिला के मामले में भी ऐसा ही हुआ। खर्च में कमी से वह चिंतित हुईं, और नागपुरकर और कोल्हापुर के पंडित महाराज के नेतृत्व में सिद्वांतहीन (बेईमान) पार्टी के षड़यंत्र का शिकार बन गईं। इन लोगों ने यह सांठ-गांठ रची कि ताई महाराज पंडित के भाई बाला महाराज को गोद ले लें। लेकिन न तो ताई महाराज को और न नागपुरकर को यह हिम्मत थी कि वे खुलकर ट्रस्टियों को विरोध करें। ताई महाराज को इस बात का पक्का विश्वास था कि ट्रस्टी कोई ऐसा काम नहीं करेंगे जिससे उनको निजी लाभ होगा और या उनके पति द्वारा चलाए गए भलाई के कार्यों में बाधा पहुँचे। इतना स्पष्ट है कि 18 जून, सन् 1901 ई. तक उनके बीच कोई मतभेद नहीं था। इसी दिन ये सब लोग औरंगाबाद के लिए रवाना हुए, जहाँ अंततः महाराज परिवार की बबरे शाखा के एक लड़के को ताई महाराज ने गोद लिया।

औरंगाबाद से लौटने के बाद ताई महाराज बुरे सलाहकारों के प्रभाव में आ गईं। इन लोगों ने उन्हें इस बात के लिए तैयार कर लिया कि वे अपने पति की वसीयत के प्रमाणपत्र को खारिज करवा दें। यह इस आशा में किया गया कि वे स्वतंत्र और अपनी मनमर्जी की मालकिन हो जाएँगी। यह आवेदन पूना जिला के जज श्री एस्टन को 29 जुलाई, सन् 1901 ई. को दिया गया।

इस आवेदन पर कार्रवाई उस तारीख से 3 अप्रैल, 1902 तक चली। इस अवधि में अदालत की कुछ 344 बैठकें हुई, इनमें से 14 में तिलक से जिरह की गई। यह कार्य श्री एस्टन और ताई महाराज के वकीलों ने मिलकर किया। इस कार्रवाई में देखने योग्य मुख्य बात यह है कि यद्यपि इसमें औरंगाबाद में

दत्तक-ग्रहण कोई मुद्दा नहीं था, श्री एस्टन ने उसे निर्णय करने के लिए मुख्य मुद्दा बना दिया। तिलक द्वारा चुनौती दिए जाने और विरोध प्रकट किए जाने के बावजूद श्री एस्टन ने गवाही संबंधी कानून और प्रासंगिकता के आधार पर ताई महाराज की ओर से ढेरों दस्तावेजी और मौखिक गवाही बाद में शामिल कर दीं। वास्तव में केवल यह मुद्दा उठाया गया था कि क्या तिलक और अन्य लोगों को जारी किया गया वसीयत का प्रमाणपत्र बेकार और निष्प्रभावी हो गया है। क्या वसीयत को कार्यान्वित करने वाले लोग ट्रस्ट में रहने के अयोग्य हो गए है, जिसके कारण ट्रस्ट में नए लोगों की नियुक्ति आवश्यक हो गई है। श्री एस्टन ने इन प्रश्नों का उत्तर हाँ में दिया। वह इस नतीजे पर पहुँचे कि औरंगाबाद का दत्तक ग्रहण सिद्ध नहीं हुआ है। उन्होंने वसीयत का प्रमाणपत्र रद्द कर दिया और यह आदेश दिया कि मुकदमे का खर्च तिलक और श्री खापर्डे को उठाना पड़ेगा। फैसला लम्बा था। इसके 90 प्रतिशत भाग में औरंगाबाद का दत्तक-ग्रहण और पूना में ताई महाराज के साथ कथित दुर्व्यवहार आदि नितांत अप्रासंगिक तथ्यों की चर्चा है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि तिलक ने इन्हें 'अप्रासंगिक' कह कर इनका विरोध किया था और उन्होंने इनसे संबंधित कागज का एक टुकड़ा तक गवाही के लिए पेश नहीं किया सिवाय उन उत्तरों के जो उन्हें मजबूरी में देने पड़े। इस बारे में उन्होंने अपने वकील को निर्देश दिया था कि वह इस विषय में उनके साथ कठोरता से प्रश्न पूछे।

एस्टन की वकालत

यह स्पष्ट है कि इस तरह श्री एस्टन के सामने इन मामलों का केवल एक तरफा विवरण था तथापि, उन्हें निर्णय लेने में कोई हिचकिचाहट नहीं हुई और उन्होंने ऐसी आलोचना की मानो उनके सामने तिलक के पक्ष की भी सभी गवाही थी। मध्य युग में स्पेन में धार्मिक अपराधों के लिए दण्ड देने वाले न्यायालय की तरह श्री एस्टन काम कर रहे थे और स्वयं तिलक के विरुद्ध शैतान के वकील की तरह आचरण कर रहे थे।

अपनी जाँच के परिणामस्वरूप श्री एस्टन ने पाया कि न केवल तिलक को जारी वसीयत का प्रमाणपत्र रद्द किया जाना चाहिए, बल्कि उनके द्वारा किए गए अनेक अपराधों के लिए उन पर मुकदमा भी चलाया जाना चाहिए। श्री एस्टन ने अपनी अदालत की अनुचित, गैर-कानूनी और कष्टदायी कार्रवाई की चरम परिणति में तिलक को सिटी मजिस्ट्रेट के सुपुर्द कर दिया।

सात आपराधिक आरोप

तिलक के विरुद्ध तैयार सात आपराधिक आरोप इस प्रकार थे–

1. नागपुरकर के विरुद्ध 'अमानत में खयानत' की झूठी शिकायत करना।
2. औरंगाबाद यात्रा के हिसाब-किताब में घटा-बढ़ा करके झूठी गवाही तैयार करना।
3. उपर्युक्त के संबंध में जालसाजी
4. ऐसी गवाही जिसके बारे में पता है कि वह झूठी या जाली है दत्तक-ग्रेहण पर ताई महाराज के पृष्ठांकन को सत्यापित करने के लिए सच्ची बताकर इस्तेमाल करना या उसे भ्रष्ट तरीके से इस्तेमाल करना।
5. उक्त दत्तक-ग्रहणपत्र को बेईमानी में सच्चा और सही मानना।
6. ताई महाराज के दस्तखतों के उपरांत दत्तक पुत्र संबंध दस्तावेज का इस्तेमाल कपटपूर्वक सही दस्तावेज के रूप में करना।
7. जानबूझ कर दस वाक्यों में झूठी गवाही देना, जिन्हें तीन उप-शीर्षकों के अंतर्गत विभक्त किया गया था।
   - औरंगाबाद में दत्तक-ग्रहण की घटना।
   - पूना की हवेली में ताई महाराज को बंद रखना।
   - उसी हवेली में बाबा महाराज के विरुद्ध बलप्रयोग।

इन आरोपों पर तिलक को अदालत के सुपुर्द करने से श्री एस्टन संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने सरकार को सुझाव दिया कि इस मामले से उत्पन्न कुछ अन्य सहायक आरोपों जैसे कि पुलिस को गलत सूचना देना, धोखाधड़ी करना, गैर-कानूनी सभा करना आदि की जाँच कराई जाएँ।

उच्च न्यायालय में अपील

उच्च न्यायालय में बार-बार अपील की गई। अगर उच्च न्यायालय समय पर एक समस्या का न्यायपूर्ण समाधान कर देता तो उसे बाद में मुकदमों से नहीं निपटना पड़ता, लेकिन उच्च न्यायालय ने वसीयत के प्रमाणपत्र को निरस्त करने के श्री एस्टन के निर्णय को पलट दिया मगर तिलक के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाहियों को जारी रहने दिया। जहाँ तक झूठी शिकायत का आरोप था, श्री बीमैन ने तिलक के विरुद्ध मुकदमे की मंजूरी को अनुचित पाया। लेकिन एक लम्बे मुकदमे के बाद स्पेशल मजिस्ट्रेट श्री क्लेमेंट ने तिलक को शपथ ले झूठी

गवाही देने का दोषी पाया और उन्हें अठारह महीने की कठोर कैद की सजा सुनाई। तथापि, मजिस्ट्रेट ने यह स्वीकार किया कि तिलक स्वार्थी उद्देश्यों से प्रेरित नहीं थे, लेकिन उसकी नजर में वे एक उन्मत्त व्यक्ति थे, और उनका दिमाग दुराग्रह और सत्ता के प्यार के कब्जे में था। लेकिन विपत्ति के बादल छंट गए। सेशन जज श्री लूकस ने शीघ्र ही एक अपील में सजा को घटा कर छह महीने कर दिया और तिलक के प्रयोजनों और इरादों को पूरी तौर पर उचित ठहराया। सजा के लिए श्री लूकस का निर्णय अस्थिर और समर्थन योग्य नहीं था और 4 मार्च, सन् 1904 ई. को उच्च न्यायालय ने उसे निरस्त कर दिया। शपथ लेकर गवाही देने का आरोप सिद्ध नहीं पाया गया, फलतः सरकार ने तिलक के विरुद्ध लगाए गए सभी आरोप वापस ले लिये। इस प्रकार तिलक इस अग्नि परीक्षा से कुंदन बन कर निकले।

सर लॉलेंस जेनकिंस का निर्णय सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए गोद लेने के मुकदमे पर निर्णय था। श्री एस्टन का सहारा लेकर ताई महाराज की पार्टी द्वारा तिलक के विरुद्ध जो मामले बनाए गए, वे ताश के किले की भाँति ढह गए। विवाद में बनाए गए तथ्यों के आधार पर तिलक के विरुद्ध शपथ ले कर झूठी गवाही देने का आरोप लगाया गया था। लेकिन जब मुकदमा उच्च न्यायालय में आगे बढ़ा तो षड्यंत्रकारियों ने पाया कि तिलक के लिए बनाए गए गड्डे में वे स्वयं गिर गए हैं। इस केस ने 1901 से 1904 तक तिलक का पूरा समय लिया। इन कार्यवाहियों के लिए अदालत की 160 बैठकें हुईं। अदालत की बैठकों के दौरान अक्सर तिलक को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होना पड़ा। मुकदमे को संगीन बनाने वाली बात यह थी कि तिलक पर मुकदमा चलाकर बंबई सरकार अप्रत्यक्ष रूप से उनके विरुद्ध अपनी शत्रुता पूरी कर रही थी। वे दत्तक-ग्रहण के आधार पर ताई महाराज की लड़ाई लड़ रहे थे। यह सरकारी शत्रुता और एक औरत के अपने निजी हित का अमंगलकारी संयोग था।

हम यह नहीं जानते कि वास्तविकता क्या थी। क्या ताई महाराज सरकार के हाथों में कठपुतली थी या सरकार उसके हाथों में कठपुतली थी। संभावना यह है कि इनमें से प्रत्येक ने दूसरे का कठपुतली की तरह इस्तेमाल किया और एक सीमा तक अपना भी कठपुतली की तरह इस्तेमाल होने दिया। इस प्रसंग में दुःख की बात यह है कि सरकार अपनी गरिमा को भूल गई और उसने स्वयं को एक अशिक्षित, स्वार्थी और विवेकरहित औरत के स्तर पर खड़ा कर दिया।

इस सबके परिणामस्वरूप इस मुकदमे में जनता की दिलचस्पी बहुत अधिक बढ़ गई थी, यद्यपि दिलचस्पी का मुख्य केंद्र तिलक बने रहें।

इस पूरे दौर में तिलक अपना मानसिक संतुलन बनाए रख कर बिना किसी बाधा आदि के वे किस प्रकार अपना सामान्य काम-काज कर सके। उन्होंने कैसे प्रसन्नता का भाव बनाए रखा और अपने कानूनी सलाहकारों के लिए बौद्धिक प्रेरणा के स्रोत बने। गहरी चिंताओं, जिसे उनके ज्येष्ठ पुत्र की मौत ने और उग्र कर दिया था। किस प्रकार वे अपने मस्तिष्क को मुक्त और अलग-थलग रख सकें ताकि अपने प्रिय साहित्यिक अध्ययन के कार्य को जारी रख सकें तथा अपनी पुस्तक 'दि आर्कटिक होम इन वेदाज' को प्रकाशित कर सके- ये सभी शोध के विषय हैं।

योग्य नेता

तिलक बाद में पूना की मूल अधिकार क्षेत्र की अदालत में दत्तक-ग्रहण का मुकदमा जीत गए। इससे उनके शब्द और कार्य पूरी तरह उचित प्रमाणित हो गए। अगले वर्ष तिलक ने अपने निजी मामलों, विशेषकर समाचार-पत्र और छापेखाने से संबंधित कार्यों को संगठित एवं ठीक-ठाक किया। 'केसरी' की प्रसार संख्या में अत्यधिक बढ़ोतरी हो गई थी। अत: उसकी छपाई के लिए एक बड़ी मशीन का आयात करना जरूरी हो गया था। महाराजा गायकवाड़ ने 'पूना का गायकवाड़ बाड़ा' उन्हें उचित दाम पर उनके हाथों बेच दिया। इससे तिलक जरूरत के मुताबिक अपने समाचार-पत्र और उसके छापेखाने को स्थायी जगह दे सके। अपनी बहुमुखी प्रतिभा का उपयोग उन्होंने मराठी भाषा के लिए नई किस्म के टाइप के विकास के लिए भी किया। वे इस टाईप का इस्तेमाल मराठी लाइनों टाइप मशीन में करना चाहते थे। इस कार्य में उन्हें उल्लेखनीय सफलता मिली। उनके नए टाइप की डिजाइन को इंग्लैंड में लाइनों टाइप निर्माताओं ने मंजूर कर लिया था, लेकिन मराठी टाइप से युक्त लाइनों टाइप मशीन के आयात में देरी हो गई। दरअसल देश में बहुत ही कम छापेखाने ऐसे थे, जो देवनागरी लाइनों टाइप मशीनों का खर्च उठा पाते थे। इसलिए इंग्लैंड के लाइनों टाइप निर्माताओं को इस बात के लिए तैयार नहीं किया जा सका कि वे अपनी पूँजी एक नई किस्म के टाइप वाली मशीन में फँसा दें।

तिलक सन् 1905 ई. से सक्रिय राजनीतिक आंदोलन में पूरी तरह कूद गए थे। बंगाल के विभाजन के कारण देश में राष्ट्रवादी भावनाओं का ज्वार

आया। इसी के साथ स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा आदि स्वराज्य जैसे कार्यक्रम शुरू किए गए। बनारस कांग्रेस ने इन भावनाओं को संगठित और शक्तिशाली ढंग से प्रकट किया। यह बात स्वीकार की जाने लगी कि तिलक राष्ट्रवादियों की पार्टी (नेशनलिस्ट पार्टी) के सबसे योग्य नेता हैं और उन्हीं के कारण 'बंगाल के विभाजन' के बाद पश्चिमी भारत में राष्ट्रवाद की मशाल जलती रही है।

तिलक का दृष्टिकोण

अगले वर्ष निंदनीय हिन्दू-मुस्लिम दंगे के बाद अनेक नए प्रश्न सामने आए। उनसे राजनीतिक वातावरण में जबरदस्त परिवर्तन आया। तिलक इन नई चुनौतियों का सामना करने के लिए सबसे आगे थे। उन्होंने 'एंग्लो इंडियन' अधिकारियों की नीतियों का जबरदस्त विरोध किया। इन अधिकारियों ने भी अनुभव किया कि आम जनता पर उनका कितना प्रभाव है। सांप्रदायिक दंगों के बारे में तिलक का दृष्टिकोण चाहे सही या गलत हो, स्पष्ट और निर्भ्रांत था। उनका कहना था कि हिन्दू-मुस्लिम दंगों का कारण कुछ अदूरदर्शी एंग्लो इंडियन अधिकारियों द्वारा गुप्त रूप से इन दोनों संप्रदायों के लोगों को भड़काना है। उनकी राय में इस शरारत की जड़ लॉर्ड डफरिन द्वारा शुरू की गई फूट डालो और राज करो की नीति है। इन दंगों को नियंत्रित करने का एकमात्र तरीका यह है कि सरकारी अधिकारी हिन्दू-मुसलमानों के बीच कड़ाई के साथ निष्पक्ष आचरण करें। उन्होंने कुछ वर्ग के अधिकारियों के विरुद्ध पक्षपात का प्रत्यक्ष आरोप लगाया जिसे स्वभावत: इन अधिकारियों ने पसंद नहीं किया। गवर्नर लॉर्ड हैरिस और उनके सचिव श्री ली वार्नर, दोनों तिलक के इन विचारों से नाराज थे, लेकिन तिलक सरकारी नाराजगी से डरने और दबने वाले व्यक्ति नहीं थे। अपने पत्र 'केसरी' के जरिए आम जनता पर उनका व्यापक प्रभाव था और यही प्रभाव मुख्य रूप से जनता में एक नई भावना विकसित कर रहा था। शिक्षित लोगों में भी उनका प्रभाव बहुत था। वे दो बार 'स्थानीय विधान परिषद्' और बंबई विश्वविद्यालय के 'फेलो' निर्वाचित किए गए। सन् 1895 ई. में वे 'पूना नगरपालिका' के सर्वाधिक मतों से सदस्य निर्वाचित हुए। एक कुशल कार्यकर्ता के रूप में उन्हें सहयोगियों का आदर मिला।

सामाजिक और राजनीतिक दर्शन

अपनी पुरानी परंपरा और संस्थाओं के प्रति जनता में अब नई जागरूकता प्रकट हो रही थी। इसके सबसे स्पष्ट उदाहरण थे पुरानी धार्मिक आराधना, गणपति-पूजन और शिवाजी के जीवन से जुड़े प्रसंगों पर महोत्सवों का आयोजन। इन दोनों आंदोलनों के साथ तिलक का नाम घनिष्ठ रूप से जुड़ा है। तिलक का दृढ़ विश्वास था कि पुराने देवताओं और राष्ट्रीय नेताओं की स्वस्थ वंदना से लोगों में सच्ची राष्ट्रीयता और देशप्रेम की भावना विकसित होगी। विदेशी विचारों और प्रथाओं के अंधानुकरण से नई पीढ़ी में अधार्मिकता पैदा हो रही है और उसका विनाशक प्रभाव भारतीय युवकों के चरित्र पर पड़ रहा है। तिलक का विश्वास था कि अगर स्थिति को इसी प्रकार बिगड़ने दिया गया तो अंततः नैतिक दीवालिएपन की स्थिति आ जाएगी, जिससे कोई भी राष्ट्र उबर नहीं सकता। यह एक गंभीर समस्या थी और भारत सरकार तक ने उस समय इस ओर ध्यान दिया था। सरकार की नजर में इस बीमारी का इलाज भारतीय स्कूलों में नैतिक शिक्षा की पाठ्य-पुस्तकों की पढ़ाई शुरू करना था। तिलक ने सरकार के इस सुझाव की कठोर आलोचना 'मराठा' के अनेक अंकों में की। तिलक के विचार में, भारतीय युवकों को स्वावलंबी और अधिक ऊर्जावान बनाने के लिए उनको अधिक आत्म-सम्मान का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। यह तभी किया जा सकता है, जब उन्हें अपने धर्म और पूर्वजों का अधिक आदर करना सिखाया जाएँ। अत्यधिक और निरुद्देश्य आत्मआलोचना एक तपस्वी या दार्शनिक के लिए अच्छी हो सकती है, लेकिन व्यावहारिक जीवन में इससे प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। अतिरिक्त देशप्रेम के कारण कभी थोड़ी-बहुत अप्रिय स्थिति उत्पन्न हो सकती है, लेकिन इसके अच्छे नतीजे भी निकलते हैं, जबकि पूर्ण आत्मत्याग का नतीजा केवल आलस्य और मौत हो सकती है।

संक्षेप में, यही तिलक का सामाजिक और राजनीतिक दर्शन है। इस बारे में दो राय हो सकती है कि यह सही है या नहीं लेकिन कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता है कि उन्होंने इसका अनुसरण नहीं किया। तिलक पर अकसर सामाजिक सुधारों के मामले में ढोंग और अस्थिरता का आरोप लगाया गया है। वे अपनी ही तरह के व्यावहारिक समाज-सुधारक थे। उन्होंने अपनी लड़कियों को शिक्षा दी, शास्त्र सम्मत अधिकतम आयु होने तक उनका विवाह स्थगित

किया, जाति संबंधी प्रतिबंधों में छूट देने की अपील की और आमतौर पर समाज-सुधार आंदोलन का समर्थन किया। लेकिन इसके बावजूद उन्होंने समाज-सुधार पार्टी की आलोचना की। सतही स्तर पर निरीक्षण करने वालों को उनके व्यवहार में यह विरोधाभास नजर आता है, जबकि उनके विरोधी इसका कारण उनकी सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने की इच्छा बताते थे।

वास्तविकता यह है कि इस विषय में उनका आचरण उनके पक्के विश्वास का नतीजा था। वे समाज-सुधार चाहते थे- लेकिन उनको उन आदमियों और उनके तरीकों पर, जो समाज सुधार की आवाज उठा रहे थे, विश्वास नहीं था। उनकी राय में, पिछली पीढ़ी के समाज-सुधारकों के पास ना तो वह योग्यता थी और न वे नैतिक गुण थे, जो सुधार आंदोलन की सफलता के लिए आवश्यक है। अतः उनकी आलोचना आम तौर पर उन व्यक्तियों के विरुद्ध होती थी, उन उद्देश्यों के विरुद्ध नहीं होती थी जिसके लिए ये लोग कार्य कर रहे थे। वास्तव में राजनीतिक और सामाजिक प्रश्नों की आलोचना के बारे में उनका सिद्धांत यही था। वे किसी सरकारी कदम का अनुमोदन कर सकते थे लेकिन उस उपाय को लागू करने वाले अधिकारियों की आलोचना करते थे। इसी प्रकार वे किसी सुधार को लागू करने के पक्ष में होते थे लेकिन वे उन लोगों की आलोचना करते थे, जो इस सुधार के मठाधीश होने का दावा करते थे।

घटना-प्रधान जीवन

तिलक का जीवन घटना-प्रधान रहा है। वे मौलिक विचारों के व्यक्ति थे। वह संघर्षशील और परिश्रमशील थे। वे आसानी से कुछ भी ठुकरा सकते थे। वह तब विशेष प्रसन्नता का अनुभव करते थे, जब उन्हें कठिन चुनौतियों का सामना करना पड़ता था। उनके अधिकांश कार्य परोपकार की भावना से भरे होते थे। उनकी एकमात्र इच्छा थी लोगों की भलाई के लिए कार्य करना और यह बात स्वीकार की जाती है कि वे अपनी इस इच्छा को काफी हद तक पूरी करने में सफल रहे थे। उनमें योग्यता, अध्यवसाय, उद्यमशीलता और देशप्रेम का ऐसा अनूठा संगम था कि अंग्रेज सरकार उनसे हमेशा चौकस रहती थी। तिलक के अनेक मित्र उनके प्रति शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार के रवैये को संभवतः यह कह कर स्वीकार करेंगे कि यह उनके वास्तविक मूल्यों का जीता-जागता प्रमाणपत्र है।

मृत्यु

सन् 1919 ई. में कांग्रेस की अमृतसर बैठक में हिस्सा लेने के लिए स्वदेश लौटने के समय तक तिलक इतने नरम हो गए थे कि उन्होंने 'मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों' के जरिये स्थापित 'लेजिस्लेटिव काउंसिल' (विधायी परिषदों) के चुनाव के बहिष्कार की गाँधी की नीति का विरोध नहीं किया। इसके बजाय तिलक ने क्षेत्रीय सरकारों में कुछ हद तक भारतीयों की भागीदारी की शुरुआत करने वाले सुधारों को लागू करने के लिए प्रतिनिधियों को सलाह दी कि वे उनके 'प्रत्युत्तरपूर्ण सहयोग' की नीति का पालन करें। लेकिन नए सुधारों को निर्णायक दिशा देने से पहले ही 1 अगस्त, सन् 1920 ई. में बंबई में तिलक की मृत्यु हो गई। उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए महात्मा गाँधी ने उन्हें आधुनिक भारत का निर्माता और नेहरू जी ने भारतीय क्रांति के जनक की उपाधि दी।

10

सत्यदेव विद्यालंकार

सत्यदेव विद्यालंकार एक प्रसिद्ध पत्रकार, लेखक एवं स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने स्वतंत्रता अंदोलनों में भाग लेने के कारण जेल यातनायें भोगीं। सत्यदेव विद्यालंकार राष्ट्रवादी पत्रकार थे। उनकी पत्रकारिता में राष्ट्रीय भावना सर्वोपरि थी। प्रसिद्ध पत्रकार और लेखक सत्यदेव विद्यालंकार का जन्म पंजाब की नाभा रियासत में अक्टूबर, 1897 ई. को एक खत्री परिवार में हुआ था। उनकी शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई थी। उन्होंने विद्यालंकार की उपाधि पाई। गुरुकुल में ही उनके ऊपर महर्षि दयानंद के विचारों का प्रभाव पड़ा और वे आर्य समाजी बन गए। विद्यार्थी जीवन में ही उनकी प्रवृत्ति पत्रकारिता की ओर हो गयी थी। 1919 में इंद्र विद्यावाचस्पति के साथ उन्होंने 'विजय' नामक पत्र निकाला जो बाद में 'वीर अर्जुन' हो गया। उसके बाद समय-समय पर उन्होंने पत्रों का संपादन किया।

राष्ट्रवादी पत्रकार

सत्यदेव विद्यालंकार एक राष्ट्रवादी पत्रकार थे। उनकी पत्रकारिता में राष्ट्रीय भावना सर्वोपरि थी। 1921 में 'राजस्थान केसरी' नाम के एक लेख को आपत्तिजनक बताकर सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया था। 1930 के नमक सत्याग्रह और 1932 के सविनय अवज्ञा आंदोलन में भी वे जेल गए। इस प्रकार उनका एक पैर किसी पत्र के कार्यालय में रहा तो दूसरा पैर जेल में रहा।

सम्पादन कार्य

सत्यदेव विद्यालंकार ने समय-समय पर पत्रों का सम्पादन कार्य किया है। उन्होंने 'राजस्थान केसरी', 'मारवाड़ी', विश्वमित्र', 'नव भारत', 'अमर भारत', 'हिंदुस्तान', 'नवयुग', 'राजहंस', 'श्रद्धा' आदि पत्रों का संपादन किया है।

लेखन कार्य

सत्यदेव विद्यालंकार ने एक लेखक के रूप में भी कार्य किया है। उनकी अन्य प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं–

- 'गांधी जी का मुकदमा' (लेखक के रूप में उनकी पहली पुस्तक थी।),
- दयानंद दर्शन,
- स्वामी श्रद्धानंद,
- आर्य सत्याग्रह,
- परदा,
- मध्य भारत,
- नवनिर्माण की पुकार,
- करो या मरो,
- यूरोप में आजादहिन्द,
- लालकिले में,
- जय हिन्द,
- राष्ट्र धर्म,
- पंजाब की चिनगारी।

मृत्यु

प्रसिद्ध पत्रकार और लेखक सत्यदेव विद्यालंकार की 1954 में नेत्रों की ज्योति नहीं रही और 1965 में उनका निधन हो गया।

11

श्री कृष्णदत्त पालीवाल

श्री कृष्णदत्त पालीवाल एक प्रसिद्ध पत्रकार और स्वतंत्रता सेनानी थे। संविधान सभा और प्रदेश की विधानसभा की सदस्यता के साथ-साथ उन्होंने उत्तर प्रदेश सरकार में मंत्री पद भी संभाला था।

परिचय

पत्रकार और स्वतंत्रता सेनानी श्री कृष्णदत्त पालीवाल का जन्म 1895 ई. में आगरा जिले के एक गांव में हुआ था। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम. ए. की परीक्षा पास की। वे कानून की पढ़ाई कर रहे थे कि उसी समय असहयोग आंदोलन आरंभ हो गया और पालीवाल उसमें सम्मिलित हो गए। अर्थशास्त्र के अध्ययन के साथ-साथ उन्होंने भारतीय धार्मिक ग्रंथों का भी गहन अध्ययन किया था। वे लोकमान्य तिलक को अपना गुरु मानते थे। स्वामी विवेकानंद के विचारों से भी वह प्रभावित थे। बाद में गांधी जी उनके प्रेरणा स्रोत बने रहे। पालीवाल धार्मिक संकीर्णताओं के विरोधी थे। उन्होंने स्वयं एक मुस्लिम विधवा से विवाह किया था।

पत्रकारिता

पालीवाल ने पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण काम किया था। कुछ समय गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' में काम करने के बाद उन्होंने 1925 में आगरा से 'सैनिक' नाम का साप्ताहिक पत्र निकाला। 'प्रताप' की भांति 'सैनिक' भी राष्ट्रीय आंदोलन का ध्वजवाहक था। पालीवाल जी की लेखनी आंदोलनों में

आग उगलती थी। इसलिए अपने जीवन काल में 'सैनिक' पर प्रतिबंध लगते रहे। वह बंद होता और निकलता रहा।

गतिविधियां

पालीवाल जी की क्रांतिकारियों के प्रति सहानुभूति थी। वे 'मैनपुरी षड्यंत्र' में गिरफ्तार भी हुए थे, किंतु अभियोग सिद्ध ना होने पर रिहा कर दिये गए। उनकी गणना उत्तर प्रदेश के चोटी के कांग्रेसजनों में होती थी। वे प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष भी रहे। गांधी जी ने 1940 में उन्हें सत्याग्रह के लिए पूरे प्रदेश का 'डिक्टेटर' नियुक्त किया था। सरकार ने उनको तत्काल गिरफ्तार कर लिया और 1945 में ही वे जेल से बाहर आ सके। 1946 में वे केंद्रीय असेंबली के सदस्य चुने गए। उन्होंने संविधान सभा और प्रदेश की विधानसभा की सदस्यता के साथ-साथ उत्तर प्रदेश की सरकार में मंत्री पद भी संभाला था।

मृत्यु

पत्रकार और स्वतंत्रता सेनानी श्री कृष्णदत्त पालीवाल का 1968 में देहांत हो गया।

12

शिशिर कुमार घोष

शिशिर कुमार घोष प्रसिद्ध एवं निर्भीक पत्रकार के साथ-साथ धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे। पाश्चात्य शिक्षा के समर्थक होते हुए भी उनका मानना था कि शिक्षा अपनी मातृभाषा में ही होनी चाहिए।

परिचय

प्रसिद्ध पत्रकार शिशिर कुमार घोष का जन्म 1840 ई. में पूर्वी बंगाल के जैसोर जिले में हुआ था। आरंभिक शिक्षा के बाद वे आगे की पढ़ाई के लिए कोलकाता गए। वहां बंकिम चंद्र चटर्जी भी उनके सहपाठी थे। शिशिर कुमार घोष का विद्यार्थी जीवन में ही 'हिंदू पैट्रियट' पत्र के संपादक हरिश चंद्र मुखर्जी से संपर्क हो गया। मुखर्जी निलहे गोरों के अत्याचारों के विरुद्ध आंदोलन चला रहे थे। कुमार उस आंदोलन में सम्मिलित हो गए। वे उदार विचारों के व्यक्ति थे। उन्होंने किसानों के पक्ष में ऐसा वातावरण बनाया कि सरकार को उनकी दशा का पता लगाने के लिए जांच कमीशन नियुक्त करना पड़ा।

निडर पत्रकार

शिशिर कुमार घोष एक निडर पत्रकार थे। वे विदेशी सरकार के कामों की आलोचना करने में संकोच नहीं करते थे, जो उस समय की परिस्थितियों में साधारण बात नहीं थी। पिता की मृत्यु के बाद घोष भाइयों ने, जिनमें वसंत कुमार घोष, शिशिर कुमार घोष, मोतीलाल घोष प्रमुख थे। उन्होंने अपने गांव से अपनी माता अमृतमयी देवी के नाम पर 'अमृत प्रवाहिनी' नाम का पत्र

निकाला, लेकिन यह पत्र अधिक दिन नहीं चला। शिशिर कुमार कुछ दिन अध्यापक रहने के बाद फिर पत्रकारिता की ओर मुड़े। उन्होंने 20 फरवरी, 1868 को बांग्ला भाषा में 'अमृत बाजार पत्रिका' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन अपने गांव से ही आरंभ किया था, जो शीघ्र ही द्विभाषी हो गया। घोष ने पत्र को छापने के लिए कोलकाता से 32 रुपये में प्रेस खरीद कर मंगाया। 1871 में वे 'अमृत बाजार पत्रिका' को गांव से कोलकाता ले आए। 1878 में जब सरकार ने भारतीय भाषाओं के पत्रों को नियंत्रित करने के लिए प्रेस एक्ट बनाया तो घोष बंधुओं ने अपने पत्र को रातोंरात अंग्रेजी साप्ताहिक का रूप दे दिया फिर 1891 में यह अंग्रेजी दैनिक बन गया। शिशिर कुमार घोष 1868 से 1893 तक इस पत्र के संपादक रहे।

सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्ति

शिशिर कुमार घोष की सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में रुचि थी। उन्होंने राजनीतिक उद्देश्य से इंडिया लीग, इंडियन एसोसिएशन जैसे कई संगठन बनाए, लेकिन कभी स्वयं आगे आने का प्रयत्न नहीं किया। ब्रिटिश संसद के सदस्यों को भारत की स्थिति से परिचित कराने के लिए इंग्लैंड में उन्होंने ' पॉलिटिकल एजेंसी' की स्थापना की, जिसको उनके पत्र 'अमृत बाजार पत्रिका,' की ओर से नियमित भुगतान किया जाता था। अपने जीवन के आरंभिक वर्षों में वह ब्रह्म समाज की ओर आकृष्ट हुए थे, किंतु बाद में उन्हें वैष्णव विचारधारा में ही संतोष मिला। शिक्षा के प्रसार के लिए घोष बंधुओं ने 'भ्रातृ समाज' की स्थापना की। इसके अंतर्गत लड़के और लड़कियों के स्कूल और रात्रि पाठशाला खोली गईं। शिशिर कुमार यद्यपि पश्चिमी शिक्षा के समर्थक थे, किंतु उनका कहना था शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिए।

मृत्यु

प्रसिद्ध पत्रकार शिशिर कुमार घोष का 1911 में निधन हो गया।

13

शिवराम महादेव परांजपे

शिवराम महादेव परांजपे मराठी भाषा के प्रसिद्ध पत्रकार, लेखक, राजनीतिक चिंतक एवं ओजस्वी वक्ता थे। उन्होंने 'काल' नामक साप्ताहिक द्वारा महाराष्ट्र में ब्रितानी शासन के विरुद्ध जनचेतना के निर्माण में सफलता पायी थी। शिवराम महादेव की लेखनी बड़ी ही प्रभावकारी थी। वे सभी विषयों पर लिखा करते थे। उनमें ऐसी अद्‌भुत क्षमता थी कि अपने भाषणों से सुनने वालों को मुग्ध कर देते थे।

परिचय

शिवराज महादेव परांजपे का जन्म 27 जून, 1864 ई. को कोलाबा जिले के महाद्र नामक स्थान पर चितपावन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उन्होंने संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। उनके जीवन को सही दिशा देने में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का बहुत प्रभाव रहा। शिक्षा पूरी करने के बाद परांजपे ने महाराष्ट्र कॉलेज, पूना में संस्कृत के अध्यापक के रूप में काम आरंभ किया। वे तिलक के कहने पर 'पूना सार्वजनिक सभा' के सचिव भी बन गए। इसी बीच 'शिवाजी' और 'गणपति उत्सव' में उनके जोशीले भाषणों की सरकार की तरफ से बड़ी आलोचना हुई और पराजंपे ने कॉलेज से त्यागपत्र दे दिया।

जन-जागरण

शिवराम महादेव परांजपे ने जन-जागरण के लिए 1895 में मराठी साप्ताहिक 'काल' का प्रकाशन आरंभ किया। उनके राजनीतिक जीवन का

प्रारंभ इसी पत्र के साथ होता है। इस पत्र में तेजस्वी और जनजागृति का निर्माण करने वाले विचारों के कारण अंग्रेज सरकार ने उन्हें देशद्रोही घोषित किया और 19 महीनों की जेल की सजा दी। 1910 में जब उनकी मुक्ति हुई, पत्र बराबर प्रकाशित होता रहा। लेकिन आगे चलकर वह 'प्रेस ऐक्ट' का शिकार हुआ। 'कालांतील निवडक निबंध' के दसों भाग सरकर ने जप्त कर लिए थे। 1937 में दसवें भाग को मुक्त कर दिया गया और शेष सब भाग 1946 में मुक्त किए गए। 1920 में उन्होंने 'स्वराज्य' साप्ताहिक आरंभ किया। महात्मा गाँधी ने जब 'असहयोग आंदोलन' चलाया, तब वे उसके समर्थक बने।

संपूर्ण स्वतंत्रता के समर्थक

ललित वांग्मय, न्याय, मीमांसा, इतिहास, मराठों के युद्ध, शूद्रों की व्युत्पत्ति आदि अनेक विषयों पर उनकी कलम अबाध रूप से चलती रही। वे संपूर्ण स्वतंत्रता के समर्थक थे। उन दिनों जब 'वंदे मातरम्' के उच्चारण मात्र के लिए सजा मिलती थी, शिवराम महादेव परांजपे की व्यंग्यात्मक शैली बहुत ही प्रभावकारी रही। वे मराठी के गद्यकवि थे। 'भाषा की भवितव्यता' निबंध में लेखक के रूप में उनकी अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय मिलता है।

प्रभावपूर्ण लेखनी

शिवराम महादेव की लेखनी में बड़ा प्रभाव एवं भाषणों में ओज था। वे सभी विषयों पर निर्बाध रूप से लिखा करते थे। उनके लेखों का संकलन 10 खंडों में प्रकाशित हुआ। इन पर उसी समय विदेशी सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था, जो देश के स्वतंत्र होने पर ही समाप्त हुआ। इसके अतिरिक्त उन्होंने चार नाटक, दो उपन्यास और 'मराठा युद्ध का इतिहास' जैसे ग्रंथ लिखे तथा कई संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद किए। अपने भाषणों से श्रोताओं को मुग्ध करने की परांजपे में बड़ी क्षमता थी। 1928 में बेलगांव के 'मराठी साहित्य संमेलन' की अध्यक्षता आपने ही की थी।

मृत्यु

प्रसिद्ध पत्रकार, लेखक एवं ओजस्वी वक्ता शिवराज महादेव परांजपे का मधुमेह के कारण 27 सितंबर, 1929 ई. को निधन हो गया।

14

लाला जगत नारायण

लाला जगत नारायण भारत के प्रसिद्ध पत्रकार तथा हिन्द समाचार समूह के संस्थापक थे। अस्सी के दशक में जब पूरा पंजाब आतंकी माहौल से सुलग रहा था, उस दौर में भी कलम के सिपाही एवं देश भावना से प्रेरित लाला जी ने अपने बिंदास लेखन से आतंकियों के मंसूबों को उजागर किया और राज्य में शांति कायम करने के भरसक प्रयास किए परन्तु 9 सितम्बर सन् 1981 को इन्हीं आतंकियों ने सच्चे देशभक्त एवं निडर पत्रकार लाला जी की हत्या कर दी।

जीवन परिचय

लाला जी का जन्म 31 मई 1899 को वजीराबाद, गुजरांवाला जिले (अब पाकिस्तान) में हुआ था। उन्होंने 1919 में लाहौर के दयानन्द ऐंग्लोवैदिक कॉलेज से स्नातक किया तथा लाहौर के विधि महाविद्यालय (ला कॉलेज) में प्रवेश लिया। 1920 में अध्ययन छोड़ दिया और महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन में शामिल हुए। इसका खामियाजा भी भुगतना पड़ा जब उन्हें लगभग ढाई वर्ष जेल में रहना पड़ा। जेल ही में उन्हें प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी लाला लाजपत राय के निजी सचिव के तौर पर कार्य करने का सौभाग्य मिला।

वे लाहौर नगर कांग्रेस समिति के 7 वर्ष तक अध्यक्ष रहे। लाहौर नगरपालिका में कांग्रेस पार्टी के नेता रहे और 30 से अधिक वर्षों तक पंजाब राज्य कांग्रेस समिति के सदस्य रहे।

वर्ष 1924 में ही लाला जगत नारायण जी को भाई परमानन्द द्वारा प्रकाशित 'आकाशवाणी' नामक साप्ताहिक समाचार पत्र में बतौर संपादक का कार्यभार मिला। यहीं से लाला जी के पत्रकारिता जीवन की उम्दा शुरूआत हुई लेकिन उनमें देशभावना के प्रति उत्साह कूट-कूट कर भरा था। तभी तो वे सभी सत्याग्रह आन्दोलन का प्रमुख हिस्सा बने रहे और देश को अंग्रेजों की गुलामी से आजाद कराने के लिए लगभग नौ वर्ष तक कारावास भी काटा बल्कि लाला जी की पत्नी को भी छः महीने जेल काटनी पड़ी जबकि उनके बड़े बेटे रमेश चोपड़ा को भी भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान ब्रिटिश सरकार ने गिरफ्तार किया लेकिन लाला जी ने इन सब विपरीत परिस्थितियों में भी हिम्मत नहीं हारी।

देश के आजाद होने के उपरांत, सन् 1948 में लाहौर, पाकिस्तान से पलायन कर जालंधर, पंजाब में हिन्द समाचार नामक उर्दू दैनिक अखबार का शुभारम्भ किया लेकिन तत्काल समय में उर्दू के अखबार को ज्यादा लोकप्रियता नहीं मिल पाई और सन् 1965 में लाला जी ने पंजाब केसरी दैनिक हिन्दी समाचार पत्र की स्थापना कर डाली जिसे पहले उत्तर भारत के राज्यों तथा बाद में मध्य एवं पूर्व और पश्चिम राज्यों में भी खूब लोकप्रियता मिली। लाला जी आर्य समाजी विचारधारा में विश्वास रखते थे और वे अपने जीवनकाल में हमेशा ही आदर्श परिवार एवं आदर्श समाज स्थापना तथा नैतिक कर्तव्य एवं योगदान के लिए प्रेरणास्रोत रहे।

स्वतंत्रता संग्राम में भाग

लाला जगत नारायन अपनी कानून की पढ़ाई को बीच में छोड़ कर गांधीजी के नेतृत्व वाले असहयोग आंदोलन में सम्मलित हो गये। 1921 से 1942 तक जितने भी आंदोलन हुए जगत नारायन ने उनमें सक्रिय भाग लिया। जगत नारायण को आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित करने के आरोप में पांच-छह बार अपनी जमानत भी गंवानी पड़ी थी। उस समय के प्रमुख नेताओं डॉक्टर सत्यपाल, डॉक्टर सैफुद्दीन किचलू आदि से उनका निकट संबंध था।

लाला जी आर्य समाजी विचारधारा में विश्वास रखते थे और वे अपने जीवन काल में हमेशा ही आदर्श परिवार एवं आदर्श समाज स्थापना तथा नैतिक कर्तव्य एवं योगदान के लिए प्रेरणा स्रोत रहे।

सम्मान

स्वतंत्रता सेनानी तथा 'पंजाब केसरी' समाचार पत्र समूह के संस्थापक लाला जगत नारायण जी की अपने जीवन काल में सच्ची देशभक्ति एवं समाज सेवा हेतु सन् 2013 में भारत सरकार के तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने उनके सम्मान में डाक टिकट जारी किया।

मृत्यु

अस्सी के दशक में जब पूरा पंजाब आतंकी माहौल से सुलग रहा था, उस दौर में भी कलम के सिपाही एवं देश भावना से प्रेरित लाला जी ने अपने बिंदास लेखन से आतंकियों के मंसूबों को उजागर किया और राज्य में शांति कायम करने के भरसक प्रयास किए, परन्तु 9 सितम्बर सन् 1981 को इन्हीं आतंकियों ने सच्चे देशभक्त एवं निडर पत्रकार लाला जी की हत्या कर दी।

15

रामानन्द चौटर्जी

रामानन्द चौटर्जी पत्रकारिता जगत के एक पुरोगामी शख्सियत थे। वे कोलकाता से प्रकाशित पत्रिका 'मॉडर्न रिव्यू' के संस्थापक, संपादक एवं मालिक थे। उन्हें 'भारतीय पत्रकारिता का जनक' माना जाता है। पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्होंने विशेष रूप से कार्य किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अध्यापक और प्राचार्य के पद पर काम किया था।

परिचय

रामानन्द चौटर्जी का जन्म 29 मई, 1865 को बांकुड़ा जिला, बंगाल में हुआ था। उन्होंने कलकत्ता और बांकुड़ा से अपनी शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से सन् 1890 में अंग्रेजी में स्नात्तकोत्तर परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीण की थी। वे आचार्य जगदीश चन्द्र बोस तथा शिवनाथ शास्त्री से अत्यन्त प्रभावित थे। उनके सामने इंग्लैंड जाकर आगे अध्ययन करने का प्रस्ताव भी आया, पर रामानंद ने उसे स्वीकार नहीं किया। तब तक उन पर ब्रह्म समाज का प्रभाव पड़ चुका था।

सम्पादन कार्य

रामानन्द चौटर्जी पत्रकारिता जगत के पुरोगामी शख्सियत थे। उन्होंने प्रवासी, बंगाल भाषा, 'मॉडर्न रिव्यू' अंग्रेजी में तथा 'विशाल भारत' जैसी पत्रिकाएँ निकालीं। रामानंद चटर्जी ने प्रसिद्ध भारतीय मासिक पत्र 'मॉडर्न रिव्यू' का दिसंबर 1906 में प्रकाशन आरंभ किया। 1901 ई. में उन्होंने बांग्ला भाषा

के पत्र 'प्रवासी' का संपादन किया। विद्यार्थी जीवन में ही उन्होंने 'द इंडियन मैसेंजर' के संपादन का काम अपने हाथ में ले लिया था और बांग्ला पत्र 'संजीवनी' में नियमित रूप से लिखा करते थे। उनका 'देशाश्रय' नाम के सामाजिक संगठन से संपर्क हुआ तो उसकी मुख्य पत्र 'दासी' का सम्पादन भी उन्होंने ही किया। उन्होंने बच्चों की पत्रिका 'मुकुल' और साहित्यिक पत्रिका 'प्रदीप' के संपादन में भी सहयोग दिया। इनके माध्यम से ही रामानंद का रबींद्रनाथ टैगोर से परिचय हुआ था। शीघ्र ही यह 'प्रवासी' नामक पत्रिका बंगला भाषा-भाषियों की अत्यंत प्रिय पत्रिका बन गई। यह अपने समय का अत्यंत प्रसिद्ध पत्र बन गया। उच्च कोटि के लेखकघ इसमें अपनी रचनाएं भेजते थे। इसकी संपादकीय टिप्पणियां ज्ञानवर्धक और प्रेरक होती थीं।

प्रधानाचार्य का पद

कुछ समय बाद रामानन्द चौटर्जी की कायस्थ पाठशाला, इलाहाबाद के प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्ति हुई और वे कोलकाता से इलाहाबाद आ गए। इसी बीच जातीय भेदभाव के कारण उन्हें कायस्थ पाठशाला से त्यागपत्र देना पड़ा।

विदेश यात्रा

रामानन्द चौटर्जी कुछ वर्ष बाद हिंदू महासभा के अध्यक्ष बने। पत्रकार के रूप में उनकी ख्याति के कारण राष्ट्र संघ ने अपनी कार्रवाई स्वयं देखने के लिए उन्हें जिनेवा आमंत्रित किया था। तभी उन्होंने यूरोप के विभिन्न देशों का भी भ्रमण किया। उन्हें रूस से भी निमंत्रण मिला था, पर वहां अभिव्यक्ति पर प्रतिबंधों को देखते हुए उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। वे 'प्रवासी बंग साहित्य सम्मेलन' के संस्थापकों में से थे और उसके अध्यक्ष भी रहे।

कांग्रेस समर्थक

रामानन्द भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रबल समर्थक थे। कुछ वर्षों के पश्चात् उन्होंने कांग्रेस राष्ट्रवादी पार्टी और हिन्दू सभा का सहयोग दिया। रामानन्द सम्पादकीय विचार की स्वाधीनता के प्रबल समर्थक थे।

मृत्यु

रामानन्द चौटर्जी का निधन कोलकाता में 30 सितंबर, 1943 को हो गया।

16

रामहरख सिंह सहगल

रामहरख सिंह सहगल अपने समय के जानेमाने पत्रकार और क्रांतिकारी भावनाओं के व्यक्ति थे। उस समय की अद्वितीय मासिक पत्रिका 'चांद' के वे संस्थापक और संपादक थे। राष्ट्रीय आंदोलन को गति देने के उद्देश्य से चांद का 'फांसी अंक' निकाल कर इस अंक की 10000 प्रतियां छापी गई थीं, जिसे अंग्रेजी सरकार ने जब्त कर लिया था।

परिचय

रामहरख सिंह सहगल का जन्म 28 सितम्बर, 1896 ई. को लाहौर के निकट एक गांव में हुआ था। उन्होंने पत्रकार का जीवन 1923 ई. में इलाहाबाद से 'चांद' मासिक पत्रिका प्रकाशित करने के साथ शुरू किया। 1927 में 'भविष्य', 1937 में 'कर्मयोगी' और 1940 में 'गुलदस्ता' अंक निकाला। उन्होंने अपने प्रकाशित 'चांद' अंक को जनचेतना और नारी-जागरण का माध्यम बना दिया। इस कार्य से उन्हें विदेशी सरकार का ही नहीं, समाज के कट्टरपंथियों के आक्रोश का भी सामना करना पड़ा था।

योगदान

सहगल का हिंदी पत्रिकाओं के विशेषांक प्रकाशित करने की परंपरा चलाने में बड़ा ही योगदान रहा है। उन्होंने चांद के 'अचूक अंक', 'मारवाड़ी अंक', 'पत्रांक', 'राजपूताना अंक' और 'नारी अंक' निकाल कर समाज का मार्गदर्शन किया। राष्ट्रीय आंदोलन को गति देने के उद्देश्य से प्रकाशित चांद का

'फांसी अंक' निकाल कर उन्होंने जो काम किया, उसे लोग आज भी भूले नहीं हैं। इस अंक की 1931 में 10000 प्रतियां छापी गई थीं। सूचना मिलने पर सरकार ने इसे जब्त कर लिया, पर तब तक यह देशभर में फैल चुका था। पंडित सुंदरलाल लिखित 'भारत में अंग्रेजी राज' का प्रकाशन भी चांद कार्यालय से आप ने ही किया था। यह पुस्तक प्रकाशित होते ही जब्त कर ली गई थी।

कारावास

रामहरख सिंह सहगल के पत्र 'भविष्य' की राष्ट्रीय गतिविधियों के कारण इसके छह संपादकों को कारावास की यातनाएं भुगतनी पड़ी थीं।

मृत्यु

रामहरख सिंह सहगल ने घोर अर्थ-संकट का सामना करते हुए 1 फरवरी, 1952 को दुनिया को अलविदा कह दिया।

17

अमरनाथ विद्यालंकार

अमरनाथ विद्यालंकार भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्ता तथा सांसद थे। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाले सेनानियों में से वे एक थे। अमरनाथ विद्यालंकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य थे। स्वतन्त्रता के बाद 1957 से 1962 तक वे पंजाब सरकार में शिक्षा, श्रम तथा भाषा के मंत्री थे। वे प्रथम लोकसभा (1952-56), तीसरी लोकसभा (1962-67) और पाँचवीं लोकसभा (1971-77) के सांसद भी रहे।

परिचय

अमरनाथ विद्यालंकार का जन्म 8 दिसंबर, 1901 को अविभाजित पंजाब के सरगोधा जिले में (अब पाकिस्तान) एक खत्री परिवार में हुआ था। विद्यार्थी जीवन में ही उन पर महात्मा गाँधी और लाला लाजपत राय के विचारों का प्रभाव पड़ चुका था। गुरुकुल से निकलते ही वह देश और समाज की सेवा के उद्देश्य से लाला जी की संस्था 'लोक सेवा समाज' के सदस्य बन गए। उन्होंने लाला जी के सचिव के रूप में भी काम किया।

विभिन्न गतिविधियाँ

लाला लाजपत राय की मृत्यु के बाद पुरुषोत्तम दास टंडन जब 'लोक सेवक समाज' के अध्यक्ष बने तो अमरनाथ विद्यालंकार को 'पंजाब केसरी' नामक पत्र के संपादक का कार्य सौंपा गया। इस बीच में अकाल से पीड़ितों

की सेवा और श्रमिकों को संगठित करने का कार्य भी वे करते रहे। कुछ सहयोगियों के साथ उन्होंने पंजाब के गांवों में किसान विद्यालय खोले।

'किसान आंदोलन' 1941 में और 'भारत छोड़ो आंदोलन' 1942 में उन्होंने जेल यात्रा की। देश के विभाजन के समय उन्होंने पाकिस्तान से आए विस्थापितों की बड़ी सहायता की।

मंत्री पद

सन् 1949 में पंजाब विधानसभा के और 1952 तथा 1962 में अमरनाथ विद्यालंकार लोकसभा के सदस्य चुने गए। प्रताप सिंह कैरों के मंत्रिमंडल में वे मंत्री भी रहे। उन्होंने अनेक श्रमिक सम्मेलनों में भारत के प्रतिनिधिमंडलों का नेतृत्व किया।

रचनाएँ

अमरनाथ विद्यालंकार ने अनेक पुस्तकों की रचनाएँ भी कीं, जिनमें प्रमुख हैं–

- भारत का इतिहास,
- आज का मानव समाज,
- मानव संघर्ष,
- सोशल एजुकेशन इन इंडिया।

18

मेहता लज्जाराम शर्मा

मेहता लज्जाराम शर्मा हिंदी भाषा के पत्रकार एवं साहित्यकार थे। उन्होंने 23 ग्रंथों की रचना की, जिनमें से 13 उपन्यास हैं। पाठकों की दृष्टि में वह एक उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध हैं।

परिचय

मातृभाषा गुजराती होने पर भी जीवन भर हिंदी की सेवा को समर्पित मेहता लज्जाराम शर्मा का जन्म 1863 ई. में हुआ था। उन्होंने अपनी आत्मकथा में कहा है कि 'मैं 9 महीने के स्थान पर 18 महीने अपनी माता के गर्भ में रहा हूँ और जीवन भर के लिए रोगों को साथ लेकर पैदा हुआ हूँ।' उन्होंने घर पर ही शिक्षा प्राप्त करके गुजराती, संस्कृत, मराठी और अंग्रेजी में निपुणता प्राप्त की।

पत्रकारिता

कुछ दिन अध्यापक रहने के बाद 'सर्वहित' नामक पत्र निकालकर वे हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। फिर मुम्बई के 'वैंकटेश्वर समाचार' में गए और सम्पादक बन गए। मेहता जी के सम्पादकत्व में 'वैंकटेश्वर समाचार' पत्र की प्रतिष्ठा में बड़ी वृद्धि हुई। मराठी और गुजराती के पत्र इसकी रचानाओं का अनुवाद अपने पत्रों में प्रकाशित करते थे।

साहित्यिक परिचय

मेहता लज्जाराम तत्कालीन हिन्दी साहित्य के महत्त्वपूर्ण स्तंभ थे। उन्होंने हिन्दी के उन्नयन के लिए अथक परिश्रम किया था। उन्होंने उस समय काम

किया, जिस समय हिन्दी के लेखक ऐय्यारी और जासूसी उपन्यास लिखने में व्यस्त थे। लज्जाराम मेहता ने हिन्दी को न केवल लोकप्रिय बनाया बल्कि उसमें मध्यम वर्ग की समस्याओं का चित्रण भी किया। वह एक प्रखर पत्रकार और इतिहासकार भी थे। बूंदी में निवास करते हुए उन्होंने वहां के इतिहास लेखन का भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया। लज्जाराम मेहता के उपन्यास मौलिक थे और मानव जीवन के चित्र सामने रखते थे।

मेहता लज्जाराम शर्मा ने अनेक साहित्यिक आंदोलन भी चलाए। 7 वर्ष तक पत्र का संपादन करने के बाद मेहता जी बूंदी चले गए। हिंदी सेवा का क्रम चलता रहा। उन्होंने 23 ग्रंथों की रचना की, जिसमें 13 उपन्यास और अन्य कहानी, जीवन चरित्र आदि हैं।

निधन

मेहता लज्जाराम का हिंदी साहित्य की सेवा करते करते 29 जून, 1931 को देहांत हो गया।

19

नरसिंह चिन्तामन केलकर

नरसिंह चिन्तामन केलकर लोकमान्य बाल गंगाधर के सहयोगी प्रसिद्ध पत्रकार और मराठी भाषा के प्रबुद्ध साहित्यकार थे। वह लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के द्वारा बनाई गई 'होमरूल लीग' के सचिव थे।

परिचय

नरसिंह चिन्तामन केलकर का जन्म महाराष्ट्र की मिरज रियासत में 24 अगस्त 1872 ई. को हुआ था। पूना से कानून की डिग्री लेने के बाद केलकर ने सतारा में वकालत आरम्भ की।

पत्रकारिता

जब उन्होंने पूना में वकालत करना आरम्भ किया था तो उसी समय लोकमान्य तिलक को अपने पत्रों 'केसरी' और 'मराठा' संपादन में एक सहायक की आवश्यकता थी। यह सूचना मिलते ही केलकर 1896 में पूना आ गये। उसके बाद वह लोकमान्य के पत्रों से जुड़े रहे। 1897 में विदेशी सरकार की आलोचना करने पर तिलक को 18 माह की कैद की सजा हुई तो उन्होंने जेल से सन्देश भेजा कि दोनों पत्रों के संपादक केलकर होंगे।

जेल से आने पर भी तिलक ने केवल 'केसरी' का सम्पादन अपने हाथ में लिया। 'मराठा' का सम्पादन केलकर ही करते रहे। 1908 में 6 वर्ष की कैद की सजा देकर तिलक को बर्मा (वर्तमान म्यांमार) की मांडले जेल में बंद कर दिया तो फिर दोनों पत्रों का भार केलकर के ऊपर आ गया। 1914 में जेल से

बाहर आकर तिलक ने 'होमरूल लीग' बनाई तो उसके सचिव भी केलकर ही चुने गए। 1918 में होमरूल लीग के प्रतिनिधि मंडल के साथ केलकर इंग्लैंड भी गए।

सामाजिक मामलों में तिलक के विचार पुरातनवादी थे और केलकर आधुनिक विचारों के व्यक्ति थे। इस विचार भेद के कारण केलकर ने कई बार पत्रों से हटना चाहा किंतु उनकी योग्यता के कारण तिलक ने उन्हें नहीं छोड़ा।

मराठा साहित्यकार

नरसिंह चिन्तामन केलकर, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के अनन्य सहयोगी प्रसिद्ध पत्रकार और मराठी भाषा के प्रबुद्ध साहित्यकार थे। उन्होंने विभिन्न विधाओं में मराठी साहित्य की सेवा की। उनकी रचनाएं 1200 पृष्ठों से अधिक की हैं।

निधन

नरसिंह चिन्तामन केलकर का देहांत 14 अक्टूबर, 1947 को पुणे में हुआ था।

20

दत्तात्रेय विष्णु आप्टे

दत्तात्रेय विष्णु आप्टे महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, पत्रकार एवं इतिहासकार थे। आपकी प्रारंभिक शिक्षा जमखिंडी में हुई। 1902 में पूना के फर्ग्यूसन कालेज से बी. ए. की उपाधि प्राप्त की। राष्ट्रीय आंदोलन के समय आप बंगभंग की घटना से विशेष प्रभावित हुए। इस समय आपने अपने यवतमाल के राष्ट्रीय विद्यालय में अध्यापन का कार्य स्वीकार कर लिया जो आपकी राष्ट्रीय भावना के ही अनुकूल था। 'हरिकिशोर' साप्ताहिक में विचार प्रवर्तक लेख लिखकर आपने जनता में जागृति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। यह पत्र सरकारी दमन नीति के कारण अधिक चल न सका। इसके बाद आप बंबई के दैनिक 'राष्ट्रमत' के संपादकीय विभाग में रहे। इस पत्र के भी शीघ्र ही बंद हो जाने से आपने पुन: अध्यापन का कार्य शुरु किया, इस बार गोवा में। यहीं पर आपने पुर्तगीज भाषा का अध्ययन किया। प्रथम महायुद्ध के समय वहाँ पर आपके लिए रहना असंभव हो जाने से आप पूना चले आए और मृत्युपर्यंत वहीं रहे।

पूना में आप कुछ दिनों तक 'चित्रमय जगत्' और 'शालापत्रक' के संपादक रहे। असहयोग आंदोलन के समय उक्त पत्रों के व्यवस्थापकीय विभाग से मतभेद हो जाने के कारण आपने त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद आप 'आनंदाश्रम' प्रेस के व्यवस्थापक रहे। इसी समय आपने 'मुधोलच्या राजघराण्या का इतिहास' लिखा।

अपने गुरु इतिहासाचार्य राजवाड़े की तरह आपकी भी राष्ट्रभक्ति ऐतिहासिक चिंतन और दर्शन पर आधारित थी। ऐतिहासिक अन्वेषण का उद्देश्य सत्य का दर्शन हो, ऐसा आप मानते थे। आप कहते थे कि ऐतिहासिक चिंतन का आधार

शास्त्र शुद्ध होना चाहिए क्योंकि राष्ट्र की सच्ची संपत्ति वही है। इतिहास का अध्ययन इसी दृष्टि से आपने किया। इसके साथ ही साथ इसी दिशा में प्रयत्नशील अनेक विद्याव्यासंगियों को आपने प्रेरणा दी और उनका पथ-प्रदर्शन किया।

कृतियाँ

आपके ग्रंथों में इतिहास मंजरी, श्रीरंगमपट्टणची मोहीम, शिवचरित्र प्रदीप, घोरपड्ध्रेण्याचा इतिहास, पत्र सार संग्रह आदि महत्त्वपूर्ण हैं। पूना के भारतीय इतिहास संशोधन मंडल ने आपके कार्य की महत्ता को समझकर आपको अपना आजन्म सदस्य बनाया तथा संस्था के उपसभापति के रूप में आपकी नियुक्ति कर आपको गौरवान्वित किया।

इतिहास के अतिरिक्त आप गणित और ज्योतिष में भी विशेष रुचि रखते थे। शिवाजी के समय ज्योतिष से संबंधित शोध कार्यों पर आपने प्रकाश डाला। खरे जंत्री (तालिका) का महत्त्व इतिहास के लिये आवश्यक बताया तथा करणकौस्तुभ, बीजगणित, लीलावती इत्यादि ग्रंथों का वितरण भी आपने ही किया। भास्कराचार्य के संस्कृत ग्रंथों का टीकासहित सुबोध मराठी अनुवाद आपका ही किया हुआ है।

21

सखाराम गणेश देउसकर

सखाराम गणेश देउसकर क्रांतिकारी लेखक, इतिहासकार तथा पत्रकार थे। ये भारतीय जनजागरण के ऐसे विचारक थे, जिनके चिंतन और लेखन में स्थानीयता और अखिल भारतीयता का अद्‌भुत संगम था। ये लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के पक्के अनुयायी थे और बंगाल में जनजागृति लाने के कारण ये 'बंगाल के तिलक' कहलाते थे। हिन्दी के प्रचार के लिए भी ये निरंतर प्रयत्नशील रहे।

परिचय

सखाराम गणेश देउसकर का जन्म 17 दिसम्बर 1869 को देवघर के पास 'करौं' नामक गांव में हुआ था, जो अब झारखंड राज्य में है। मराठी मूल के देउसकर के पूर्वज महाराष्ट्र के रत्नागिरि जिले में शिवाजी के आलबान नामक किले के निकट देउस गाँव के निवासी थे। 18वीं सदी में मराठा शक्ति के विस्तार के समय इनके पूर्वज महाराष्ट्र के देउस गांव से आकर 'करौं' में बस गए थे।

शिक्षा

पाँच साल की अवस्था में माँ का देहांत हो जाने के बाद बालक सखाराम का पालन-पोषण इनकी विधवा बुआ के पास हुआ जो मराठी साहित्य से भली भाँति परिचित थीं। इनके जतन, उपदेश और परिश्रम ने सखाराम में मराठी साहित्य के प्रति प्रेम उत्पन्न किया। बचपन में वेदों के अध्ययन के साथ ही

सखाराम ने बंगाली भाषा भी सीखी। इतिहास इनका प्रिय विषय था। ये बाल गंगाधर तिलक को अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। सखाराम गणेश देउसकर ने सन् 1891 में देवघर के आर. मित्र हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा पास की और सन् 1893 से इसी स्कूल में शिक्षक नियुक्त हो गए। यहीं वे राजनारायण बसु के संपर्क में आए और अध्यापन के साथ-साथ एक ओर अपनी सामाजिक-राजनीतिक दृष्टि का विकास करते रहे।

लेखन तथा सम्पादन कार्य

दूसरी ओर वे अपनी सामाजिक-राजनीतिक अभिव्यक्ति के लिए बांग्ला की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में राजनीति, सामाजिक और साहित्यिक विषयों पर लेख भी लिखते रहे। सन् 1894 में देवघर में हार्ड नाम का एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट था। उसके अन्याय और अत्याचार से जनता परेशान थी। देउसकर ने उसके विरुद्ध कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'हितवादी' नामक पत्र में कई लेख लिखे, जिसके परिणामस्वरूप हार्ड ने देउसकर को स्कूल की नौकरी से निकालने की धमकी दी। उसके बाद देउसकर जी ने अध्यापक की नौकरी छोड़ दी और कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) जाकर 'हितवादी अखबार' में प्रूफ रीडर के रूप में काम करने लगे। कुछ समय बाद अपनी असाधारण प्रतिभा और परिश्रम की क्षमता के आधार पर वे 'हितवादी' के संपादक बना दिए गए।

सखाराम गणेश देउसकर संस्कृत, मराठी और हिन्दी भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। बंगला भाषा के प्रसिद्ध पत्र 'हितवादी' का ये संपादन करते थे। इनकी प्रेरणा से इस पत्र का 'हितवार्ता' के नाम से हिन्दी संस्करण निकला, जिसका संपादन पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर ने किया। हिन्दी में भी बंगला, मराठी आदि की भाँति विभक्ति शब्द से मिला कर लिखी जाए, इसके लिए देउसकर ने एक आंदोलन चलाया था। इनका एक बड़ा योगदान था 'देशेर कथा' नामक ग्रंथ की रचना। इसके प्रथम संस्करण का पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर ने 'देश की बात' नाम से हिन्दी में अनुवाद किया था। इस पुस्तक में पराधीन देश की दशा पर प्रकाश डाला गया था। विदेशी सरकार ने इसे प्रकाशित होते ही जब्त कर लिया था, पर गुप्त रूप से देश भर में इसका बहुत प्रचार हुआ। सखाराम गणेश देउसकर का घर अरविन्द घोष और बारीन्द्र घोष जैसे क्रांतिकारियों का मिलने का स्थान था, जो दिन में पत्रकारिता करते और रात्रि में अपने दल के कार्यों में संलग्न रहते। ये लोकमान्य के पक्के अनुयायी थे और बंगाल में जनजागृति

लाने के कारण ये 'बंगाल के तिलक' कहलाते थे। हिन्दी के प्रचार के लिए भी ये निरंतर प्रयत्नशील रहे।

रचनाएँ

सखाराम गणेश देउसकर के ग्रंथों और निबंधों की सूची बहुत लंबी है। डॉ. प्रभुनारायण विद्यार्थी ने एक लेख में देउसकर की रचनाओं का ब्योरा प्रस्तुत किया है। इनके प्रमुख ग्रंथ है–

- महामति रानाडे (1901)
- झासीर राजकुमार (1901)
- बाजीराव (1902)
- आनन्दी बाई (1903)
- शिवाजीर महत्त्व (1903)
- शिवाजीर शिक्षा (1904)
- शिवाजी (1906)
- देशेर कथा (1904)
- देशेर कथा (परिशिष्ट) (1907)
- कृषकेर सर्वनाश (1904)
- तिलकेर मोकद्दमा ओ संक्षिप्त जीवन चरित (1908)

इन पुस्तकों के साथ-साथ इतिहास, धर्म, संस्कृति और मराठी साहित्य से संबंधित उनके लेख अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

सार्वजनिक सेवा

सखाराम गणेश देउसकर ने सार्वजनिक सेवा कोलकाता में जाकर की। इन्होंने कोलकाता में शिवाजी महोत्सव आरंभ करके युवकों के अन्दर राष्ट्रीयता की भावना भरी। ये बंग भंग आंदोलन से पहले ही स्वदेशी के प्रवर्तक थे। देश की स्वतंत्रता को अपने जीवन का लक्ष्य मानने वाले सखाराम ने क्रांतिकारी आंदोलन से भी संपर्क रखा और बंगला तथा हिन्दी में साहित्य की रचना करके जन-जागृति में योगदान दिया। सखाराम गणेश देउसकर की अध्यक्षता में कोलकाता में 'बुद्धिवर्धिनी सभा' का गठन हुआ। इस सभा के माध्यम से युवकों के ज्ञान में वृद्धि तो होती ही थी, साथ ही साथ इन्हें राजनीतिक ज्ञान भी प्राप्त होता था और लोगों को स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग की प्रेरणा मिलती थी।

1905 में बंग-भंग के विरोद्ध में जो आंदोलन चला, उसमें सखाराम गणेश देउसकर का बड़ा योगदान था।

निधन

राष्ट्रभक्त सखाराम गणेश देउसकर का अल्प आयु में ही 23 नवंबर, 1912 को निधन हो गया।

22

श्री नारायण चतुर्वेदी

श्री नारायण चतुर्वेदी हिन्दी के साहित्यकार, प्रचारक, सर्जक तथा पत्रकार थे जो आजीवन हिन्दी के लिये समर्पित रहे। ये सरस्वती पत्रिका के सम्पादक भी थे। इन्होंने राष्ट्र को हिन्दीमय बनाने के लिये जनता में भाषा की जीवन्त चेतना को उकसाया। अपनी अमूल्य हिन्दी सेवा द्वारा इन्होंने भारतरत्न मदन मोहन मालवीय तथा पुरुषोत्तम दास टंडन की योजनाओं और लक्ष्यों को आगे बढ़ाया।

जन्म एवं शिक्षा

श्री नारायण चतुर्वेदी का जन्म उत्तर-प्रदेश के इटावा जनपद में सन् 1895 ई. में हुआ माना जाता है तथा श्री नारायण जी इसी जन्मतिथि के हिसाब से ही भारत सरकार की राजकीय सेवा से सेवानिवृत्त भी हुये। इनके पिता श्री द्वारिका प्रसाद शर्मा चतुर्वेदी उस क्षेत्र में अपने समय के संस्कृत भाषा के नामी विद्वान थे तथा उन्होंने सौ से अधिक पुस्तकों की रचना की थी। पिता की विद्धता का सीधा प्रभाव श्री नारायण चतुर्वेदी जी पर पड़ा। इनकी शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हुई। इतिहास विषय में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद इन्होंने कुछ समय तक अध्यापन कार्य किया। फिर 1925 में उत्तर प्रदेश सरकार की छात्रवृति मिलने पर शिक्षा शास्त्र में उच्च अध्ययन के लिए ये इंग्लैण्ड गये वहां लंदन विश्वविद्यालय से शिक्षा शास्त्र में एम.ए. करने के बाद 1928 में उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग में अधिकारी नियुक्त किए गए।

हिंदी का प्रचार

श्री नारायण चतुर्वेदी अपने सेवाकाल से ही हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए विशेष रूप से सक्रिय थे। ये जहाँ भी रहे, वहाँ कवि सम्मेलनों की धूम रहती थीं। इनकी हिन्दी के प्रति निष्ठा देख कर ही राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन का सुझाव मान कर सरदार पटेल के सूचना मंत्री काल में चतुर्वेदी जी को आल इंडिया रेडियो में उप महानिदेशक (भाषा) के रूप में तैनात किया गया था। इनके प्रयत्नों से रेडियों की भाषा के अरब-फारसीकरण पर रोक लगी। रेडियो की सेवा से निवृत्त होने पर ये 4 वर्ष तक मध्यभारत के शिक्षा और पुरातत्त्व विभाग के निदेशक रहे।

लेखन कार्य

श्री नारायण चतुर्वेदी की ख्याति एक कवि, पत्रकार, भाषा-विज्ञानी तथा लेखक के रूप में है। इन्होंने अपनी कवितायें 'श्रीवर' नाम से लिखकर दो कविता संग्रह तैयार किये-

- रत्नदीप,
- जीवन कण।

इनके द्वारा अंग्रेजी भाषा से किया गया अनुवाद 'विश्व का इतिहास' तथा 'शासक' महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। ये हिन्दी भाषा में प्रकाशित संग्राहक कोश 'विश्वभारती' के संपादक रहे। 1955 से 20 वर्षों तक इन्होंने हिन्दी की ऐतिहासिक मासिक पात्रिका 'सरस्वती' का सफलतापूर्वक संपादन किया। साहित्य रचना के स्तर पर इनके द्वारा रचित और अनुवादित 36 ग्रंथ प्रकाशित है। 'विनोद शर्मा' के नाम से ये व्यंग्य रचनाएं करते थे। पुरातत्त्व और कला में भी इनकी इतनी ही रुचि थी।

पुरस्कार

श्री नारायण चतुर्वेदी का हिन्दी की प्रगति के मार्ग में कहीं से भी रोड़ा अटकाया जाए, यह इनके लिए असह्य था। उत्तर प्रदेश सरकार ने इनको एक लाख रुपये का 'भारत भारती' पुरस्कार देने का निश्चय किया था, परंतु इसी बीच जब सरकार ने प्रदेश की दूसरी सरकारी भाषा का दर्जा उर्दू को देने का निश्चय किया तो चतुर्वेदी जी ने सरकार का यह पुरस्कार अस्वीकार कर दिया।

उनके इस निर्णय का प्रदेश की जनता पर यह प्रभाव पड़ा कि हिन्दी प्रेमी जनता की ओर से उन्हें एक लाख ग्यारह हजार एक सौ ग्यारह रुपयों का 'जनता भारत भारती' पुरस्कार प्रदान करके सम्मनित किया गया था।

निधन

श्री नारायण चतुर्वेदी का लम्बी बीमारी के बाद 18 अगस्त, 1990 ई को निधन हो गया।

23

काका कालेलकर

काका कालेलकर भारत के प्रसिद्ध गांधीवादी स्वतंत्रता सेनानी, शिक्षाविद, पत्रकार और लेखक थे। काका कालेलकर देश की मुक्ति के लिए सशस्त्र संघर्ष के पक्षपाती थे। 1915 ई. में गाँधी जी से मिलने के बाद ही इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन गाँधी जी के कार्यों को समर्पित कर दिया। गुजराती भाषा पर भी इनका अच्छा ज्ञान था। 1922 में ये गुजराती पत्र 'नवजीवन' के सम्पादक भी रहे थे।

जीवन-परिचय

काका कालेलकर का जन्म सन् 1885 ई. में महाराष्ट्र के सतारा जिले में हुआ था। ये बड़े प्रतिभा सम्पन्न थे। मराठी इनकी मातृभाषा थी, पर इन्होंने संसकृत, अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती, ओर बँगला भाषाओं का भी गम्भीर अध्ययन कर लिया था। जिन राष्ट्रीय नेताओं एवं महापुरुषों ने राष्ट्र भाषा के प्रचार-प्रसार में विशेष उतसुकता दिखायी, उनकी पंक्ति में काका कालेलकर का भी नाम आता हैं। इन्होंने राष्ट्रभाषा के प्रचार को राष्ट्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत माना है।

महात्मा गॉधी के सम्पर्क से इनका हिन्दी-प्रेम और भी जागृत हुआ। दक्षिण भारत, विशेषकर गुजरात में इन्होंने हिन्दी का प्रचार विशेष रूप से किया। प्राचीन भारतीय संसकृति, नीति, इतिहास, भूगोल आदि के साहित्य ही इन्होंने युगीन समस्याओं पर भी अपनी सशक्त लेखनी चलायी।

इन्होंने शान्ति निकेतन में अध्यापक, साबरमती आश्रम में प्रधानाध्यापक और बड़ौदा में राष्ट्रीय शाला के आचार्य के पद पर भी कार्य किये। गांधी जी की मृत्यु के बाद उनकी स्मृति में निर्मित 'गाँधी संग्रहालय' के प्रथम संचालक

यही थे। सवतंत्रता सेनानी होने के कारण अनेक बार जेल भी गये। संविधान सभा के सदस्य भी ये रहे। सन् 1952 से 1957 ई. तक राज्य-सभा के सदस्य तथा अनेक आयोगों के अध्यक्ष रहे। भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' राष्ट्र भाषा प्रचार समिति ने 'गाँधी पुरस्कार' से कालेलकर जी को सम्मानित किया है। ये रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं पुरुषोत्तमदास टण्डन के भी सम्पर्क में रहे।

साहित्यिक परिचय

काका कालेलकर मराठी भाषाी होते हुए भी हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार के प्रति जो रुचि प्रदर्शित की, वह हिन्दी-भाषियों के लिए अनुकरणीय है। इनका हिन्दी-साहित्य निबन्ध, जीवनी, सांस्मरण, यात्रातृता आदि गद्य-विधाओं के रूप में उपलब्ध होता है।

इनहोंने हिन्दी एवं गुजराती में तो अनेक रचनाओं का सृजन किया ही, साहित्य ही हिन्दी भाषा में अपनी कई गुजराती रचनाओं का अनुवाद भी किया। इनकी रचनाओं पर अनेक राष्ट्रीय नेताओं एवं साहित्यकारों का प्रभाव परिलक्षित होता है। तत्कालीन समस्याओं पर भी इन्होंने कई सशकत रचनाओं का सृजन किया। कालेलकर जी की रचनाओं में भारतीय संस्कृति के विभिन्न आयामों की झलक दिखायी देती है। व्याक्ति के जीवन के अन्तर्तम तक इनकी पैठ थी, इसलिए जब ये किसी के जीवन की विवेचना करते थे तो रचना में उसका व्यक्तित्व उभर आता था।

काका कालेलकर की कृतियाँ

कृतियाँ, निबन्ध-संग्रह- जीवन काव्य, जीवन साहित्य सर्वोदय

यात्रा-वृत्तान्त- हिमालय प्रवास, यात्रा, उस पार के पड़ोसी, लोक-माता

संस्मरण- बापू की झाँकियाँ

आत्म-चरित्र- जीवन लीला, धर्मोदय(इनमें काका साहब के यथार्थ जीवन की झाँकी है।)

सर्वोदय-साहित्य- सर्वोदय

भाषा-शैली- कालेलकर जी की भाषा परिष्कृत खड़ी बोली है। उसमें प्रवाह, ओज तथा अकृत्रिमता है। ये अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे, इसीलिए इनकी

हिन्दी भाषा में रचित रचनाओं में अंग्रेजी, अरबी, फारसी, गुजराती, मराठी के शब्द भी मिल जाते हैं। तत्सम, तद्भव देशज आदि सभी शब्द -रूप इनकी भाषा में एक साथ देखे जा सकते हैं। मुहावरों ओर कहावतों का प्रयोग भी इन्होंने किया है।

सम्मान एवं पुरस्कार

काका कालेलकर 1952 से 1964 तक संसद के सदस्य भी रहे। 1964 में उन्हें 'पद्म विभूषण' से सम्मानित किया गया। वे 'पिछड़ा वर्ग आयोग', 'बेसिक एजुकेशन बोर्ड', 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा', 'गांधी विचार परिषद' के अध्यक्ष तथा 'गांधी स्मारक संग्रहालय' के निदेशक रहे। काका कालेलकर ने विश्व के अनेक देशों की यात्रा की और गांधीवादी विचारों का प्रचार किया। वे ग्रामीण और कुटीर उद्योगों के समर्थक थे। सामाजिक स्तर पर वे भेदभाव के विरोधी थे।

संपूर्ण गांधी साहित्य के लिए नियुक्त परामर्शदायी समिति के काका साहेब एक सदस्य रहे। 1949 में काका साहेब ने गुजराती साहित्य परिषद के अधिवेशन की अध्यक्षता की। 1979 में 76वीं वर्षगांठ के अवसर पर अहमदाबाद में उन्हें गुजराती में कालेलकर-अध्ययन-ग्रंथ समर्पित कर सम्मानित किया गया। कृतज्ञ राष्ट्र द्वारा 1965 में 81वीं वर्षगांठ पर 'संस्कृति के परिव्राजक' तथा 95वें जन्मदिन पर 'समन्वय के साधक' अभिनन्दन ग्रंथ अर्पित किये गये। सन् 1965 में ही भारतीय साहित्य अकादमी ने, राष्ट्रपति के हाथों, काका साहेब को उनके 'जीवन-व्यवस्था' शीर्षक गुजराती लेख-संकलन पर रुपये पाँच हजार का पुरस्कार देकर सम्मानित किया था। स्वातंत्र्य के सेनानी, लोकशिक्षक, पंडित, देश के सांस्कृतिक दूत, साहित्य सेवक आदि सभी दृष्टियों से उनका व्यक्तित्त्व महान् है। सरदार पटेल विश्वविद्यालय, आणंद, गुजरात विश्वविद्यालय और काशी विद्यापीठ ने उन्हें मानद् डी. लिट्. से और साहित्य अकादमी, नई दिल्ली ने 'फैलो' से अलंकृत किया।

निधन

आचार्य काका साहेब कालेलकर का निधन 21 अगस्त, 1981 को नई दिल्ली में उनके 'संनिधि' आश्रम में हुआ।

24

इन्द्र विद्या वाचस्पति

इन्द्र विद्यावाचस्पति एक प्रसिद्ध पत्रकार, राष्ट्रीय कार्यकर्ता और भारतीयता के समर्थक थे। इन्होंने क्रांतिकारी गतिविधियों में भी भाग लिया और गांधी जी के 'नमक सत्याग्रह' के समय जेल की यात्रा भी की। इन्होंने कई पुस्तकों की भी रचना की थी। इन्द्र विद्यावाचस्पति जीवन में सत्य और अहिंसा के स्थान को सर्वश्रेष्ठ मानते थे।

जीवनी

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति का जन्म भारतवर्ष के नवजागरण या पुनर्जागरण युग में जालंधर शहर में 9 नवम्बर, 1889 को हुआ था। पंडितजी का साहित्यिक जीवन सन् 1910 से प्रारंभ होता है। उन दिनों गुरुकुल से सद्धर्म शीर्षक से एक पत्र निकला करता था। इन्होंने 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र के माध्यम से अपनी पत्रकारिता की रुचि को और बढ़ाया। सद्धर्म प्रचारक में इन्द्रजी कुछ ऐसी मार्मिक टिप्पणी लिखते थे, जिन्हें पढ़कर गणेशंकर विद्यार्थी जैसे पत्रकार भी इन्द्रजी से भेंट करने गुरुकुल पधारे।

पंडित इन्द्रजी ने कुल मिलाकर 32 वर्ष तक हिन्दी-पत्रकारिता की सेवा करते हुए उसकी अभिवृद्धि में बड़ा योगदान किया। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था- 'मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि पंडित इन्द्रजी द्वारा संचालित 'वीर अर्जुन' की सेवाएं सर्वविदित हैं।'

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, मैथिलीशरण गुप्त आदि ने आशीर्वाद देते हुए इन्द्रजी को देश के मूर्धन्य पत्रकार के रूप में स्थान दिया। उस समय हिन्दी

पत्रकारिता के क्षेत्र में दो ही व्यक्ति थे जो लोकप्रियता प्राप्त कर सके, पहले पंडित इन्द्र विद्यावाचस्पति और दूसरे गणेश शंकर विद्यार्थी।

इन्द्र जी ने शिक्षा तथा साहित्य सृजन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। शिक्षा के क्षेत्र में उनका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान गुरुकुल कांगड़ी का संचालन एवं मार्गदर्शन है। इस विश्वविद्यालय के कुलाधिपति के रूप में कार्य करते हुए उन्होंने गुरुकुल की उपाधियों को केन्द्र एवं राज्य सरकारों से मान्यता प्रदान कराने का स्तुत्य एवं सफल कार्य किया। गुरुकुल में हिन्दी माध्यम से तकनीकी विषयों की शिक्षण की व्यवस्था करके इन्होने हिन्दी की अमूल्य सेवा की।

कृतियाँ

ये इतिहास के गम्भिर अध्येता थे। अत: इनकी इतिहास-विषयक रचनाएं अत्यन्त प्रामाणिक एवं उच्च श्रेणी की मानी गयी हैं। 'भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का उदय और अन्त', 'मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण', 'मराठों का इतिहास' उनकी सर्वप्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक कृतियों में 'आर्यसमाज का इतिहास', 'उपनिषदों की भूमिका' तथा 'संस्कृत्ति का प्रवाह' उल्लेखनीय हैं। 'शाह आलम की आँखें' प्रतिनिधि ऐतिहासिक उपन्यास है तो 'नेपोलियन बोनापार्ट की जीवनी', 'महर्षि दयानन्द का जीवन-चरित' उल्लेखनीय जीवन-ग्रन्थ हैं।

इन्द्र जी का भाषा पर पूरा अधिकार था। इनकी शैली में सहज प्रवाह है। वस्तुस्थिति का मार्मिक चित्रण करने की अद्‌भुत क्षमता है। इनकी कृतियाँ हिन्दी का गौरव हैं।

राजनीति तथा पत्रकारिता

इन्द्र जी सार्वजनिक कार्यों में भी शुरू से ही रुचि लेने लगे थे। कांग्रेस संगठन में सम्मिलित होकर उन्होंने दिल्ली को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। 1920-1921 में उनकी गणना दिल्ली के प्रमुख कांग्रेसजनों में होती थी। गुरुकुल के वातावरण के कारण वे 'आर्य समाज' से प्रभावित थे। बाद में उनके ऊपर 'हिन्दू महासभा' का भी प्रभाव पड़ा। पत्रकार के रूप में उन्होंने दिल्ली के 'विजय' और 'सर्वधर्म प्रचारक' का सम्पादन किया। उनको सर्वाधिक ख्याति 'वीर अर्जुन' के सम्पादक के रूप में मिली। वे इस पत्र के 25 वर्ष तक सम्पादक रहे। 'विजय' के एक

अग्रलेख के कारण विदेशी सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया था। 'नमक सत्याग्रह' के समय भी उन्होंने जेल की सजा भोगी।

रचनाएँ

इन्द्र विद्यावाचस्पति ने अनेक पुस्तकों की भी रचना की। उनकी कुछ कृतियाँ निम्नलिखित हैं-

- भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का उदय और अन्त
- मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण
- मराठों का इतिहास
- उपनिषदों की भूमिका
- आर्य समाज का इतिहास

स्वराज्य और चरित्र निर्माण

गांधी जी से मतभेद

इन्द्र जी की मान्यता थी कि व्यक्तिगत जीवन में सत्य और अहिंसा का स्थान सर्वोपरि है, किन्तु अहिंसा को राजनीति में भी विश्वास के रूप में स्वीकार करने के पक्ष में वे नहीं थे। इसलिए उन्होंने गांधी जी से मतभेद होने के कारण 1941 में कांग्रेस से सम्बन्ध तोड़ लिया था।

देहान्त

सन् 1960 को इन्द्र विद्यावाचस्पति का देहान्त हुआ।

25

सी. वाई. चिन्तामणि

सी. वाई. चिन्तामणि स्वतंत्रता पूर्व भारत के प्रतिष्ठित संपादकों तथा उदारवादी दल के संस्थापकों में से एक थे। वे इलाहाबाद के एक साप्ताहिक पत्र 'द इण्डियन पीपुल' और पटना के 'हिन्दुस्तान रिव्यू' का संपादन करते थे। सी. वाई. चिन्तामणि भारतीय राष्ट्रीय उदारवादी (दल) परिसंघ के सदस्य रहे थे। गोलमेज सम्मेलन में उन्हें उदारवादी दल का प्रतिनिधि भी चुना गया था।

परिचय

सी. वाई. चिन्तामणि का जन्म 10 अप्रैल सन् 1880 ई. को हुआ था। वे पत्रकार-राजनीतिज्ञ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और असहमति के अधिकार के लिए लगातार संघर्ष करते रहे। इलाहाबाद से निकलने वाले अखबार 'द लीडर' के संपादक होने के दौरान उन्होंने किसी को नहीं बख्शा। यहां तक कि उन्होंने अपने गुरु गोपाल कृष्ण गोखले तक की भी परवाह नहीं की। वे अखबार के बोर्ड के सदस्यों की आलोचना करने में भी कभी हिचकिचाते नहीं थे और यह उनकी ईमानदारी का ही नतीजा था, जिसने उन्हें हमेशा ही अपने ढंग से काम करने की आजादी दी।

उदारवाद के समर्थक

सी. वाई. चिन्तामणि अपने राजनीतिक जीवन में उदारवाद के समर्थक थे। वे दो बार 'लिबरल पार्टी' (या नेशनल लिबरेशन फेडरेशन) के अध्यक्ष भी चुने गए। वे गांधीवादी सत्याग्रह और असहयोग के समर्थक नहीं थे, वे उन्हें

लोक-लुभावन कदम बताते थे। सी. वाई. चिन्तामणि उस समय कांग्रेस में घर कर रहे असहमति को बर्दाश्त न किए जाने के रुझान से भी काफी व्यथित थे।

स्वाधीनता आंदोलन के दिनों का विख्यात पत्र 'लीडर' के सम्पादक सी. वाई. चिन्तामणि थे। एक बार मोतीलाल नेहरू जो स्वयं भी बोर्ड के सदस्य थे, ने उनके सम्पादकीय को बोर्ड की नीतियों के लिए हानिकार बताया और उसमें कुछ बदलाव का प्रस्ताव रखा। इस पर सी. वाई. चिन्तामणि ने दो टूक लहजे में कहा कि–'बोर्ड के पास मुझे बर्खास्त करने का पूरा अधिकार है, लेकिन मेरे सम्पादकीय को बदलने का अधिकार नहीं है।' इस पर मोतीलाल नेहरू निरुत्तर हो गए।

मालवीय जी से मतभेद

इसी प्रकार एक बार उनका मदन मोहन मालवीय से मतभेद हो गया। उन्होंने उनके आगे अपना त्याग पत्र रख दिया। उस अंदाज में नहीं, जिस अंदाज में आज के राजनीतिज्ञ अपने त्याग पत्रों के द्वारा सत्ता एवं सम्पदा के लिए आलाकमान को 'ब्लैकमेल' करते हैं, बल्कि पूरी गम्भीरता के साथ, संजीदगी के साथ। मालवीय जी ने अपने विवेक और विनम्रता का परिचय दिया और कहा- 'लीडर मालवीय के बिना तो जिंदा रह सकता है, पर सी. वाई. चिन्तामणि के बिना नहीं रह सकता।' यह था प्रेस के मालिकों का समर्पण, प्रेस की स्वतंत्रता और सम्पादक नामक संस्था का गौरव।

26

गंगा प्रसाद वर्मा

गंगा प्रसाद वर्मा सन् 1885 में कांग्रेस के प्रथम स्थापना अधिवेशन मुम्बई में उत्तर प्रदेश से भाग लेने वाले मुख्य प्रतिनिधि थे। उनके पर स्वामी रामतीर्थ का बहुत प्रभाव था। उन्होंने 1883 में 'एडवोकेट' नामक द्वि-साप्ताहिक पत्र का सम्पादन करके अपना सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ किया था।

जीवन परिचय

गंगा प्रसाद वर्मा का जन्म 13 अगस्त, 1863 ई. को उत्तर प्रदेश के हरदोई जिले में एक सम्पन्न खत्री परिवार में हुआ था। अरबी और फारसी की शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे लखनऊ के केनिंग कॉलेज में भर्ती हुए। उनकी रुचि चतुर्दिक घटित विषयों में अधिक थी। अत: वे विद्यालयी शिक्षा पूरी नहीं कर पाए।

राजनीतिक परिचय

गंगा प्रसाद वर्मा पर स्वामी रामतीर्थ का बहुत प्रभाव था। मालवीय जी, लाला लाजपत राय, एनी बेसेंट आदि से भी वे प्रभावित थे। उन्होंने 1883 में 'एडवोकेट' नामक द्वि-साप्ताहिक पत्र का सम्पादन करके अपना सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ किया। फिर उर्दू में 'हिन्दुस्तानी' निकाला। इन पत्रों के माध्यम से राज्य में राजनीतिक चेतना के प्रसार में बड़ी सहायता मिली। वे स्वयं राजनीतिक दृष्टि से इतने जागरूक थे कि 1885 के प्रथम कांग्रेस अधिवेशन मुम्बई में कई साथियों को लेकर सम्मिलित हुए। उनके निमंत्रण पर ही 1892 में कांग्रेस का

अधिवेशन इलाहाबाद में हुआ था। प्रदेश में कांग्रेस की स्थापना का श्रेय भी उन्हीं को है।

लखनऊ के निर्माता

गंगा प्रसाद वर्मा आधुनिक लखनऊ नगर के निर्माता माने जाते हैं। वे नगरपालिका के उपाध्यक्ष थे। शहर का वर्तमान रूप उन्हीं की देन है। उन्होंने नगर में 28 सड़कों का निर्माण करवाया और जल व मल निकासी की योजनाओं के लिए अन्य नगरों को भी परामर्श दिया। वे आर्यसमाज और होमरूल लीग से भी जुड़े थे। इलाहाबाद और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से भी उनका निकट का सम्बन्ध था। वर्षों तक वे प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य रहे। सभी धर्मों के लोगों के प्रति उनका मैत्री भाव था और वे आधुनिक विषयों के साथ प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के भी समर्थक थे।

मृत्यु

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के समर्थक गंगाप्रसाद वर्मा का 23 जून, 1914 ई. को निधन हो गया।

27

महाशय राजपाल

महाशय राजपाल हिन्दी की महान् सेवा करने वाले लाहौर के निवासी थे। उनका लाहौर में प्रकाशन संस्थान था। वह खुद भी विद्वान् थे। राजपाल पक्के आर्य समाजी थे और विभिन्न मतों का अपनी पुस्तकों में तार्किक ढंग से खंडन करते थे। इसी से क्षुब्ध होकर इल्मदीन नाम के एक व्यक्ति ने उस समय छुरा मारकर महाशय राजपाल की हत्या कर दी, जब वह अपनी दुकान पर बैठे हुए थे। हत्यारे को कुछ युवकों द्वारा दौड़कर पकड़ लिया गया था। उसे 'लाहौर उच्च न्यायालय' से फाँसी की सजा हुई थी। देश के बंटवारे के बाद राजपाल का परिवार दिल्ली चला आया था।

जीवन परिचय

महाशय राजपाल का जन्म भारत की सुप्रसिद्ध सांस्कृतिक व ऐतिहासिक नगरी अमृतसर में पंचमी आषाढ़ संवत (सन 1885) को हुआ था। यह काल भारतीय इतिहास में बड़ा महत्त्व रखता है। इस काल में राजपाल जी ने लाला रामदास जी के घर जन्म लेकर अपने कुल को धन्य कर दिया। लाला रामदास जी एक निर्धन खत्री थे। राजपाल प्रारम्भ से ही बहुत संस्कारी थे। वे बुद्धिमान, परिश्रमी व धीरधारी थे। पढ़ाई में बहुत योग्य थे। तब स्वजनों ने यह कल्पना नहीं की थी कि निर्धन कुल में जन्मा और एक सामान्य अर्जीनवीस का यह पुत्र इतिहास के पृष्ठों पर अपनी अमिट छाप छोड़ेगा।

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

जब राजपाल जी छोटे ही थे, तब किसी कारण से उनके पिता घर छोड़कर कहीं निकल गए। उनका फिर कोई अता-पता ही न चला। इस समय बालक राजपाल स्कूल में पढ़ते थे। उनकी माता, वह स्वयं व छोटा भाई सन्तराम अब असहाय हो गए थे। दोनों भाइयों में राजपाल बड़े थे। पिताजी के होते हुए भी परिवार निर्धनता की चक्की में पिसता रहता था और उनके गृह त्याग से परिवार पर और अधिक विपदा आ पड़ी। राजपाल ने इसी दीन-हीन अवस्था में जैसे-तैसे मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। वे पढ़ाई में कुशाग्रबुद्धि और परिश्रमी विद्यार्थी थे। विपत्तियों से घिरकर भी उन्होंने हिम्मत न हारी। कठिन परिस्थितियों ने आपके जीवन को और भी निखार दिया।

व्यावसायिक शुरुआत

उस युग में शिक्षा का प्रचलन बहुत कम था। मिडिल उत्तीर्ण का भी बड़ा आदर होता था, आसानी से नौकरी मिल जाती थी। राजपाल जी हाथ-पाँव मारकर, किसी की सहायता से आगे भी बढ़ सकते थे, परन्तु प्यारी माँ व भाई के निर्वाह का भार उनके ऊपर था। यह कर्तव्य उनको कुछ करने व कमाने के लिए प्रेरित कर रहा था। सोच-समझकर उन्होंने 'किताबत' का धंधा अपनाया। तब पंजाब में उर्दू का प्रभुत्व था। उर्दू की पुस्तक छापने से पहले कम्पोज नहीं की जाती थी। सुलेख लिखने वाले उन्हें एक विशेष कागज पर लिखते थे, इसी कला को 'किताबत' कहते हैं। फिर उनकी छपाई होती थी। सम्भवत: राजपाल जी की आरम्भ से ही लेखन-कला में रुचि थी। इसीलिए उन्होंने कातिब के रूप में कार्य आरम्भ कर दिया। दिन-रात परिवार के भरण-पोषण के लिए जी-जान से कार्य करते थे। पूज्य स्वामी स्वतंत्रानंद जी महाराज ने लिखा है कि "सर्वप्रथम उन्होंने जिस पुस्तक को लिखा वह महर्षि दयानंद कृत 'संस्कार-विधि' का उर्दू अनुवाद था। स्वामी जी महाराज ने यह नहीं लिखा कि यह अनुवाद किसने व कहाँ से छपा था। खोज व जानकारी के अनुसार 'संस्कार-विधि' का प्रथम उर्दू अनुवाद महाशय पूर्णचंद जी ने किया था। वे कैरों, जिला अमृतसर के निवासी थे। यह अनुवाद उसी काल में प्रकाशित हुआ था, जब राजपाल ने मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की थी। यह बीसवीं शताब्दी के आरम्भ की घटना है। इससे यह भी पता चलता है कि वे तब तक निश्चित रूप से वैदिक धर्मी बन चुके थे।

कार्यक्षेत्र

अमृतसर में एक बड़े प्रसिद्ध आर्यसमाजी हकीम फतहचन्द जी रहते थे। उनको एक कर्मचारी की आवश्यकता थी। राजपाल जी को काम की खोज थी। बारह रुपये मासिक पर आपने हकीम जी के पास नौकरी कर ली। अपनी कर्तव्यनिष्ठा, परिश्रमशीलता, सत्यनिष्ठा आदि गुणों से राजपाल ने हकीम जी के हृदय में एक विशेष स्थान बना लिया। आर्यसमाजी होने के कारण भी हकीम जी उनसे बहुत प्यार करते थे। उनके सद्गुणों व सुशीलता के कारण हकीम फतहचन्द इन्हें अपने पुत्र के समान ही मानते व जानते थे। हकीम जी ने स्वयं स्वामी स्वतंत्रानंद जी महाराज को यह बताया था कि राजपाल एक ऐसा सत्यनिष्ठ युवक था, जिसके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति उसके आचरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। वह धर्मात्मा और सदाचार की मूर्ति था।

'बाल सुधार सभा' संगठन की स्थापना

हकीम फतहचन्द जी, राजपाल जी के उन दिनों की एक घटना सुनाया करते थे। होलियों के दिन थे। अमृतसर में होलियों पर अत्यंत अश्लील गीत गाते हुए टोलियाँ निकला करती थीं। युवकों की एक टोली बड़े भद्दे गाने गाते हुए बाजार से निकल रही थी। राजपाल जी उस समय हकीम जी के पास बैठे हुए थे। वे इस मण्डली के गाने को सुनकर चुपके से उठकर उनके पास गए। बड़ी शान्ति व विनम्रता से उन्हें समझाते हुए कहा कि जिन शब्दों को आप लोग बाजार में बोल रहे हो, क्या इन्हें आप अपने घरों में भी बोल सकते हो। राजपाल जी के इस प्रश्न को सुनकर वे लड़के बड़े लज्जित हुए। आपने उन लड़कों को भली प्रकार से जान और पहचान लिया। बात वहीं आई-गई हो गई। होलियों के दिन बीत गए। राजपाल जी ने उन लड़कों से सम्पर्क किया, उनको इकट्ठा किया और एक 'बाल सुधार सभा' नाम का संगठन खड़ा कर दिया। इस सभा के द्वार सबके लिए खुले थे। हिन्दू, सिक्ख, बालक तो इसमें भाग लेते ही थे, मुसलमान बालक भी इसमें सक्रिय रुचि लेते रहे। इस सभा द्वारा बालकों के चरित्र निर्माण का बड़ा ठोस कार्य किया गया। प्रतिदिन रात्रि 8 बजे इस सभा का अधिवेशन आरम्भ हुआ करता था। राजपाल जी सब बालकों को जीवन निर्माण के लिए धर्मोपदेश दिया करते थे। इस सभा में मांस-भक्षण, तम्बाकू व मदिरा पान आदि विषयों पर वाद-विवाद हुआ करते थे। इस सभा के प्रचार से

अनेक युवकों ने दुर्व्यसनों का परित्याग किया। कितने ही युवक कुसंगति से बचे और कल्याण-मार्ग के पथिक बनकर यशस्वी हुए।

मांस भक्षण पर शास्त्रार्थ

महाशय राजपाल को उन्हीं दिनों उक्त सभा में मांस-भक्षण विषय पर एक शास्त्रार्थ करना पड़ा। महाशय जी पारिभाषिक शब्दों में तो शास्त्रार्थ-महारथी नहीं थे, फिर भी उस युग के सभी आर्यसमाजी कार्यकर्ता आवश्यकता पड़ने पर लिखित व मौखिक शास्त्रार्थ करने से पीछे नहीं हटते थे। सब आर्यपुरुष स्वाध्यायशील हुआ करते थे। हकीम फतहचन्द जी बताया करते थे कि राजपाल का एक मुसलमान युवक से उपरोक्त विषय पर शास्त्रार्थ हो गया। उन दिनों अमृतसर में धार्मिक विषयों पर बड़े-छोटे शास्त्रार्थ होते ही रहते थे। आर्य समाज के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी मास्टर आत्माराम जी तथा इस्लाम के नामी शास्त्रार्थ-महारथी मौलाना सनाउल्ला दोनों ही अमृतसर के थे।

उस दिन शास्त्रार्थ में श्रोताओं को राजपाल जी के गहन व विस्तृत अध्ययन का पता चला। अपनी छोटी-सी आयु में आपने धर्म-ग्रंथों का बहुत लग्न से अनुशीलन किया था, इसीलिए आप इस शास्त्रार्थ में विजयी रहे। उस मुस्लिम युवक को महाशय राजपाल की युक्तियों के सामने निरुत्तर होकर मौन होना पड़ा। जिस श्रद्धा, उत्साह व योग्यता का आपने उस दिन परिचय दिया, उससे अमृतसर के आर्यपुरुष आपसे और अधिक प्रेम करने लगे। जब महाशय राजपाल जी ने होश सम्भाला भी न था कि परिवार के भरण-पोषण का भार उनके सिर पर आ पड़ा था। ऐसी स्थिति में जब उन्हें दिन-रात अथक परिश्रम करना पड़ता था, उन्होंने इतना विस्तृत अध्ययन कैसे कर लिया? इस प्रश्न का एक ही उत्तर है। यह था उनकी श्रद्धा का चमत्कार। धुन के धनी राजपाल जी के आचरण का यह पहलू बहुत शिक्षाप्रद है।

कर्मचारियों से व्यवहार

स्वामी और सेवक के सहयोग तथा परस्पर विश्वास से ही व्यापार व संस्थाएँ फलती-फूलती हैं। वर्ग-संघर्ष की भावना से कटुता, कलह व असंतोष पैदा होता है। इससे न कर्मचारी का हित होता है, न व्यापारी का और न ही समाज का। महाशय राजपाल जी ने पर्याप्त समय तक सेवक के रूप में कार्य किया था, फिर स्वामी बनकर सेवकों से कार्य करवाने का सौभाग्य भी उन्हें

प्राप्त हुआ। ऐसे विरले मनुष्य ही मिलेंगे, जिन्होंने सेवक के रूप में भी यश लूटा और फिर स्वामी बनकर भी यशस्वी हुए।

आर्य पुस्तकालय

महाशय राजपाल जी का 'आर्य पुस्तकालय' पुराने पंजाब के आर्यों का संगम-स्थल था। उस युग का, विश्व का सबसे बड़ा आर्यसमाजी प्रकाशन-संस्थान 'आर्य पुस्तकालय-सरस्वती आश्रम' था। यह ठीक है कि यह संस्थान किसी भव्य भवन में तो नहीं था, परंतु भव्य भावनाओं से जनित, पालित व पोषित यह पुस्तकालय श्रद्धा का केंद्र था।

व्यक्तित्त्व

राजपाल जी युवावस्था में ही सदाचारी व परोपकारी थे। उनके सम्पर्क में आने वाले सब लोग उनके सौजन्य की प्रशंसा किया करते थे। हकीम जी ने स्वामी स्वतंत्रानंद जी को बताया था कि वैदिक धर्म के लिए राजपाल के मन में तभी असीम श्रद्धा थी। वह मन, वचन व कर्म से सच्चे व पक्के आर्य थे। उनका धर्मभाव दूसरों के लिए एक उदाहरण था। अपने कर्तव्यों के पालन में वे कभी प्रमाद नहीं करते थे। स्वामी श्रद्धानंद ने एक लेख में लिखा है कि 'उन दिनों पटियाला में एक परिचित प्राध्यापक उन्हें देखकर कन्नी काट गए, मानो कि जानते हुए भी पहचानते नहीं।' लाला लाजपत राय ने स्वयं लिखा है कि 'तब उनके कॉलेज पक्ष के सभी मित्र, एक लाला चंदूलाल के सिवाय, उनको छोड़ गए।' तब आर्यों की छाया से, विशेष रूप से महात्मा मुंशीराम जी से, लोग बचकर चलते थे। ऐसी विकट वेला में एक साधारण, साधनहीन युवक राजपाल ने जिस निर्भीकता व धर्म-भाव का परिचय दिया, उसका वर्णन करने में किसी की भी लेखनी अक्षम है।

विनम्र स्वभाव

पण्डित ज्ञानचंद्र जी ने कहा है कि 'श्री महाशय राजपाल जी की सफलता व लोकप्रियता के कई कारण थे। वे परिश्रमी व सत्यनिष्ठ तो थे ही, साथ ही उनमें विनम्रता व मिठास के दो गुण ऐसे थे, जिनके कारण वे बेगानों को भी अपना बनाना जानते थे। वे दूसरों को प्रायः 'जी' कहकर सम्बोधित किया करते थे। उनके स्वभाव के माधुर्य पर सब रीझ जाते थे।'

हिन्दी प्रकाशन का शुभारम्भ

स्वतंत्रता के पहले पंजाब में हिन्दी का प्रचलन बहुत कम था, हिन्दी के प्रकाशक तो नगण्य थे। अधिकतर पुस्तकें उर्दू या पंजाबी में प्रकाशित होती थीं। उस जमाने में महाशय राजपाल ने 'आर्य पुस्तकालय' तथा 'सरस्वती आश्रम' नामों के अन्तर्गत हिन्दी प्रकाशन का न केवल श्रीगणेश किया, बल्कि वे हिन्दी के प्रचार-प्रसार के सशक्त माध्यम बने। पहले, जब पुस्तक प्रकाशन बिल्कुल अव्यवस्थित था। प्रकाशन कला सीखाने के लिए आज की तरह न कोई सुविधाएं थीं, न ही इस विषय पर कोई प्रामाणिक पुस्तक उपलब्ध थी, राजपाल जी ने स्तरीय प्रकाशन के ऐसे आयाम स्थापित किए कि आज उन पर विश्वास करना भी कठिन लगता है। लाहौर में रहते हुए उन्होंने अनेक पुस्तकें इलाहाबाद के सुप्रसिद्ध 'इंडियन प्रेस' से छपवाई थीं। पूरे संस्करण की प्रतियां लकड़ी की बड़ी पेटियों में बंद होकर इलाहाबाद से दिल्ली आती थीं। उन्होंने रिब्ड एंटिक पेपर का प्रयोग किया, पुस्तकों के बहुरंगी आवरण कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) के सुप्रसिद्ध चित्रकार टी.एन. मित्रा से बनवाए और अनेक पुस्तकों पर राजा रवि वर्मा जैसे श्रेष्ठ कलाकारों की उत्कृष्ट पेटियों का प्रयोग किया। ऐसे सभी चित्र बहुरंगी हाफटोन में होते थे।

राजपाल जी ने जब 'आर्य पुस्तकालय' नाम से आर्य साहित्य प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया था तो 'सरस्वती आश्रम ग्रंथमाला' के रूप में एक से एक उत्तम पुस्तक-श्रृंखला जनता को भेंट की। इस ग्रंथमाला की दूसरी पुस्तक थी 'सत्योपदेश माला'। यह स्वामी सत्यानंद जी के प्रवचनों व लेखों का संग्रह था, जो राजपाल जी ने स्वयं श्रद्धेय स्वामी जी के प्रवचनों को सुनकर लिपिबद्ध किया था। राजपाल जी ने उस जमाने में अंग्रेजी भाषा की चर्चित पुस्तकों के प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किए थे, जैसे- 'मेरी स्टोप्स' की लोकप्रिय पुस्तक 'मेरिड लव' का पं. संतराम बी. ए. द्वारा हिन्दी अनुवाद 'विवाहित प्रेम' नाम से। दूसरी ओर ऐसे विषयों की पुस्तकों को हिन्दी में प्रकाशित करने का साहस भी किया, जो वर्जित थे। भारत में परिवार-नियोजन पर सबसे पहली हिन्दी पुस्तक 'सन्तान संख्या का सीमा बंधन' उन्होंने प्रकाशित की थी। यह 300 पृष्ठों की सचित्र प्रामाणिक पुस्तक थी। 'बर्थ कंट्रोल' के लिए तब हिन्दी का कोई शब्द प्रचलित नहीं हुआ था, क्योंकि जनसाधारण में जन्म निरोध की न समझ थी और न ही उसकी उपयोगिता का ज्ञान था। पुस्तक प्रकाशित होने पर बवाला मचा था, कि पुस्तक का विषय ही अनैतिक है, आदि।

'रंगीला रसूल'

उन्हीं दिनों मुस्लिमों की ओर से दो पुस्तकें प्रकाशित की गई- 'कृष्ण तेरी गीता जलानी पड़ेगी' और 'उन्नीसवीं सदी का महर्षि'। उन दोनों पुस्तकों में योगेश्वर श्रीकृष्ण और महर्षि दयानंद पर बहुत ही भद्दे और अश्लील शब्दों में कीचड़ उछाला गया था। जैसा कि उस समय का चलन था, इन दोनों पुस्तकों के प्रत्युत्तर में महाशय राजपाल जी ने 'रंगीला रसूल' नाम की पुस्तक सन् 1923 में प्रकाशित की। इस पुस्तक के लेखक के नाम के स्थान पर 'दूध का दूध और पानी का पानी' लिखा था। वास्तव में इसके लेखक आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं. चमूपति थे, जो सम्भावित प्रतिक्रिया के कारण अपना नाम नहीं देना चाहते थे। उन्होंने महाशय राजपाल जी से यह वचन ले लिया था कि चाहे कितनी भी विकट परिस्थितियां क्यों न बनें, वे किसी को भी उक्त पुस्तक के लेखक के रूप में उनका नाम नहीं बताएंगे।

राजपाल एण्ड सन्स की स्थापना

राजपाल एण्ड सन्स हिन्दी पुस्तकों के एक प्रमुख प्रकाशक हैं। इसकी स्थापना 1912 में लाहौर में महाशय राजपाल द्वारा की गयी थी। आरम्भ में इस प्रकाशन ने हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी तथा पंजाबी भाषाओं में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित कीं। भारत के विभाजन के उपरान्त 1947 में यह प्रकाशन दिल्ली आ गया और भारत के प्रमुख हिन्दी प्रकाशक के रूप में जाने जाने लगा। महाशय राजपाल की विलक्षण सूझ को वही लोग जानते हैं, जिन्होंने उनके द्वारा प्रकाशित व सम्पादित पुस्तकों की उनके द्वारा लिखित भूमिकाएँ पढ़ी हैं। उनके द्वारा स्थापित आर्य पुस्तकालय व सरस्वती आश्रम का एक गौरवपूर्ण इतिहास है। आर्य सामाजिक साहित्य की कई ऐसी पुस्तकें हैं, जो अपने-अपने विषय की बेजोड़ पुस्तकें मानी जाती हैं। ऐसी बीसियों पुस्तकों को लिखने का विचार उन पुस्तकों के लेखकों को महाशय राजपाल जी ने ही सुझाया। महाशय जी ने 'भक्ति दर्पण' नाम का एक गुटका स्वयं सम्पादित किया था। सन् 1997 में 'राजपाल एण्ड संस' ने इसका 60वाँ संस्करण निकाला था। प्रकाशक समय-समय पर इसका संशोधन करते करवाते रहे हैं।

लेखन एवं संपादन क्षेत्र

सन् 1920 और 1930 के दशक में महाशय राजपाल ने चार भाषाओं में एक साथ स्तरीय पुस्तकें प्रकाशित कीं। हिन्दी और उर्दू में उनके द्वारा प्रकाशित

पुस्तकों की संख्या 200 से ऊपर थी। गुरुमुखी भाषा में केवल कुछेक पुस्तकें ही प्रकाशित कीं। अंग्रेजी में सुनियोजित ढंग से अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं, जो उस समय के विख्यात विद्वानों द्वारा लिखी गई थीं, जिनका अंग्रेजी पर पूरा अधिकार था। पं. गुरुदत्त, एम.ए., जो गवर्नमेंट कॉलेज, लाहौर में प्रोफेसर थे और डी.ए.वी. कॉलेज के संस्थापकों में थे, उनकी 400 पृष्ठ की पुस्तक 'विज़्डम ऑफ रिशीज' थी। अपने विषय पर यह पुस्तक आज भी प्रामाणिक दस्तावेज के समान मानी जाती है, हालांकि इस बात को 80 वर्ष से अधिक हो गए हैं। इसी प्रकार प्रो. टी. ऐल. वासवानी की पुस्तक 'दि टार्च-बेयरर' प्रकाशित की। वासवानी जी उस समय के चर्चित विद्वान् लेखक व सिंधी समाज के प्रबुद्ध विचारक थे। एक और पुस्तक थी, जो आर्य समाज के दस नियमों का अंग्रेजी में परिचय देती है, और जिसके लेखक थे- पं. चमूपति, जो बाद में गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य बने। पुस्तक का नाम था 'दि टैन कमाण्डमेंट्स।'

इस पुस्तक के आज तक अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त भी अन्य कई पुस्तक अंग्रेजी में प्रकाशित की गईं। विचार स्वातन्त्र्य और प्रकाशन की स्वतंत्रता सदियों से कठिन परीक्षा से गुजरती रही है। इतिहास साक्षी है कि सम्राटों ने और धर्मगुरुओं ने, जब भी कोई पुस्तक अथवा विचारधारा उनके मत के प्रतिकूल हुई, तो उसे दबा दिया गया या फिर पुस्तक की प्रतियां जब्त कर ली गईं। ऐसे विचारकों और लेखकों को कठिन से कठिन सजा और मृत्यु दण्ड देने तक में जरा भी हिचक नहीं की जाती थी। अनेक लेखकों को कारावास के दण्ड भुगतने पड़े, उन्हें कत्ल कर दिया गया, उन पर मौत के फतवे लगाए गए और उनके सिर पर इनाम भी रखे गए। महाशय राजपाल जी ने प्रकाशन की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की बलि दी। पिछली सदी के पहले तीन दशक अर्थात् सन् 1930 तक विभिन्न धर्मों में एक-दूसरे की तीखी आलोचना, वाद-विवाद, शास्त्रार्थ, बहस-मुबाहसों का चलन था। एक धर्मावलम्बी अन्य धर्मों के मंतव्यों पर दो टूक भाषा में लिखा करता था और अपने धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करता था।

कुशल संवाददाता

महाशय राजपाल ने स्वयं एक पुस्तक की भूमिका में यह लिखा है कि 'वे बहुत तीव्रगति से लिखते थे।' उस युग में भारतीय भाषाओं में टंकण मशीनें व शीघ्रलिपि का प्रचलन अभी नहीं हुआ था। अतः सुलेख व शीघ्र लिखने वाले

लेखकों को कार्यालय में प्राथमिकता दी जाती थी। पुराने आर्य-पत्रों को उलटने-पलटने से आश्चर्यजनक तथ्य हमारे सामने आता है। आर्य समाज बच्छोवाली लाहौर का 29वाँ वार्षिकोत्सव था। महाशय जी 'सद्धर्म प्रचारक' के संवाददाता के रूप में इसमें सम्मिलित हुए। इन्होंने इस उत्सव के समय व्याख्यानों-प्रवचनों की आदि विस्तृत रिपोर्ट तैयार की। अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों सहित यह वृत्तान्त 'सद्धर्म प्रचारक' को प्रकाशनार्थ दिया था। राजपाल जी का कार्यक्षेत्र पंजाब रहा। उनकी व्यक्तिगत स्थिति ऐसी थी कि वह दूर-दूर नहीं जा सकते थे, परंतु उनका कार्य ऐसा था कि उनका नाम देशव्यापी हो गया था। देश की सीमाओं को भी लांघकर विदेशों में जहाँ-जहाँ भी आर्यसमाजी हैं, वहाँ-वहाँ आर्य साहित्य के कारण महाशय राजपाल जी का व्यक्तित्त्व व्यापक हो गया।

अच्छे लेखक एवं कुशल सम्पादक

महाशय राजपाल जी स्वयं अच्छे लेखक एवं कुशल सम्पादक थे। उन्होंने अनेक पुस्तकें स्वयं लिखीं तथा अन्य सुयोग्य लेखकों के लेखों तथा भाषणों को लिपिबद्ध करके और सम्पादित करके प्रकाशित किया। अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानंद जी के पत्र 'सद्धर्म-प्रचारक' में वे स्वामी के सहायक सम्पादक थे। कालांतर में वे लाहौर से निकलने वाले साप्ताहिक 'प्रकाश' के वर्षों सह-सम्पादक रहे। इसी पृष्ठभूमि के साथ उन्होंने पुस्तक प्रकाशन के क्षेत्र में तब पदार्पण किया, जब इस व्यवसाय में संघर्ष और जोखिम अधिक था, पैसा कम। परन्तु उस जमाने में वही लोक प्रकाशन में आते थे, जो आदर्शवादी थे और अपनी धुन के पक्के, और जो पुस्तकों के माध्यम से सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना जगाना चाहते थे। महाशय राजपाल जी की आयु उनके बलिदान के समय केवल 44 वर्ष थी। अपने छोटे से लगभग पन्द्रह वर्षों के प्रकाशकीय जीवन काल में उन्होंने न केवल हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन में नए कीर्तिमान स्थापित किए, अपितु सुदूर देशों में बसे भारतीय मूल के लोगों तक उन्हें पहुँचाने का भी योजनाबद्ध ढंग से सफल प्रयत्न किया। उनके जीवन काल में उनके प्रकाशन मॉरिशस, फिजी, पूर्वी अफ्रीका, ब्रिटिश तथा डच गायना आदि स्थानों पर बड़ी संख्या में जाते थे। पुस्तकों के माध्यम से भारतीय विचारधारा और संस्कृति के संदेशवाहक साहित्य के निर्यात में भी उनकी ऐतिहासिक भूमिका रही थी। श्रेष्ठ साहित्य के प्रकाशन के इतिहास में महाशय राजपाल का नाम सदा स्वर्ण अक्षरों

में लिखा जाएगा। उन्होंने न केवल वैदिक धर्म के बारे में, उत्तम साहित्य के प्रकाशन में नये-नये कीर्तिमान स्थापित किए वरन् समाज सुधार व राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के आंदोलनों को बल प्रदान करते हुए सैकड़ों महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन भी किया।

मृत्यु

'रंगीला रसूल' के प्रकाशन के बाद से महाशय राजपाल जी पर तीन जानलेवा हमले हुए, जिसमें 6 अप्रैल, 1929 का आक्रमण राजपाल जी के लिए प्राणलेवा बना। महाशय राजपाल ने अपने वचन की रक्षा अपने प्राणों की बलि देकर की, पर पंडित चमूपति सरीखे विद्वान् पर आंच तक न आने दी। 1924 में छपी 'रंगीला रसूल' बिकती रही, पर किसी ने उसके विरुद्ध शोर न मचाया। फिर महात्मा गाँधी ने अपनी मुस्लिम परस्त नीति में इस पुस्तक के विरुद्ध एक लेख लिखा। इस पर कट्टरवादी मुसलमानों ने महाशय राजपाल के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ दिया। ब्रिटिश सरकार ने उनके विरुद्ध 153 ए धारा के अधीन अभियोग चला दिया। अभियोग चार वर्ष तक चला। राजपाल जी को छोटे न्यायालय ने डेढ़ वर्ष का कारावास तथा 1000 रुपये का दंड सुनाया। इस निर्णय के विरुद्ध अपील करने पर दंड एक वर्ष तक कम कर दिया गया। इसके पश्चात् मामला हाई कोर्ट में गया।

दिलीप सिंह की अदालत ने महाशय राजपाल को दोषमुक्त करार दे दिया। मुस्लिम समुदाय इस निर्णय से भड़क उठा। खुदाबख्श नामक एक पहलवान मुसलमान ने महाशय जी पर हमला कर दिया, जब वे अपनी दुकान पर बैठे थे। पर संयोग से आर्य संन्यासी स्वतंत्रानंद जी महाराज एवं स्वामी वेदानन्द जी महाराज वहां उपस्थित थे। उन्होंने घातक को ऐसा कसकर दबोचा कि वह छूट ना सका। उसे पकड़ कर पुलिस के हवाले कर दिया गया। उसे सात वर्ष का दंड मिला। रविवार 8 अक्टूबर, 1927 को स्वामी सत्यानन्द जी महाराज को महाशय राजपाल समझ कर अब्दुल अजीज नामक एक मतान्ध मुसलमान ने एक हाथ में चाकू, एक हाथ में उस्तरा लेकर आक्रमण कर दिया। स्वामी जी को घायल कर वह भागना ही चाह रहा था कि पड़ोस के दुकानदार महाशय नानकचंद जी कपूर ने उसे पकड़ने का प्रयास किया। इस प्रयास में वे भी घायल हो गए, तो उनके छोटे भाई लाला

चूनीलाल जी उसकी ओर लपके। उन्हें भी घायल करते हुए हत्यारा भाग निकला, पर उसे चौक अनारकली पर पकड़ लिया गया। उसे 14 वर्ष का दंड मिला और तदन्तर तीन वर्ष के लिए शांति की गारंटी का दंड सुनाया गया। स्वामी सत्यानन्द जी के घाव ठीक होने में लगभग डेढ़ महीना लगा। 6 अप्रैल, 1929 को महाशय राजपाल अपनी दुकान पर विश्राम कर रहे थे, तभी इल्मदीन नामक एक मतान्ध मुसलमान ने महाशय जी की छाती में छुरा घोंप दिया, जिससे महाशय जी का तत्काल प्राणांत हो गया। हत्यारा अपने प्राण बचाने के लिए भागा और महाशय सीताराम जी के लकड़ी के टाल में छुप गया। महाशय जी के सपूत विद्यारतन जी ने उसे कस कर पकड़ लिया। पुलिस हत्यारे को पकड़ कर ले गयी। सन् 1924 में उन पर मुकदमा शुरू हुआ था और सन् 1929 में राजपाल जी का बलिदान हुआ। इन पांच वर्षों में उन्हें अनेक बार यह कहा गया कि आप असली लेखक का नाम बता दें, तो हमें आपसे कोई शिकायत नहीं रहेगी। यह बात उस जमाने के प्रमुख मुस्लिम दैनिक पत्र 'जमींदार' में भी प्रकाशित हुई थी, परन्तु महाशय राजपाल जी ने एक ही बात दोहराई थी कि इस पुस्तक के लेखन-प्रकाशन की पूरी जिम्मेदारी मेरी ही है, अन्य किसी की नहीं। उन्होंने जो वचन दिया, उसे अंत तक निभाया। इन्हीं पांच वर्षों के दौरान उन्हें यह भी कहा गया था कि आप इस पुस्तक का प्रकाशन बन्द कर दें और माफी मांग लें। राजपाल जी ने एक ही उत्तर दिया कि 'मैं विचार-स्वातंत्र्य और प्रकाशन की स्वतंत्रता में विश्वास रखता हूँ और अपनी इस मान्यता के लिए बड़े से बड़ा दण्ड भुगतने के लिए तैयार हूँ।'

ब्रिटिश सरकार द्वारा मुकदमे

महाशय राजपाल जी द्वारा प्रकाशित अनेक पुस्तकों पर तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने मुकदमा चलाया था। जुर्माने किए और ऐसी पुस्तकों के संस्करण भी जब्त कर लिए। इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् भाई परमानन्द ने, जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने काले पानी की सजा दी थी, इतिहास की अनेक पुस्तकें राष्ट्रीय दृष्टिकोण से लिखी थीं। ये सभी पुस्तकें राजपाल जी ने प्रकाशित की थीं। इनमें से 'तारीख-ए-हिन्द' (भारत का इतिहास) पुस्तक छपते ही जब्त की गई और मुकदमा भी चला। इसी तरह एक अन्य पुस्तक

'देश की बात', जो हिन्दी में प्रकाशित हुई थी, उस पर बनारस की कोर्ट में मुकदमा चला, जिसके सिलसिले में उन्हें अनेक बार लाहौर से बनारस की यात्राएं करनी पड़ीं। अन्य भी ऐसी अनेक पुस्तकें थीं, जिनके प्रकाशन के कारण वे ब्रिटिश सरकार के कोपभाजन बने, जैसे- डॉ. सत्यपाल द्वारा लिखित 'पंजाब-बीती अथवा जलियावाला बाग का हत्याकांड', 'कालेपानी के कारावास की कहानी' (भाई परमानन्द) इत्यादि।

28

मोहम्मद अली जौहर

मोहम्मद अली जौहर भारत के प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी, पत्रकार और शिक्षाविद थे। इन्होंने सन् 1911 में 'कामरेड' नामक साप्ताहिक समाचार पत्र निकाला था। तत्कालीन अंग्रेज सरकार द्वारा 1914 में इस पत्र पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था तथा मोहम्मद अली को चार साल की सजा दी गई। मोहम्मद अली ने 'खिलाफत आन्दोलन' में भी भाग लिया और अलीगढ़ में 'जामिया मिलिया विश्वविद्यालय' की स्थापना की, जो बाद में दिल्ली लाया गया। ये रायपुर रियासत के शिक्षाधिकारी भी बनाये गए थे।

जन्म

मोहम्मद अली का जन्म 10 दिसम्बर, 1878 ई. में रामपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ था। ये मौलाना शौकत अली के भाई थे। मोहम्मद अली और मौलाना शौकत अली भारतीय राजनीति में 'अली बन्धुओं' के नाम से प्रसिद्ध थे। मोहम्मद अली रूहेला जनजाति के पठान थे। उनके पिता का नाम अब्दुल अली खान और माता का नाम आबादी बानो बेगम था। जब मौलाना मोहम्मद अली 5 वर्ष के थे तो उनके पिता की मृत्यु हो गई। पिता की मृत्यु के बाद सारी जिम्मेदारी उनकी माता को निभानी पड़ी। उनकी माता ने ही उनका पालन पोषण किया।

शिक्षा

मोहम्मद अली ने बरेली, आगरा और इंग्लैण्ड में शिक्षा प्राप्त की। सन् 1896 ई. में इन्होंने बी.ए. की डिग्री इलाहाबाद से प्राप्त की थी।

अपने पिता की मृत्यु के बाद उर्दू और फारसी की प्रारंभिक शिक्षा मोहम्मद अली को घर से ही प्राप्त हुई। बाद में उन्हें हाई स्कूल की पढ़ाई के लिए बरेली भेज दिया गया और वहां से उन्होंने हाई स्कूल की परीक्षा पास की। आगे की पढ़ाई के लिए वे अलीगढ़ गए और वहां पर बीए की परीक्षा पास की। मौलाना मोहम्मद अली के बड़े भाई शौकत अली की तमन्ना थी कि मौलाना जौहर आईसीएस (इंडियन सिविल सर्विसेज) की परीक्षा पास करें। इसके लिए उन्हें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में भेजा गया, लेकिन वहां पर मौलाना मोहम्मद अली सफल नहीं हो पाए।

व्यावसायिक शुरुआत

मौलाना मोहम्मद अली ने लंदन से लौटने के बाद रामपुर राज्य में मुख्य शिक्षा अधिकारी के रूप में कार्य शुरू किया। उन्होंने वहां पर बड़ौदा राज्य में भी नौकरी की। उन्होंने कोलकाता में 1911 में 'कामरेड' नाम का एक साप्ताहिक अखबार निकाला और 1912 में वे दिल्ली आ गए। इसके बाद मोहम्मद अली ने सन् 1913 में अपना दूसरा अखबार 'हमदर्द' नाम से शुरू किया। उस समय अंग्रेजी अखबार 'कामरेड' और उर्दू दैनिक 'हमदर्द' अखबार अपने समय के मशहूर अखबार माने जाते थे।

आंदोलन

मोहम्मद अली मुस्लिमों की तरफ से ब्रिटिश नीतियों के एक पृथक आलोचक थे। मोहम्मद अली ने 'खिलाफत आंदोलन' का समर्थन किया और आंदोलन में अपनी अहम भूमिका निभाई। मौलाना साहब को 1915 में गिरफ्तार करके 4 वर्ष के लिए जेल भेज दिया गया था। एक नए नेशनल "मुस्लिम यूनिवर्सिटी" की स्थापना की जो "जामिया मिलिया इस्लामिया" के रूप में जाने गई। इन्होंने 1986 में ढाका में हुई 'अखिल भारतीय मुस्लिम लीग' की बैठक में भाग लिया। 1918 में इसके अध्यक्ष बने। खिलाफत आंदोलन के दौरान वे 'खिलाफ समिति' के अध्यक्ष चुने गए तथा 1919 में इस आंदोलन के क्रम में इंग्लैंड तथा मुस्लिम नेताओं के दल का प्रतिनिधित्व किया।

1923 में वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उन्होंने 'नेहरू रिपोर्ट' का विरोध किया तथा 1931 में संपन्न गोलमेज सम्मेलन में मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया।

देहान्त

सन् 1930 में मोहम्मद अली लन्दन में प्रथम गोलमेज सम्मेलन में उपस्थित हुए। जहाँ 4 जनवरी, 1931 में उनका देहान्त हो गया।

29

देशबंधु गुप्त

देशबंधु गुप्त प्रसिद्ध राष्ट्र भक्त, स्वतंत्रता सेनानी और पत्रकार थे। अपने विद्यार्थी जीवन में ही देशबंधु गुप्त राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े थे। उनसे प्रभावित होकर ही लाला लाजपत राय ने उन्हें अपने साथ ले लिया था। गुप्त जी में संगठन करने की बड़ी क्षमता थी। वर्ष 1942 में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान इन्हें गिरफ्तार किया गया और फिर 1945 में ही ये जेल से बाहर आ सके। एक पत्रकार के रूप में भी देशबंधु गुप्त जाने जाते थे। स्वामी श्रद्धानन्द ने इन्हें राष्ट्रीय पत्र 'तेज' का सम्पादक नियुक्त किया था। 1948 में 'अखिल भारतीय समाचार पत्र सम्पादक सम्मेलन' के अध्यक्ष भी आप चुने गए थे। गुप्त जी हमेशा 'जाति प्रथा' का विरोध करते रहे।

जन्म

देशबंधु गुप्त जी का जन्म 14 जुलाई, 1900 ई. को पानीपत, हरियाणा के एक व्यवसायी परिवार में हुआ था। उनके पिता लाला शादीलाल पक्के आर्य समाजी थे। इनके घर में वैदिक रीति-रिवाजों का पूरी तरह से पालन होता था। इसका पूरा प्रभाव देशबंधु गुप्त के जीवन पर पड़ा।

शिक्षा

देशबंधु गुप्त की आरम्भिक शिक्षा उन दिनों व्यवसायी लिखा-पढ़ी में प्रचलित महाजनी लिपि में हुई। फिर वे नगरपालिका के स्कूल और अंबाला के 'आर्य वैदिक हाईस्कूल' में भर्ती हुए। देशबंधु गुप्त ने उच्च शिक्षा के लिए

दिल्ली के 'हिन्दू कॉलेज' में प्रवेश लिया। यह उनके जीवन में एक निर्णायक मोड़ था।

आन्दोलन तथा गिरफ्तारी

जब गुप्त जी उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, तब उसी अवधि में कई इतिहास प्रसिद्ध घटनाएं घटीं। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में रॉलेट एक्ट के विरोध में पहला व्यापक आन्दोलन चला। जलियाँवाला बाग में भीषण हत्याकांड हुआ और भारत की प्रबुद्ध जनता ने एक स्वर से ब्रिटिश राजकुमार की भारत-यात्रा का विरोध किया। विद्यार्थी जीवन में ही देशबंधु गुप्त राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े और गिरफ्तार कर लिये गए।

लालाजी का साथ

लाला लाजपत राय गुप्त जी की प्रतिभा से काफी प्रभावित हुए। ये उनकी प्रतिभा ही थी, जिससे प्रभावित होकर लाला जी ने उन्हें अपने साथ ले लिया। देशबंधु गुप्त को आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता तथा देशभक्त स्वामी श्रद्धानन्द के साथ जेल में रहने का भी अवसर मिला। महात्मा गाँधी के प्रेरक व्यक्तित्त्व से भी वे प्रभावित हुए। इस प्रकार उनके विचारों में प्राचीनता और आधुनिकता के संयुक्त दर्शन होते थे।

संगठन क्षमता

देशबंधु गुप्त में संगठन की बड़ी क्षमता थी। ब्रिटेन के राजकुमार की भारत यात्रा के समय सरकारी अधिकारियों ने उनके स्वागत के लिए दिल्ली में दलितों की एक सभा का आयोजन किया था। अपनी चतुरता से देशबंधु ने मंच पर कब्जा करके सभा को भंग कर दिया। तभी से उनकी गणना दिल्ली के प्रमुख कांग्रेस जनों में होने लगी। इसके बाद जितने भी राष्ट्रीय आन्दोलन हुए, उन सब में उन्होंने सक्रिय भाग लिया और जेल की सजाएं भोगीं। 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान भी वे गिरफ्तार हुए और फिर 1945 में ही जेल से बाहर आ सके।

पत्रकार

एक पत्रकार के रूप में भी देशबंधु गुप्त प्रसिद्ध थे। उनकी पत्रकारिता का लाला लाजपत राय के साथ आरंभ हुआ। लालाजी 'वंदेमातरम्' नामक पत्र के

लिए बोल कर देशबंधु को लेख लिखवाया करते थे। तभी से उनकी भी इस क्षेत्र में रुचि बढ़ी। वर्ष 1923 में स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने राष्ट्रीय पत्र 'तेज' का उन्हें संपादक बना दिया था। आगे चलकर पत्रकार जगत् में उन्होंने इतनी प्रसिद्धि पाई कि 1948 में 'अखिल भारतीय समाचार पत्र संपादक सम्मेलन' के अध्यक्ष चुन लिए गए।

जाति प्रथा के विरोधी

देशबंधु गुप्त जीवन-भर राष्ट्रीय और सामाजिक गतिविधियों से जुड़े रहे। वे आर्य समाज के अनुयायी और सांप्रदायिकता की भावना से दूर थे, परंतु हिन्दुओं को दबाकर अन्य धर्मावलंबियों को आगे बढ़ाना उन्हें स्वीकार नहीं था। वे जाति-प्रथा के प्रबल विरोध थे।

निधन

दुर्भाग्य से वर्ष 1951 में एक विमान दुर्घटना में देशबंधु गुप्त का देहांत हो गया। यदि यह विमान दुर्घटना न घटी होती तो वही दिल्ली के प्रथम मुख्यमंत्री बने होते।

30

राजा लक्ष्मण सिंह

राजा लक्ष्मण सिंह भारतेंदु हरिश्चंद्र युग से पूर्व की हिन्दी गद्य शैली के प्रमुख विधायक थे। इन्होंने हिन्दी को हिन्दी संस्कृति के अनुकूल संस्कृतनिष्ठ बनाने की चेष्टा की। इन्होंने आगरा से प्रजा-हितैषी पत्र निकाला और कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम्, रघुवंश एवं मेघदूतम् का हिन्दी में अनुवाद किया।

जीवनी

लक्ष्मण सिंह का जन्म आगरा के वजीरपुरा नामक स्थान पर 9 अक्टूबर 1826 ई. को हुआ था। 13 वर्ष की अवस्था तक आप घर पर ही संस्कृत और उर्दू की शिक्षा ग्रहण करते रहे और सन् 1839 में अंग्रेजी पढ़ने के लिए आगरा कालेज में प्रविष्ट हुए। कालेज की शिक्षा समाप्त करते ही पश्चिमोत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेंट गर्वनर के कार्यालय में अनुवादक के पद पर नियुक्त हुए। आपने बड़ी योग्यतापूर्वक कार्य किया और 1855 में इटावा के तहसीलदार नियुक्त हुए। सन् 1857 के विद्रोह में आपने अंग्रेजों की भरपूर सहायता की और अंग्रेजों ने उन्हें पुरस्कारस्वरूप डिप्टी कलक्टरी का पद प्रदान किया। 1870 ई. में राजभक्ति के परिणामस्वरूप लक्ष्मण सिंह जी को 'राजा' की उपाधि से सम्मानित किया।

अंग्रेज सरकार की सेवा में रहते हुए भी लक्ष्मण सिंह का साहित्यानुराग जीवित रहा। सन् 1861 में इन्होंने आगरा से 'प्रजा हितैषी' नामक पत्र निकाला। सन् 1863 में महाकवि कालिदास की अमर कृति 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का हिंदी अनुवाद 'शंकुतला नाटक' के नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें हिंदी की खड़ी बोली का जो नमूना आपने प्रस्तुत किया उसे देखकर लोग चकित रह गए।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने अपनी 'गुटका' में इस रचना को स्थान दिया। उस समय के प्रसिद्ध हिंदी प्रेमी फ्रेडरिक पिन्काट उनकी भाषा और शैली से बहुत प्रभावित हुए और 1875 में इसे इंग्लैंड में प्रकाशित कराया। इस कृति से लक्ष्मण सिंह को पर्याप्त ख्याति मिली और इसे इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा में पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकार किया गया। इससे लेखक को धन और सम्मान दोनों मिले। इस सम्मान से राजा साहब को अधिक प्रोत्साहन मिला और उन्होंने 1877 में कालिदास के 'रघुवंश' महाकाव्य का हिंदी अनुवाद किया और इसकी भूमिका में अपनी भाषा संबंधी नीति को स्पष्ट करते हुए कहा-

हमारे मत में हिंदी और उर्दू दो बोली न्यारी-न्यारी हैं। हिंदी इस देश के हिंदू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमानों और फारसी पढ़े हुए हिंदुओं की बोलचाल है। हिंदी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरबी फारसी के। परंतु कुछ आवश्यक नहीं है कि अरबी-फारसी के शब्दों के बिना हिंदी न बोली जाए और न हम उस भाषा को हिंदी कहते हैं जिसमें अरबी-फारसी के शब्द भरे हों।

सन् 1881 ई. में आपका 'मेघदूत' के पूर्वार्ध और 1883 ई. में उत्तरार्ध का पद्यानुवाद प्रकाशित हुआ जिसमें-चौपाई, दोहा, सोरठा, शिखरिणी, सवैया, छप्पय, कुंडलिया और धनाक्षरी छंदों का प्रयोग किया गया है। इस पुस्तक में अवधी और ब्रजभाषा, दोनों के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। यह अपने ढंग का अनूठा प्रयोग है।

आप कलकत्ता विश्वविद्यालय के 'फेलो' और 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' के सदस्य रहे। सन् 1888 ई. में सरकार की सेवा से मुक्त होने पर आप आगरा की चुंगी के बाइस चेयरमैन हुए और आजीवन इस पद पर बने रहे।

अनुवादक के रूप में राजा लक्ष्मण सिंह को सर्वाधिक सफलता मिली। आप शब्द-प्रतिशब्द के अनुवाद को उचित मानते थे, यहाँ तक कि विभक्ति प्रयोग और पदविन्यास भी संस्कृत की पद्धति पर ही रहते थे। राजा साहब के अनुवादों की सफलता का रहस्य भाषा की सरलता और भावव्यंजना की स्पष्टता है। उनकी टकसाली भाषा का प्रभाव उस समय के सभी लोगों पर पड़ा और तत्कालीन सभी विद्वान् उनके अनुवाद से प्रभावित हुए।

31

राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द'

राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' हिन्दी के उन्नायक एवं साहित्यकार थे। वे शिक्षा-विभाग में कार्यरत थे। उनके प्रयत्नों से स्कूलों में हिन्दी को प्रवेश मिला। उस समय हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकों का बहुत अभाव था। उन्होंने स्वयं इस दिशा में प्रयत्न किया और दूसरों से भी लिखवाया। आपने 'बनारस अखबार(1845)' नामक एक हिन्दी पत्र निकाला और इसके माध्यम से हिन्दी का प्रचार-प्रसार किया तथा यह पत्रिका साप्ताहिक थी। इनकी भाषा में फारसी-अरबी के शब्दों का अधिक प्रयोग होता था।

राजा साहब 'आम फहम और खास पसंद' भाषा के पक्षपाती और ब्रिटिश शासन के निष्ठावान् सेवक थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इन्हें गुरु मानते हुए भी इसलिए इनका विरोध भी किया था। फिर भी इन्हीं के उद्योग से उस समय परम प्रतिकूल परिस्थितियों में भी शिक्षा विभाग में हिंदी का प्रवेश हो सका। साहित्य, व्याकरण, इतिहास, भूगोल आदि विविध विषयों पर इन्होंने प्रायः 35 पुस्तकों की रचना की जिनमें इनकी 'सवानेह उमरी' (आत्मकथा), 'राजा भोज का सपना', 'आलसियों का कोड़ा', 'भूगोल हस्तामलक' और 'इतिहास तिमिर नाशक' उल्लेख्य हैं।

जीवन परिचय

शिवप्रसाद सितारेहिंद का जन्म बनारस की 'भाट की गली' में माघ शुक्ल द्वितीया, संवत् 1880 तदनुसार 3 फरवरी 1824 को जैन परिवार में हुआ था। जागेश्वर महादेव की कृपा से उत्पन्न समझकर नाम शिवप्रसाद रखा गया। घर

पर और स्कूल में संस्कृत, हिंदी, बँगला, फारसी, अरबी और अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की।

इनके पिता का नाम गोपीचंद था। पूर्वजों का मूल स्थान रणथंभोर था। वंश के मूल पुरुष गोखरू से ग्याहरवीं पीढ़ी में उत्पन्न भाना नामक इनका पूर्वज अलाउद्दीन खिलजी के साथ रणथंभोर विजय के बाद चंपानेर चला गया। इनके एक पूर्वज को शाहजहाँ ने 'राय' की और दूसरे पूर्वज को मुहम्मदशाह ने 'जगतसेठ' की उपाधि दी थी। नादिरशाही में परिवार के दो आदमियों के मारे जाने पर इनका परिवार मुर्शिदाबाद चला गया। बंगाल के सूबेदार कासिम अली खाँ के अत्याचारों से तंग आकर इनके दादा राजा अंग्रेजों से मिल गए जिसपर सूबेदार ने उन्हें कैद कर लिया। किसी प्रकार वहाँ से भागकर ये बनारस चले आए और यहीं बस गए।

जब शिवप्रसाद जी ग्यारह साल के थे, पिता का देहांत हो गया। सत्रह साल की उम्र में ही भरतपुर के राजा की सेवा में गए और राज्य के वकील का पद प्राप्त किया। तीन साल बाद नौकरी छोड़ दी। कुछ दिन बेकार रहकर सन् 1845 में ब्रिटिश सरकार की सेवा स्वीकार की और सुबराँव के सिख युद्ध में सर हेनरी लारेंस की जासूस के रूप में सहायता की। तत्पश्चात् शिमले की एजेंटी के मीर मुंशी नियुक्त हुए। सात साल बाद नौकरी छोड़ काशी चले आए परंतु शीघ्र ही गवर्नर जनरल के एजेंट के आग्रह पर पुनः मीर मुंशी का पद स्वीकार किया और दो ही सालों के भीतर पहले बनारस में शिक्षा विभाग के संयुक्त इंस्पेक्टर और तत्पश्चात् बनारस और इलाहाबाद के स्कूल इंस्पेक्टर नियुक्त हुए। सन् 1872 ई. में सी. आई. ई. और सन् 1887 ई. में लार्ड मेयो ने उन्हें इंपीरियल कौंसिल का सदस्य बनाया जहाँ एलबर्ट बिल का विरोध कर उन्होंने उसे पारित न होने दिया। सन् 1878 ई. में सरकारी नौकरी से पेंशन ले ली। 1870 में 'सितारेहिन्द' तथा 1874 में 'राजा' का खिताब मिला। यह इच्छा कि 'काशी की मिट्टी जल्द काशी में मिले' 23 मई सन् 1895 ई. को पूरी हुई।

हिन्दी और देवनागरी का समर्थन

प्रारम्भिक खड़ी बोली हिन्दी के विकास में हिन्दी और नागरी लिपि के अस्तित्त्व की लड़ाई लड़ने वालों में राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' का नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वे हिन्दी और नागरी के समर्थन में उस समय मैदान में उतरे जब हिन्दी गद्य की भाषा का परिष्कार और परिमार्जन नहीं हो सका था

अर्थात् हिन्दी गद्य का कोई सुव्यवस्थिति और सुनिश्चित नहीं गढ़ा जा सका था। खड़ी बोली हिन्दी घुटनों के बल ही चल रही थी। वह खड़ी होने की प्रक्रिया में तो थी, मगर नहीं हो पा रही थी। क्योंकि एक तरफ अंग्रेजों के आधिपत्य के कारण अंग्रेजी के प्रसार-प्रचार का सुव्यवस्थित अभियान चलाया जा रहा था तो दूसरी तरफ राजकीय कामकाज में, कचहरी में उर्दू समादृत थी।

कहा जाता है कि हिन्दी वाले भी अपनी पुस्तकें फारसी में लिखने लगे थे, जिसके कारण देवनागरी अक्षरों का भविष्य ही खतरे में पड़ गया था। जैसा कि बालमुकुन्दजी की इस टिप्पणी से स्पष्ट होता है-

जो लोग नागरी अक्षर सीखते थे, वे फारसी अक्षर सीखने पर विवश हुए और हिन्दी भाषा हिन्दी न रहकर उर्दू न गयी हिन्दी उस भाषा का नाम रहा जो टूटी-फूटी चाल पर देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती थी

शिक्षा में मुसलमानों से बहुत आगे रहने के बावजूद सरकारी नौकरियों से वंचित होने पर नागरी लिपि और हिंदी भाषा का व्यवहार करने वाले हिंदुओं में असंतोष होना बिल्कुल स्वाभाविक-सी बात थी और इसके खिलाफ सरकारी क्षेत्रों में नागरी लिपि को लागू करने की माँग भी वाजिब और लोकतांत्रिक थी। इस माँग को सबसे पहले 1868 ई. में राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' ने उठाया। उन्होंने 1868 ई. में संयुक्त प्रांत की सरकार को एक मेमोरेंडम-'कोर्ट कैरेक्टर इन दी अपर प्रोविंसेज ऑफ इंडिया' दिया-

जब मुसलमानों ने हिंदोस्तान पर कब्जा किया, उन्होंने पाया कि हिंदी इस देश की भाषा है और इसी लिपि में यहाँ के सभी कारोबार होते हैं। .....लेकिन उनकी फारसी शहरों के कुछ लोगों को, ऊपर-ऊपर के दस-एक हजार लोगों को, छोड़कर आम लोगों की जुबान कभी नहीं बन सकी। आम लोग फारसी शायद ही कभी पढ़ते थे। आजकल की फारसी में आधी अरबी मिली हुई है। सरकार की इस नीति को विवेकपूर्ण नहीं माना जा सकता जिसने हिंदुओं के बीच सामी तत्त्वों को खड़ा कर उन्हें अपनी आर्यभाषा से वंचित कर दिया है, न सिर्फ आर्यभाषा से बल्कि उन सभी चीजों से जो आर्य हैं, क्योंकि भाषा से ही विचारों का निर्माण होता है और विचारों से प्रथाओं तथा दूसरे तौर-तरीकों का। फारसी पढ़ने से लोग फारसीदाँ बनते हैं। इससे हमारे सभी विचार दूषित हो जाते हैं और हमारी जातीयता की भावना खत्म हो जाती है।.....पटवारी आज भी अपने कागज हिंदी में ही रखता है। महाजन, व्यापारी और कस्बों के लोग अब भी अपना सारा कारोबार हिंदी में ही करते हैं। कुछ लोग मुसलमानों की

कृपा पाने के वास्ते अगर पूरे नहीं, तो आधे मुसलमान जरूर हो गए हैं। लेकिन जिन्होंने ऐसा नहीं किया, वे अब भी तुलसीदास, सूरदास, कबीर, बिहारी इत्यादि की रचनाओं का आदर करते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि हर जगह, हिंदी की सभी बोलियों में फारसी के शब्द काफी पाए जाते हैं। बाजार से लेकर हमारे जनाने तक में, वे घर-घर में बोले जाते हैं। भाषा का यह नया मिला-जुला रूप ही उर्दू कहलाता है। .....मेरा निवेदन है कि अदालतों की भाषा से फारसी लिपि को हटा दिया जाए और उसकी जगह हिंदी लिपि को लागू किया जाए।

कृतियाँ

साहित्य, व्याकरण, इतिहास, भूगोल आदि विविध विषयों पर इन्होंने प्रायः 35 पुस्तकों की रचना की। राजा शिवप्रसाद की रचनाओं में निम्नलिखित रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं–

- मानव धर्मसार
- वामा मनरंजन
- आलसियों का कोड़ा
- विद्यांकुर
- राजा भोज का सपना
- इतिहास तिमिर नाशक
- बैताल पच्चीसी
- सवानेह-उमरी (आत्मकथा)

लिपि सम्बन्धी प्रतिवेदन (1868 ई.)

गोविन्द रघुनाथ धत्ते ने सन् 1845 में राजा शिव प्रसाद की मदद से 'बनारस अखबार' निकाला था।

मृत्यु

कलकत्ता विश्वविद्यालय के फेलो और रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के सदस्य रह चुके राजा लक्ष्मण सिंह का स्वर्गवाज 14 जुलाई सन् 1896 को हो गया।

32

शिव प्रसाद गुप्त

शिव प्रसाद गुप्त हिन्दी के समाचार पत्र 'दैनिक आज' के संस्थापक थे। देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले क्रांतिकारियों को इनका समर्थन प्राप्त था। अपनी राष्ट्रवादी गतिविधियों के लिए भी शिव प्रसाद गुप्त ने कई बार जेल की सजा काटी। ये 'काशी विद्यापीठ' के संस्थापक थे। बनारस में 'भारत माता मन्दिर' का निर्माण भी इन्होंने करवाया था।

जीवनी

बाबू शिव प्रसाद गुप्ता बनारस के एक समृद्ध वैश्य परिवार में जून, 1883 में पैदा हुए थे। उन्होंने संस्कृत, फारसी और हिंदी का अध्ययन घर पर ही किया था। उन्होंने इलाहाबाद से स्नात्तक की परीक्षा उत्तीर्ण की। वे पण्डित मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपत राय, महात्मा गांधी, आचार्य नरेन्द्र देव तथा डॉ. भगवान दास से अत्यन्त प्रभावित थे।

यद्यपि उनका जन्म एक धनी उद्योगपति एवं जमींनदार परिवार में हुआ था, किन्तु उन्होंने अपना सारा जीवन भारत की स्वतंत्रता संग्राम के लिए चल रहे विभिन्न आन्दोलनों में भाग लेने तथा उनकी आर्थिक सहायता करने में लगा दिया। बाबू शिव प्रसाद गुप्ता ने क्रांतिकारियों का सहयोग दिया था वे अपनी राष्ट्रवादी गतिविधियों के कारण अनेक बार जेल गये। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होने के लिए के बीच में अपनी पढ़ाई छोड़ दिया था जो उनकी शिक्षा, पूरा करने के लिए उन युवाओं को एक मौका देने के लिए अब एक विश्वविद्यालय है, जो वाराणसी में काशी विद्यापीठ की स्थापना की।

उन्होंने कहा कि भारत की राहत का नक्शा संगमरमर पर नक्काशीदार किया गया है, जिसमें भारत माता मंदिर का निर्माण किया। मंदिर 1936 में महात्मा गांधी द्वारा उद्घाटन किया गया।

राष्ट्रवादी

पण्डित मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपत राय, महात्मा गांधी, आचार्य नरेन्द्र देव तथा डॉ. भगवान दास से शिवप्रसाद गुप्त अत्यन्त प्रभावित थे। क्रांतिकारियों को भी इनका सहयोग प्राप्त था। वे अपनी राष्ट्रवादी गतिविधियों के कारण अनेक बार जेल भी गये।

महत्त्वपूर्ण कार्य

गुप्त जी ने 'आज' नाम से एक राष्ट्रवादी दैनिक पत्र निकाला था। बाबू शिव प्रसाद गुप्त ने 'आज' द्वारा हिन्दी पत्रकारिता, हिन्दी की लेखनी और हिन्दी की वाणी को राष्ट्रीय अस्मिता से जोड़ा तथा उसे मुक्ति का सन्देशवाहक बनाया। हिन्दी में श्रेष्ठ साहित्य रचना को बल देने के लिए उन्होंने 'ज्ञान मण्डल' की स्थापना 1918 ई. में की। भारतीय अस्मिता के प्रतीक 'भारत माता मन्दिर' और 'काशी विद्यापीठ' की स्थापना द्वारा शिव प्रसाद गुप्त ने अपनी दानवीरता को ऐतिहासिक बनाया था। अंग्रेजी के 'दैनिक टुडे', 'मर्यादा', 'स्वार्थ' आदि पत्र-पत्रिकाओं से जनमानस को उन्नत बनाने में उनकी भूमिका स्तुत्य है। मिस्र, इंग्लैण्ड, आयरलैण्ड, अमेरिका, जापान, कोरिया, चीन, सिंगापुर आदि राष्ट्रों की यात्रा करने वाले गुप्त जी स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी तथा रहनुमा थे।

मृत्यु

राष्ट्रीय शिक्षा की अनूठी परिकल्पना वाले शिव प्रसाद गुप्त 1941 तक भारत की निस्वार्थ सेवा करते रहे। वर्ष 1944 में इनका निधन हो गया। हिन्दी पत्रकारिता को परिपुष्ट करने और उसे अंग्रेजी के समकक्ष बैठाने में इनकी तपस्या अविस्मरणीय है।

33

मुंशी दया नारायण निगम

मुंशी दया नारायण निगम उर्दू के प्रसिद्ध पत्रकार और समाज सुधारक थे। वे बीसवीं सदी के प्रारंभ में कानपुर से प्रकाशित होने वाली उर्दू पत्रिका 'जमाना' के संपादक थे। इन्होंने प्रसिद्ध लेखक मुंशी प्रेमचन्द की पहली कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' प्रकाशित की थी। मोहम्मद इकबाल की प्रसिद्ध रचना 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' भी 'जमाना' में ही पहली बार प्रकाशित हुई थी। भारत के विश्वविख्यात लेखक मुंशी प्रेमचन्द और दयानारायण निगम में बहुत गहरी मित्रता थी। 'नवाबराय' के नाम से लिखने वाले धनपतराय श्रीवास्तव को 'प्रेमचन्द' का नाम भी दया नारायण निगम जी ने ही दिया था।

जन्म तथा शिक्षा

मुंशी दया नारायण निगम का जन्म 22 मार्च, 1882 को उत्तर प्रदेश राज्य के कानपुर शहर में हुआ था। उन्होंने 'इलाहाबाद विश्वविद्यालय', उत्तर प्रदेश से शिक्षा पाई थी। निगम जी विद्वान् व्यक्तित्त्व के धनी थे। वे अंग्रेजी, उर्दू, फारसी के साथ-साथ ये बंगला, गुजराती और मराठी भाषाओं के भी ज्ञाता थे।

सम्पादक व समाज सुधारक

दया नारायण निगम ने मासिक पत्र 'जमाना' के माध्यम से 'उर्दू साहित्य' की अभूतपूर्व सेवा की। यद्यपि निगम जी राष्ट्रीय विचारों के व्यक्ति थे, किन्तु संघर्ष की राजनीति से वे प्राय: अलग ही रहे। समाज सुधार उनका प्रिय विषय

था और वे अंतर्जातीय और 'विधवा विवाह' पर बड़ा बल देते थे। कहते हैं कि उनके आग्रह पर ही मुंशी प्रेमचन्द एक विधवा स्त्री से विवाह करने के लिए तैयार हुए थे। मुंशी प्रेमचन्द की अधिकांश उर्दू रचनाएँ 'जमाना' में ही छपती थीं। मोहम्मद इकबाल की प्रसिद्ध रचना 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' भी 'जमाना' में ही पहली बार प्रकाशित हुई थी।

प्रेमचन्द से मित्रता

विश्व प्रसिद्ध लेखक प्रेमचन्द की मुंशी दया नारायण निगम से बड़ी घनिष्ठ मित्रता थी। प्रेमचन्द जी ने अपने जीवन-काल में हजारों पत्र लिखे थे, लेकिन उनके जो पत्र काल का ग्रास बनने से बच गये और जो सम्प्रति उपलब्ध हैं, उनमें से सर्वाधिक पत्र वे हैं, जो उन्होंने अपने समय की मशहूर उर्दू मासिक पत्रिका 'जमाना' के यशस्वी सम्पादक मुंशी दया नारायण निगम को लिखे थे। यद्यपि दया नारायण निगम प्रेमचन्द से दो वर्ष छोटे थे, लेकिन प्रेमचन्द उनको सदा अपने बड़े भाई जैसा सम्मान देते थे।

प्रेमचन्द को साहित्यिक पहचान दिलाना

इन दोनों विभूतियों के पारस्परिक सम्बन्धों को परिभाषित करना तो अत्यन्त दुरूह कार्य है, लेकिन प्रेमचन्द के इस आदर भाव का कारण यह प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द को साहित्यिक संसार में पहचान दिलाने का महान् कार्य निगम जी ने उनकी रचनाओं को 'जमाना' में निरन्तर प्रकाशित करके ही किया था और उस काल की पत्रिकाओं में तो यहाँ तक प्रकाशित हुआ कि प्रेमचन्द को प्रेमचन्द बनाने का श्रेय यदि किसी को है तो निगम को ही है। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि 'नवाबराय' के लेखकीय नाम से लिखने वाले 'धनपतराय श्रीवास्तव' ने 'प्रेमचन्द' का लेखकीय नाम मुंशी दया नारायण निगम के सुझाव से ही अंगीकृत किया था, जिसकी छाया में उनका वास्तविक तथा अन्य लेखकीय नाम गुमनामी के अंधेरों में खो गये। मुंशी प्रेमचन्द और मुंशी दया नारायण निगम के घनिष्ठ आत्मीय सम्बन्ध ही निगम जी को सम्बोधित प्रेमचन्द के पत्रों को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बना देते हैं, क्योंकि इन पत्रों में प्रेमचन्द ने जहाँ सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं पर चर्चा की है, वहीं अपनी घरेलू तथा आर्थिक समस्याओं की चर्चा भी उन्होंने पूरी तरह खुल कर की है।

मुंशी प्रेमचन्द सादा एवं सरल जीवन के मालिक थे और वे सदैव मस्त रहते थे। वे जीवन में विषमताओं और कटुताओं से लगातार खेलते रहे। इस खेल को उन्होंने बाजी मान लिया, जिसको हमेशा जीतना चाहते थे। अपने जीवन की परेशानियों को लेकर उन्होंने एक बार मुंशी दया नारायण निगम को एक पत्र में लिखा था कि- 'हमारा काम तो केवल खेलना है, खूब दिल लगाकर खेलना, खूब जी तोड़ खेलना, अपने को हार से इस तरह बचाना मानों हम दोनों लोकों की संपत्ति खो बैठेंगे। किन्तु हारने के पश्चात् पटखनी खाने के बाद, धूल झाड़ खड़े हो जाना चाहिए और फिर ताल ठोंक कर विरोधी से कहना चाहिए कि एक बार फिर। जैसा कि सूरदास कह गए हैं, 'तुम जीते हम हारे। पर फिर लड़ेंगे।' कहा जाता है कि प्रेमचन्द हंसोड़ प्रकृति के मालिक थे। विषमताओं भरे जीवन में हंसोड़ होना एक बहादुर का काम है। इससे इस बात को भी समझा जा सकता है कि वह अपूर्व जीवनी-शक्ति का द्योतक थे। सरलता, सौजन्यता और उदारता के वह मूर्ति थे।

'जमाना' का प्रेमचन्द विशेषांक

प्रेमचन्द के मानस को समझने के लिए मुंशी दया नारायण निगम के नाम लिखे उनके पत्रों के महत्त्व का अनुमान इस तथ्य से लगा पाना सम्भव है कि जब 8 अक्टूबर, 1936 को प्रेमचन्द के देहावसान के उपरान्त 'जमाना' का प्रेमचन्द विशेषांक दिसम्बर, 1937 में प्रकाशित होकर साहित्य-संसार के हाथ में आया तो उसमें 'जमाना' के सम्पादक दया नारायण निगम के कई लेख प्रकाशित हुए, जिनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लेख था- प्रेमचन्द के खयालात। इस सुदीर्घ लेख में निगम साहब ने प्रेमचन्द की विचार-यात्रा का तथ्यपरक दिग्दर्शन कराया था। उल्लेखनीय है कि इस लेख में प्रेमचन्द की विचार-यात्रा को स्पष्ट करने के लिए निगम जी ने प्रेमचन्द के उन पत्रों में से 50 से अधिक पत्रों का सार्थक प्रयोग किया, जो उन्होंने समय-समय पर निगम साहब को लिखे थे और जो उन्होंने बड़े जतन से संभालकर रख छोड़े थे। प्रेमचन्द के देहावसान के अनन्तर मुंशी दया नारायण निगम ने प्रेमचन्द के वे सभी पत्र जिनका उपयोग वे अपने उपर्युक्त लेख में कर चुके थे, मदन गोपाल को सौंप दिए।

निधन

वर्ष 1942 ई. में मुंशी दया नारायण निगम का देहान्त हो गया और वे पंचतत्त्व में विलीन हो गये।

34

शिवपूजन सहाय

आचार्य शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य में एक उपन्यासकार, कहानीकार, सम्पादक और पत्रकार के रूप में प्रसिद्ध थे। इनके लिखे हुए प्रारम्भिक लेख 'लक्ष्मी', 'मनोरंजन' तथा 'पाटलीपुत्र' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे। शिवपूजन सहाय ने 1934 ई. में 'लहेरियासराय' (दरभंगा) जाकर मासिक पत्र 'बालक' का सम्पादन किया। स्वतंत्रता के बाद शिवपूजन सहाय 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद' के संचालक तथा 'बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की ओर से प्रकाशित 'साहित्य' नामक शोध-समीक्षा प्रधान त्रैमासिक पत्र के सम्पादक थे।

जन्म और शिक्षा

शिवपूजन सहाय का जन्म सन् 1893 ई. उनवास ग्राम, उपसंभाग बक्सर, शाहाबाद जिला (बिहार) में हुआ था। 1912 ई. में आरा नगर के एक हाईस्कूल से शिवपूजन सहाय ने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। उन्होंने सामाजिक जीवन का शुभारम्भ हिन्दी शिक्षक के रूप में किया और साहित्य के क्षेत्र में पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से आये। शिवपूजन सहाय के आरम्भिक लेख तथा कहानियाँ 'शिक्षा', 'लक्ष्मी', 'मनोरंजन' तथा 'पाटलीपुत्र' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे।

सेवाएँ

शिवपूजन सहाय की सेवाएँ हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं। 1921-1922 ई. के आस-पास शिवपूजन सहाय ने आरा से निकलने वाले

'मारवाड़ी सुधार' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन किया। उन्होंने 1923 ई. में वे कलकत्ता के 'मतवाला मण्डल' के सदस्य हुए और कुछ समय के लिए 'आदर्श', 'उपन्यास तरंग', तथा 'समन्वय' आदि पत्रों में सम्पादन का कार्य किया। शिवपूजन सहाय ने 1925 ई. में कुछ मास के लिए 'माधुरी' के सम्पादकीय विभाग को अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। वह 1930 ई. में सुल्तानगंज-भागलपुर से प्रकाशित होने वाली 'गंगा' नामक मासिक पत्रिका के सम्पादक मण्डल के सदस्य भी हुए। एक वर्ष के उपरान्त काशी में रहकर उन्होंने साहित्यिक पाक्षिक 'जागरण' का सम्पादन किया। शिवपूजन सहाय काशी में कई वर्ष तक रहे।

लेखन कार्य

शिवपूजन सहाय की लिखी हुई पुस्तकें विभिन्न विषयों से सम्बद्ध हैं तथा उनकी विधाएँ भी भिन्न-भिन्न हैं। 'बिहार का बिहार' बिहार प्रान्त का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत करती है। 'विभूति' में कहानियाँ संकलित हैं। 'देहाती दुनिया' (1926 ई.) प्रयोगात्मक चरित्र प्रधान औपन्यासिक कृति है। इसकी पहली पाण्डुलिपि लखनऊ के हिन्दू-मुस्लिम दंगे में नष्ट हो गयी थी। इसका शिवपूजन सहाय जी को बहुत दु:ख था। उन्होंने दुबारा वही पुस्तक फिर लिखकर प्रकाशित करायी, किन्तु उससे शिवपूजन सहाय को पूरा संतोष नहीं हुआ। शिवपूजन सहाय कहा करते थे कि- 'पहले की लिखी हुई चीज कुछ और ही थी।' 'ग्राम सुधार' तथा 'अन्नपूर्णा के मन्दिर में' नामक दो पुस्तकें ग्रामोद्धार सम्बन्धी लेखों के संग्रह हैं। इनके अतिरिक्त 'दो पड़ी' एक हास्य रसात्मक कृति है, 'माँ के सपूत' बालोपयोगी तथा 'अर्जुन' और 'भीष्म' नामक दो पुस्तकें महाभारत के दो पात्रों की जीवनी के रूप में लिखी गयी हैं। शिवपूजन सहाय ने अनेक पुस्तकों का सम्पादन भी किया, जिनमें 'राजेन्द्र अभिनन्दन ग्रन्थ' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद', (पटना) ने इनकी विभिन्न रचनाओं को अब तक चार खण्डों में 'शिवपूजन रचनावली' के नाम से प्रकाशित किया है।

विशिष्ट स्थान

शिवपूजन सहाय का हिन्दी के गद्य साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। उनकी भाषा बड़ी सहज थी। इन्होंने उर्दू के शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से किया

है और प्रचलित मुहावरों के सन्तुलित उपयोग द्वारा लोकरुचि का स्पर्श करने की चेष्टा की है। शिवपूजन सहाय ने कहीं-कहीं अलंकार प्रधान अनुप्रास बहुल भाषा का भी व्यवहार किया है और गद्य में पद्य की सी छटा उत्पन्न करने की चेष्टा की है। भाषा के इस पद्यात्मक स्वरूप के बावजूद शिवपूजन सहाय के गद्य लेखन में गाम्भीर्य का अभाव नहीं है। शिवपूजन सहाय की शैली ओज-गुण सम्पन्न है और यत्र-तत्र उसमें वक्तृत्व कला की विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं।

हिन्दी-सेवा

शिवपूजन सहाय का समस्त जीवन हिन्दी की सेवा की कहानी है। इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग हिन्दी भाषा की उन्नति एवं उसके प्रचार-प्रसार में व्यतीत किया है। 'बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन' तथा 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद' नामक हिन्दी की दो प्रसिद्ध संस्थाएँ इनकी कीर्ति कथा के अमूल्य स्मारक के रूप में हैं। इनके संस्मरण में बिहार से स्मृति ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ है।

रचनाएँ

आचार्य शिवपूजन सहाय की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

- 'देहाती दुनियाँ'-1926
- 'मतवाला माधुरी'-1924
- 'गंगा'-1931
- 'जागरण'-1932
- 'हिमालय'-1946
- 'साहित्य'-1950
- 'वही दिन वही लोग'-1965
- 'मेरा जीवन'-1985
- 'स्मृति शेश'-1994
- 'हिन्दी भाषा और साहित्य'-1996

सहायक ग्रन्थ-'शिवपूजन रचनावली' (चार खण्डों में), बिहार राष्ट्रीय भाषा परिषद्, पटना।

पत्रकारिता में योगदान

हिन्दी पत्रकारिता के पुरोधा आचार्य शिवपूजन सहाय 1910 से 1960 ई. तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, जैसे- 'आज', 'सन्मार्ग', 'आर्यावर्त', 'हिमालय'

आदि में सारगर्भित लेख लिखते रहे। उस दौरान उन्होंने हिन्दी पत्रों और पत्रकारिता की स्थिति पर भी गंभीर टिप्पणियाँ की थीं। अपने लेखों के जरिये वे जहाँ भाषा के प्रति सजग दिखाई देते थे, वहीं पूँजीपतियों के दबाव में संपादकों के अधिकारों पर होते कुठाराघात पर चिंता भी जाहिर करते थे। अपने लेख 'हिन्दी के दैनिक पत्र' में आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा था कि- 'लोग दैनिक पत्रों का साहित्यिक महत्त्व नहीं समझते, बल्कि वे उन्हें राजनीतिक जागरण का साधन मात्र समझते हैं। किंतु हमारे देश के दैनिक पत्रों ने जहाँ देश को उद्‌बुद्ध करने का अथक प्रयास किया है, वहीं हिन्दी प्रेमी जनता में साहित्यिक चेतना जगाने का श्रेय भी पाया है। आज प्रत्येक श्रेणी की जनता बड़ी लगन और उत्सुकता से दैनिक पत्रों को पढ़ती है। दैनिक पत्रों की दिनोंदिन बढ़ती हुई लोकप्रियता हिन्दी के हित साधन में बहुत सहायक हो रही है। आज हमें हर बात में दैनिक पत्रों की सहायता आवश्यक जान पड़ती है। भाषा और साहित्य की उन्नति में भी दैनिक पत्रों से बहुत सहारा मिल सकता है।'

शिवपूजन सहाय का यह भी कहना था कि 'भारत की साधारण जनता तक पहुँचने के लिए दैनिक पत्र ही सर्वोत्तम साधन हैं। देश-देशांतर के समाचारों के साथ भाषा और साहित्य का संदेश भी दैनिक पत्रों द्वारा आसानी से जनता तक पहुँचा सकते हैं और पहुँचाते आये हैं। कुछ दैनिक पत्र तो प्रति सप्ताह अपना एक विशेष संस्करण भी निकालते हैं, जिसमें कितने ही साप्ताहिकों और मासिकों से भी अच्छी साहित्यिक सामग्री रहती है। दैनिक पत्रों द्वारा हम रोज-ब-रोज की राजनीतिक प्रगति का विस्तृत विवरण ही नहीं पाते, बल्कि समाज की वैचारिक स्थितियों का विवरण भी पाते हैं। हालांकि कभी-कभी कुछ साहित्यिक समाचारों को पढ़कर ही संतोष कर लेते हैं। भाषा और साहित्य से संबंध रखने वाली बहुत कुछ ऐसी समस्याएँ हैं, जिनकी ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करने की बड़ी आवश्यकता है, किंतु यह काम दैनिक पत्रों ने शायद उन साप्ताहिकों व मासिकों पर छोड़ दिया है, जिनकी पहुँच व पैठ जनता में आज उतनी नहीं है, जितनी दैनिक पत्रों की। दैनिक पत्र आजकल नित्य के अन्न-जल की भांति जनता के जीवन के अंग बनते जा रहे हैं। यद्यपि ये पत्र भाषा-साहित्य संबंधी प्रश्नों को भी जनता के सामने रोज-रोज रखते जाते, तो निश्चित रूप से कितने ही अभाव दूर हो जाते।'

सम्मान

शिवपूजन सहाय को साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में उनके उल्लेखनीय योगदान के लिए सन् 1960 ई. में 'पद्म भूषण' से सम्मानित किया गया था।

निधन

एक कहानीकार, सम्पादक और पत्रकार के रुप में विशिष्ट स्थान बनाने वाले इस महान् साहित्यकार का निधन 21 जनवरी, 1963 में पटना, बिहार में हुआ।

35

हरिशंकर शर्मा

हरिशंकर शर्मा भारत के प्रसिद्ध साहित्यकार, कवि, लेखक, व्यंग्यकार और पत्रकार थे। उन्हें उर्दू, फारसी, गुजराती तथा मराठी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। पंडित हरिशंकर शर्मा हिन्दी के कुछ गिने चुने हास्य लेखकों में से एक थे। इनकी गिनती अपने समय के उच्च कोटि के पत्रकारों में होती थी। उन्होंने कई पत्र-पत्रिकाओं का सफल सम्पादन किया था। अपनी रचनाओं के माध्यम से हरिशंकर शर्मा समाज में फैली रूढ़ियों, कुरीतियों तथा अन्य बुराइयों पर करारी चोट करते थे।

जन्म

पंडित हरिशंकर शर्मा का जन्म 19 अगस्त, सन् 1891 ई. को उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ जनपद के हरदुआगंज कस्बे में हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित नाथूराम शंकर शर्मा था। बचपन से ही उन्हें घर में साहित्यिक वातारण मिला था, जिसका पंडित जी पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। एक दिन वह भी आया कि वे राष्ट्र के मूर्धन्य साहित्यकारों में गिने जाने लगे थे। हरिशंकर शर्मा के पूज्य पिता पंडित नाथूराम शंकर शर्मा हिन्दी के प्रसिद्ध कवि थे।

शिक्षा

हरिशंकर शर्मा की शिक्षा विधिवत् किसी स्कूल अथवा कॉलेज में नहीं हुई थी। घर पर रह कर ही उन्होंने उर्दू, फारसी, गुजराती तथा मराठी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। पंडित जी के पिता के यहाँ अनेक

साहित्यकार उनसें भेंट करने आया करते थे, जिनमें आचार्य पंडित पदमसिंह शर्मा प्रमुख थे। शर्मा जी अपने पिता के साथ इन साहित्यकारों की बातचीत को बड़े ध्यान से सुना करते थे। आगे चलकर इसका लाभ शर्मा जी को मिला और उनके संपर्क तथा प्रभाव से अपने पिता की भांति एक दिन वे स्वंय एक कवि, लेखक, पत्रकार एवं व्यंग्यकार के रूप में विख्यात हो गए।

व्यक्तित्त्व

व्यक्तित्त्व से हरिशंकर शर्मा स्वाभिमानी थे। प्रसिद्ध निबन्धकार बाबू गुलाबराय ने उनके बारे में लिखा था– 'समाज का कोई प्राणी अहम् से मुक्त नहीं है। शिक्षित समाज के भी निन्यानवे प्रतिशत जनों का अहम् दम्भ की सीमाओं में जकड़ा है। पंडित जी का सरल, सौम्य, स्वाभिमानी व्यक्तित्त्व उन सीमाओं से मुक्त है। उनका अहम् अपने लिए न होकर अपने साहित्य स्रष्टा वर्ग के लिए है। विनत के सामने वे स्वंय विनम्र हैं। हाथ जोड़कर अभिवादन करने वाले उन्हें पांव छूकर प्रणाम करने वालों से कम प्रिय नहीं हैं'।

प्रसिद्ध साहित्यकार विष्णु प्रभाकर तो उनको सरलता की प्रतिमूर्ति मानते थे। उनके अनुसार– पंडित हरिशंकर शर्मा उस खेमें के व्यक्ति थे, जो परस्पर के संबंध को सबसे अधिक महत्त्व देते थे। उनके भरे हुए चेहरे पर सौम्यता बिखरी रहती थी और उनके नयन एक उल्लास से चमकते रहते थे। वे हँसना खूब जानते थे। वे हिन्दी के गिने चुने हास्य लेखकों में से एक थे। नहीं जानता कि रचनाओं को पढ़कर वे कितने हंसते हैं, पर यह अवश्य जानता हूँ कि कुछ समय उनके पास बैठने पर विषाद दु:ख, चिन्ता पास नहीं फटकती थी।

हरिशंकर शर्मा उत्तर प्रदेश के प्रमुख क्रान्तिकारियों में से एक क्रान्तिकारी थे। उनका झुकाव राजनीति की ओर था और भारत के क्रांतिकारियों के प्रति उनकी गहरी दिलचस्पी थी। उन दिनों सन् 1930 में कांग्रेस का आंदोलन पूरे जोर पर था और उसी प्रकार उसका दमन भी किया जा रहा था। हरिशंकर शर्मा की आँखों में आगरा जिले का हिंदुस्तानी डिप्टी कलेक्टर बहुत खटक रहा था, जो आंदोलनकारियों का दमन करने के लिए कुख्यात था। उन्हें मालूम पड़ गया कि वह डिप्टी कलेक्टर आगरा से फिरोजाबाद पहुँच रहे हैं। हरिशंकर शर्मा ने बम बनाना सीख लिया था। उन्होंने बोतल के अंदर एक बोम तैयार किया और उसे अपने कपड़ों में छिपाकर एक ऐसे स्थान पर छिप गए, जिधर से वह डिप्टी कल्केटर निकलने वाला था। दुर्भाग्य से वह बम पहले ही फट गया और स्वयं

हरिशंकर शर्मा लहूलुहान होकर भूमि पर पडे रहे। उनकी पहचान के एक सज्जन श्री राधारमण ने उन्हें अस्पताल पहुँचाया, पर वह बचाए नहीं जा सके। एक सुकुमार क्रांतिकारी अपना मौन बलिदान दे गए।

उच्च कोटि के पत्रकार

हरिशंकर शर्मा उच्च कोटि के पत्रकार थे। 'आर्यमित्र' तथा 'भाग्योदय' के अतिरिक्त आपने, 'आर्य संदेश', 'निराला', 'साधना', 'प्रभाकर', 'सैनिक', 'कर्मयोग', 'ज्ञानगंगा' तथा 'दैनिक दिग्विजय' आदि कई पत्र-पत्रिकाओं का कुशलता एवं स्वाभिमान के साथ सम्पादन किया था। आप उनमें विविध विषयों से संबंधित साम्रगी के साथ-साथ सुरुचिपूर्ण हास्य-व्यंग्य की रचनाएँ भी प्रकाशित करते थे। इन रचनाओं के माध्यम से वे समाज में व्याप्त कुरीतियों, रूढ़ियों तथा विभीषिकाओं पर कारारी चोट करते थे। 'आर्यमित्र' के सम्पादन के दिनों में सर्वश्री बनारसी दास चतुर्वेदी, डॉ.सत्येन्द्र तथा रामचन्द्र श्रीवास्तव जैसे सुयोग्य व्यक्तियों का सहयोंग उन्हें प्राप्त हुआ था। 'आर्यमित्र' का सम्पादन पंडित जी से पूर्व पंडित रूद्रदत्त शर्मा सम्पादकाचार्य तथा लक्ष्मीधर वाजपेयी 'सर्वानन्द' के नाम से कर चुके थे।

महापुरुषों के कथन

'आर्यमित्र' को हिन्दी के उच्च कोटि के अन्य साप्ताहिक पत्रों की पंक्ति में खड़ा करना हरिशंकर शर्मा जैसे सुयोग्य सम्पादक का ही काम था। इस सम्बन्ध में महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा था कि- 'पंडित हरिशंकर शर्मा के हाथ में जब 'आर्यमित्र' आया, तो उसके लेखों में विचित्र स्फूर्ति दिखलाई पड़ती थी। सम्पादक सभी लेखों को नहीं लिखता, पर उनके चयन करने और संवारने में भी बड़ी प्रतिभा की आवश्यकता होती है। मैं समझता हूँ, 'आर्यमित्र' उतना जनप्रिय कभी नहीं हुआ, जितना कि पंडित हरिशंकर शर्मा के सम्पादकत्व में हुआ।'

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा था- 'हरिशंकर शर्मा के समान साधुमना और संत साहित्यकार कम होंगे। उनकी रचनाएँ देखकर उनकी सौम्य मूर्ति सम्मुख पाता हूँ।'

प्रसिद्ध नेता और प्रत्रकार पंडित कृष्णदत्त पालीवाल नें हरिशंकर शर्मा के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा था- 'प्रकाडं पंडित, सहज

सहृदयता और सज्जनता, विचारों की उदारता और स्वतंत्रता के साथ-साथ पंडित जी की निष्काम देशभक्ति भी सर्वथा सराहनीय हैं। वे कभी किसी कांग्रेस कमेटी के पदधिकारी नहीं बनें। लेकिन सभी स्वाधीनता संग्रामों में उन्होंने सक्रिय सहायता की। यहाँ तक कि 1942 की जनक्रान्ति के समय वे जेल जाने से भी नहीं चुके। उनका घर सदैव बलिदानी स्वाधीनता संग्राम के सैनिकों का अड्डा और आश्रय-स्थल रहा। सच्चे और सुपात्र स्वाधीनता संग्राम के सैनिक होते हुए भी उन्होंने न कभी कोई पद चाहा, न ही यश चाहा और न साहय्य या राज्यश्रय चाहा।'

रचनाएँ

हरिशंकर शर्मा ने एक यशस्वी पत्रकार के रूप में तो ख्याति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त की ही थी, उत्कृष्ट साहित्य एवं काव्य-द्रष्टाके रूप में जो स्थान बनाया, वह अनुकरणीय है। आपने विविधतापूर्ण साहित्य की रचना कर अपनी एक अलग ही छवि प्रस्तुत की। उन्होंने विभिन्न पुस्तकों की रचना की थी, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं-

1. रत्नाकर,
2. अभिनव हिन्दी कोश,
3. हिन्दुस्तानी कोश,
4. घास-पात,
5. पिंजरा पोल,
6. चिड़ियाघर,
7. रामराज्य,
8. कृष्ण संदेश,
9. महर्षि महिमा,
10. वीरांगना वैभव,
11. मटकाराम मिश्र,
12. पाखंड,
13. प्रदर्शनी ,
14. गड़बड़,
15. गोष्ठी,
16. हिन्दी साहित्य परिचय,

17. अंग्रेजी साहित्य परिचय।

पुरस्कार व सम्मान

हरिशंकर शर्मा को उनके रचना कार्य पर जहाँ 'देव पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था, वहीं आपकी साहित्य सेवाओं के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने हेतु 'आगरा विश्वविधालय' ने आपको 'डी.लिट.' की मानद उपाधि से विभूषित किया। भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्ण ने भी आपको 'पद्मश्री' से अलंकृत कर अपने को धन्य समझा। पंडित जी के प्रशंसक एवं मित्रों की संख्या सैकड़ों में थी, परन्तु पुरुषोत्तम दास टण्डन, राहुल सांकृत्यायन, बनारसी दास चतुर्वेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, किशोरी दास वाजपेयी, केदारनाथ भट्ट, सत्येन्द्र, क्षेमचन्द्र, सुमन, नगेन्द्र, गोपाल प्रसाद व्यास, कृष्णदत्त पालीवाल आदि के नाम प्रमुख रूप से लिए जाते हैं।

भाषा-शैली

पंडित हरिशंकर शर्मा जहाँ गंभीर रचनाएँ लिखने के लिए प्रसिद्ध थे, वहीं उनकी हास्य-व्यंग्य पूर्ण रचनाएँ भी सोद्देश्य होती थीं। वे विशिष्ट भाषा-शैली तथा भाव-भंगिमा लिए होती थीं। जहाँ अधिकतर हास्य-व्यंग्य की रचनाएँ केवल मंनोरंजन के उद्देश्य से फूहड़पन, अश्लीलता तथा निम्न कोटि की होती थीं, वहीं पंडित जी की रचनाओं में स्वस्थ मनोरंजन तो होता ही था, उनमें समाज की कुरीतियों पर भी करारी चोट होती थी। उनमें भाषा तथा विचारों का फूहड़पन नहीं होता था।

निधन

सन् 1968 में पंडित हरिशंकर शर्मा अस्वस्थ हो गए और 9 मार्च, 1968 को उनका स्वर्गवास हो गया।

36

रामवृक्ष बेनीपुरी

रामवृक्ष बेनीपुरी भारत के एक महान विचारक, चिन्तक, मनन करने वाले क्रान्तिकारी साहित्यकार, पत्रकार और संपादक थे। वे हिन्दी साहित्य के शुक्लोत्तर युग के प्रसिद्ध साहित्यकार थे। आपने गद्य-लेखक, शैलीकार, पत्रकार, स्वतंत्रता सेनानी, समाज-सेवी और हिंदी प्रेमी के रूप में अपनी प्रतिभा की अमिट छाप छोड़ी है। राष्ट्र-निर्माण, समाज-संगठन और मानवता के जयगान को लक्षय मानकर बेनीपुरी जी ने ललित निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, नाटक, उपन्यास, कहानी, बाल साहित्य आदि विविध गद्य-विधाओं में जो महान रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, वे आज की युवा पीढ़ी के लिए भी प्रेरणास्रोत हैं।

जीवन परिचय

रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में 23 दिसम्बर 1899 ई. को गाँव बेनीपुर, थाना कटरा, जिला मुजफ्फरपुर, बिहार में हुआ था। इनका पूरा नाम रामवृक्ष शर्मा 'रामवृक्ष बेनीपुरी' था। 'रामवृक्ष बेनीपुरी' उपनाम इन्होंने अपने गाँव के नाम पर रख लिया और जाँति-पाँति की भावना को दूर रखने के लिए 'शर्मा' शब्द अपने नाम से हटा लिया। इनके पिता का नाम श्री फुलवन्त सिंह तथा पितामह का नाम श्री यदुनन्दन सिंह था। इनके पिता एक साधारण किसान थे और इनका परिवार एक औसत दर्जे का किसान परिवार था।

रामवृक्ष बेनीपुरी जब लगभग 5 वर्ष के थे तभी इनकी माता जी का निधन हो गया। इसके बाद इनकी देखभाल इनकी मौसी, जो कि इनके चाचा

से ही ब्याही गयी थीं, ने की। इनके नौ वर्ष की उम्र में ही इनके पिता का देहान्त हो गया। इस प्रकार बचपन में ही इन्होंने अपने माता-पिता खो दिये।

रामवृक्ष बेनीपुरी का अक्षरारम्भ बेनीपुर में ही हुआ। पिता की मृत्यु के उपरान्त इनके मामा इनको इनके ननिहाल बंशीपचड़ा लेकर चले गये जहाँ इन्होंने 15 वर्ष व्यतीत किया। इस प्रकार इनकी प्राथमिक शिक्षा बशींपचड़ा में हुई। वहाँ लोअर प्राइमरी पाठशाला की पढ़ाई समाप्त करके रामवृक्ष बेनीपुरी ने उर्दू का अध्ययन भी किया। रामवृक्ष बेनीपुरी के जीवन और साहित्य पर बंशीपचड़ा के रंगीन वातावरण का बहतु प्रभाव रहा है। इन्होंने लिखा है- "एक अजीब बात देखता हूँ, अब भी जब उपन्यास, कहानी या स्केच लिखता हूँ बंशीपचड़ा का ही वातावरण उसमें प्रमुखता पा जाता है-वहाँ के लोग, वहाँ के खेत, वहाँ के पेड़-पौधे जैसे जबरदस्ती मुझसे अपना चरित्र-चित्र खिंचवा लेते हैं। सपने में भी वे मेरा पिंड नहीं छोड़ते।"

बंशीपचड़ा में शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त, इनके बहनोई इन्हें आगे की शिक्षा के लिए अपने साथ सुरसंड लिवा ले गए और इनका नाम मिडिल स्कूल में लिखा दिया तथा इन्हें उर्दू के स्थान पर अंग्रेजी की शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित किया। यहाँ आकर इनका नए-नए अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं से सम्पर्क हुआ और पत्रिकाओं ने तो खासतौर पर इनका मन ही मोह लिया। यहीं पर इनका देश की राजनैतिक, विश्व युद्ध और नये ज्ञान विज्ञान की खबरों से पाला पड़ा, जो कि इन्हें विचित्र खबर मालूम पड़ती थी। देशभक्ति नाम की नई चीज भी इन्हें मालूम पड़ी। इन्होंने यह भी सुना कि हमारा देश गुलाम है और हम अंग्रजों से लड़ रहे हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी लिखते हैं-"मेरा छोटा सा दिमाग अजीब ढंग से आंदोलित रहने लगा। पुराना पूजा-पाठ दूर हुआ, नई भक्ति जागी। मैं अनुभव करता जैसे मेरा कायाकल्प हो रहा है।"

बहनोई के निधन के बाद इनका जीवन एक बार फिर चंचल हुआ और फिर इन्होंने कई स्कूलों में दौड़ने के उपरान्त अपने जिले के सदरमुकाम में आकर सिलसिले से पढ़ाई शरु की। वहाँ इनके विचारों में परिपक्वता के साथ ही साहित्य में इनकी प्रवृत्ति भी अधिक झुकी। उन्हीं दिनों इन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा और मध्यमा की परीक्षा दी और विशारद बने। इस प्रकार 15 वर्ष की उम्र में ही ये विशारद बने तथा इसके पहले से ही पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कविताएं छपी। इनकी पहली कविता ही उस समय की प्रतिष्ठित पत्रिका 'प्रताप', जिसके सम्पादक गणेश शकंर 'विद्यार्थी' जी थे, में छपी थी।

रामवृक्ष बेनीपुरी मैट्रिक में पहुँचे ही थे कि गाँधी जी के आह्वाहन पर असहयोग आंदोलन की धूम में इन्होंने भी नियमित शिक्षा का परित्याग कर दिया और फिर आन्दोलन के बाद भी कभी नियमित शिक्षा नहीं ग्रहण की। इनके इस फैसले पर इनके स्कूल के प्रधानाचार्य ने इन्हें बहुत समझाने की कोशिश की, लेकिन रामवृक्ष बेनीपुरी अपने फैसले पर अडिग रहे।

15-16 वर्ष की अवस्था में ही रामवृक्ष बेनीपुरी की शॉदी उमारानी जी से हो गयी। इनके तीन पुत्र तथा एक पुत्री क्रमशः हुए- देवेन्द्र कुमार रामवृक्ष बेनीपुरी, जितेन्द्र कुमार रामवृक्ष बेनीपुरी, महेन्द्र कुमार रामवृक्ष बेनीपुरी तथा प्रभा रामवृक्ष बेनीपुरी। रामवृक्ष बेनीपुरी की पत्नी बहुत ही पतिपरायण तथा देशभक्त महिला थीं। अनेकों कष्ट झेलते हुए इन्होंने रामवृक्ष बेनीपुरी के जेल जाने पर सारा घर संभाला और हमेशा देश-सेवा के लिए बेनीपुरी को प्रोत्साहित किया। इन्होंने भारतीय नारी का गौरवशाली और अतुलनीय उदाहरण प्रस्तुत किया है।

गाँधी जी के असहयोग आन्दालेन के तूफान में पड़कर बेनीपुरी ने पढ़ाई छोड़ी और इसके बाद पूरे 25 वर्षों तक ये इस तूफान में चक्कर खाते रहे, बार-बार जेल जाते और इनका जीवन सदा संकटमय बना रहता। घर की आर्थिक स्थिति दिन-दिन बिगड़ती जाती थी। नियमित शिक्षा के परित्याग के उपरान्त रामवृक्ष बेनीपुरी ने पत्रकारिता के क्षेत्र में पैर रखा। पत्रकारिता को इन्होंने अन्तः प्रेरणा से अपनाया। इनकी शुरुआत 1921 ई., 'तरुण भारत' (साप्ताहिक) के सहकारी सम्पादक के रुप में हुआ। इसके पश्चात् ये 1922 ई. में 'किसान मित्र' (साप्ताहिक) के सहकारी सम्पादक बने। 1924 ई. में इन्होंने 'गाले माल' नामक हास्य-व्यंग्य (साप्ताहिक) के सहकारी सम्पादक का काम किया। 1926 ई. में इन्होंने 'बालक' (मासिक) पत्रिका का सम्पादन शुरु किया। इस पत्रिका से इन्हें काफी लोकप्रियता मिली। 1928-29 ई. में रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपने मित्र गंगाशरण सिंह और रामानन्दन मिश्र के साथ मिलकर पटना में, पटना कालेज के सामने 'युवक आश्रम' की स्थापना की जो कि छात्रों और युवकों को संगठित कर राष्ट्रीय आन्दालेन से जोड़ने का एक मंच था। इस संगठन की ओर से 1929 ई. में बेनीपुरी ने 'युवक' नामक मासिक-पत्र का प्रकाशन अपने सम्पादकत्व में किया। इस पत्र द्वारा इन्होंने किसान आन्दोलन का समर्थन किया। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में इस पत्रिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी और देश-प्रेम तथा राष्ट्रीयता की भावना के प्रचार-प्रसार में इस पत्रिका ने महती योगदान किया। 1930 ई. में इन्हें 6 महीने की सजा हुई और इन्हें हजारीबाग

जेल भेज दिया गया। यह इनकी पहली जेल यात्रा थी। यहाँ इन्होंने 'कैदी' नाम से एक हस्तलिखित पत्रिका निकाली।

सन् 1932 ई. में इन्हें डेढ़ वर्ष की सजा हुई जो कि इन्होंने हजारीबाग और पटना कैंप जेल में काटा। सन् 1934 ई. में इन्होंने मुजफ्फरपुर से प्रकाशित 'लाके संग्रह' और खंडवा (म.प्र.) से प्रकाशित 'कर्मवीर' में भी कुछ दिनों तक पं. माखनलाल चतुर्वेदी के साथ कार्यकारी संपादक की हैसियत से काम किया। फिर सन् 1935 ई. में इनके संपादन में पटना से साप्ताहिक 'योगी' का प्रकाशन आरम्भ हुआ, किन्तु, अपनी प्रखर राजनैतिक विचारधारा और ईमानदारी के कारण 'योगी' में ये नहीं टिक सके। सन् 1937 ई. में बेनीपुरी ने सोशलिस्ट पार्टी की पत्रिका 'जनता' (साप्ताहिक) का संपादन किया। इनके संपादन में 'जनता' के 'किसान अंक' और शॉहीद अंक' को ऐतिहासिक महत्त्व मिला। सन् 1937 में इन्हें तीन महीने की सजा हुई जो इन्होंने हजारीबाग जेल में काटा। तत्पश्चात् 1938 में दो दिन हाजत में सिटी जेल और पटना जेल में और सन् 1940 ई. में एक वर्ष की सजा हजारीबाग जेल में काटी। इसी दरम्यान एक मुकदमें के सिलसिले में छपरा जेल और सीवान जेल भी गये। सन् 1941 ई. में 6 महीने की सजा हाजीपुर और मुजफ्फरपुर जेल में काटा। सन् 1942 ई. के आंदोलन में गिरफ्तार होकर ये पुनः हजारीबाग जेल में रखे गये इस बार इन्होंने वहाँ से 'तूफान' नामक हस्तलिखित पत्रिका निकाली। सन् 1942 में डेढ़ साल की सजा, सीतामढ़ी जेल, 6 महीने की सजा मधुबनी जेल और दरंभगा जेल में काटी। तत्पश्चात् अगस्त 1942 से जुलाई 1945 तक हजारीबाग जेल में तीन वर्ष तक नजरबंद रहे। इस प्रकार रामवृक्ष बेनीपुरी ने बिहार के लगभग सभी जेलों में सजा काटी।

सन् 1946 ई. में आचार्य शिवपजून सहाय के साथ मिलकर रामवृक्ष बेनीपुरी ने 'हिमालय' (मासिक) का संपादन शुरु किया। सन् 1948 ई. में आचार्य नरेन्द्र देव के साथ इन्होंने 'जनवाणी' (मासिक) का संपादन किया। सन् 1950 ई. में 'नई धारा' (मासिक) जैसी पत्रिका के ये प्रधान संपादक हुए, साथ ही इन्होंने 'चुन्नू- मुन्नू' (मासिक) नामक बाल-पत्रिका का भी संपादन किया। सन् 1951 ई. में 'जनता' (दैनिक) के ये प्रधान संपादक बने।

बेनीपुरी कई संस्थाओं से संबंधित रहे हैं। 1919 ई. में बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना में इन्होंने सहयोग दिया तथा उसके सहकारी और संयुक्त मंत्री रहे। सन् 1946 से सन् 1950 तक ये उसके प्रधानमंत्री रहे

तत्पश्चात् सन् 1951 ई. में ये सभापति नियुक्त हुए। सन् 1929 ई. में रामवृक्ष बेनीपुरी अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचार मंत्री बने। उस समय गणेश शकर विद्यार्थी सभापति थे। रामवृक्ष बेनीपुरी सन् 1920 से सन् 1946 तक कांग्रेस के मेम्बर रहे। ये पटना शहर, कांग्रेस कमेटी के सभापति भी हुए तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य भी रहे, सन् 1926 ई. में बिहार राजनीतिक कान्फ्रेंस (मुंगरे) में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव रामवृक्ष बेनीपुरी ने पेश किया और यह प्रस्ताव पास होने में सफल रहा। इसी प्रकार कांग्रेस में जमींदारी उन्मूलन का प्रस्ताव रामवृक्ष बेनीपुरी ने ही पेश किया था। रामवृक्ष बेनीपुरी सन् 1937 के आम चुनाव के बाद दिल्ली में संयोजित नेशनल कान्वेंशन के सदस्य बने। ये 'बिहार सोशलिस्ट पार्टी', जो कि सन् 1931 में बनी, के संस्थापकों में थे। ये अखिल भारतीय कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की पहली कार्य- समिति के सदस्य भी रहे, इसके साथ ही ये सोशलिस्ट पार्टी (बिहार) के पार्लियामंटेरी बोर्ड के अध्यक्ष भी निर्वाचित हुए। बिहार के किसान आंदोलन में रामवृक्ष बेनीपुरी ने महती भूमिका निभाई। ये बिहार प्रांतीय किसान सभा के सभापति तथा भारतीय किसान सभा के उप-सभापति भी रह चुके हैं।

सन् 1954-1956 ई. में बेनीपुरी अपनी रचनाओं को ग्रन्थावली के रुप में प्रकाशित करने में व्यस्त रहे। इन्होंने अपनी रचनाओं को दस खण्डों में निकालने की योजना बनाई थी। सन् 1953 ई. के अंत तक रामवृक्ष बेनीपुरी ग्रंथावली का प्रथम खण्ड तथा दो साल बाद द्वितीय खण्ड प्रकाशित हुआ। किन्तु र्दुभाग्य से इस कड़ी में ये दो ही खंड प्रकाशित हो सके। सन् 1998 में बेनीपुरी के लगभग संपूर्ण साहित्य को 'रामवृक्ष बेनीपुरी ग्रंथावली' नाम से आठ भागों में प्रकाशित किया गया जिसके संपादक सुरेश शर्मा हैं।

सन् 1957 ई. में बिहार विधान सभा के सदस्य के रुप में रामवृक्ष बेनीपुरी निर्वाचित हुए। सन् 1958 में ये बिहार विश्वविद्यालय सिंडिकेट के सदस्य बनें। इन्होंने सन् 1959 में बागमती कॉलेज और गाँधी-भूमि की स्थापना के लिए जोरदार प्रयत्न किया। छठें दशक के शुरु में बेनीपुरी ने सोवियत संघ, तुर्की, इराक, सीरिया, बर्मा, थाईलैंड, चीन तथा विभिन्न यूरोपीय देशों की यात्राएं भी की।

बेनीपुरी को 1967 में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से सम्मानित किया गया तथा जनवरी सन्

1968 में बिहार-राष्ट्रभाषा- परिषद् द्वारा वयोवृद्ध साहित्यिक पुरस्कार एवं सम्मान से इन्हें अलंकृत किया गया।

रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपने क्षेत्र बागमती में कालेज खोलने और गाँधी-स्वाध्याय-मंदिर की स्थापना के लिए आवश्यक धनराशि एकत्र करने के लिए रात-दिन गाँव-गाँव चक्कर लगाया और अथक परिश्रम किया। सन् 1959 ई. के दिसंबर में राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के बिहार दौरे के कार्यक्रम में रामवृक्ष बेनीपुरी उनके हाथों जनाढ़ (मुजफ्फरपुर) में गाँधी-स्वाध्याय-मंदिर का शिलान्यास कराना चाहते थे और इस आशय से इन्होंने राष्ट्रपति से इस बात की स्वीकृति भी ली। किन्तु स्थानीय कांग्रेसी नेतागण और अधिकारियों ने इस कार्यक्रम को स्थगित करने का प्रयत्न करते हुए रामवृक्ष बेनीपुरी के साथ असहयोग किया। किन्तु रामवृक्ष बेनीपुरी के अथक प्रयत्न और राजेन्द्र बाबू की सदाशयता से यह कार्यक्रम सम्पन्न हुआ और जनाढ़ में राष्ट्रपति द्वारा गाँधी-स्वाध्याय-मंदिर की नींव रखी गयी।

रचनाएँ

रामवृक्ष बेनीपुरी की आत्मा में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी, जिसके कारण आजीवन वह चौन की साँस न ले सके। उनके फुटकर लेखों से और उनके साथियों के संस्मरणों से ज्ञात होता है कि जीवन के प्रारंभ काल से ही क्रान्तिकारी रचनाओं के कारण बार-बार उन्हें कारावास भोगना पड़ता। सन् 1942 में 'अगस्त क्रांति आंदोलन' के कारण उन्हें हजारीबाग जेल में रहना पड़ा था। जेलवास में भी वह शान्त नहीं बैठे सकते थे। वे वहाँ जेल में भी आग भड़काने वाली रचनायें लिखते। जब भी वे जेल से बाहर आते, उनके हाथ में दो-चार ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ अवश्य होती थीं, जो आज साहित्य की अमूल्य निधि बन गई हैं। उनकी अधिकतर रचनाएँ जेल प्रवास के दौरान लिखी गईं।

उपन्यास-पतितों के देश में, आम्रपाली

कहानी संग्रह-माटी की मूरतें

निबंध-चिता के फूल, लाल तारा, कैदी की पत्नी, गेहूँ और गुलाब, जंजीरें और दीवारें

नाटक-सीता का मन, संघमित्रा, अमर ज्योति, तथागत, शकुंतला, रामराज्य, नेत्रदान, गाँवों के देवता, नया समाज, विजेता, बैजू मामा

संपादन-विद्यापति की पदावली

साहित्यकारों के प्रति सम्मान

रामवृक्ष बेनीपुरी की अनेक रचनाएँ, जो यश कलगी के समान हैं, उनमें 'जय प्रकाश', 'नेत्रदान', 'सीता की माँ', 'विजेता', 'मील के पत्थर', 'गेहूँ और गुलाब' आदि शामिल हैं। 'शेक्सपीयर के गाँव में' और 'नींव की ईंट', इन लेखों में भी रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपने देश प्रेम, साहित्य प्रेम, त्याग की महत्ता और साहित्यकारों के प्रति जो सम्मान भाव दर्शाया है, वह अविस्मरणीय है। इंग्लैण्ड में शेक्सपियर के प्रति जो आदर भाव उन्हें देखने को मिला, वह उन्हें सुखद भी लगा और दु:खद भी। शेक्सपियर के गाँव के मकान को कितनी संभाल, रक्षण-सजावट के साथ संभाला गया है। उनकी कृतियों की मूर्तियाँ बनाकर वहाँ रखी गई हैं, यह सब देख कर वे प्रसन्न हुए थे। पर दु:खी इस बात से हुए कि हमारे देश में सरकार भूषण, बिहारी, सूरदास और जायसी आदि महान् साहित्यकारों के जन्म स्थल की सुरक्षा या उन्हें स्मारक का रूप देने का भी प्रयास नहीं करती। उनके मन में अपने प्राचीन महान् साहित्यकारों के प्रति अति गहन आदर भाव था। इसी प्रकार 'नींव की ईंट' में भाव था कि जो लोग इमारत बनाने में तन-मन कुर्बान करते हैं, वे अंधकार में विलीन हो जाते हैं। बाहर रहने वाले गुम्बद बनते हैं और स्वर्ण पत्र से सजाये जाते हैं। चोटी पर चढ़ने वाली ईंट कभी नींव की ईंट को याद नहीं करती।

ख्याति

पत्रकार और साहित्यकार के रूप में बेनीपुरीजी ने विशेष ख्याति अर्जित की थी। उन्होंने विभिन्न समयों में लगभग एक दर्जन पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। उनकी लेखनी बड़ी निर्भीक थी। उन्होंने इस कथन को अमान्य सिद्ध कर दिया था कि अच्छा पत्रकार अच्छा साहित्यकार नहीं हो सकता। उनका विपुल साहित्य, शैली, भाषा और विचारों की दृष्टि से बड़ा ही प्रभावकारी रहा है। उपन्यास, जीवनियाँ, कहानी संग्रह, संस्मरण आदि विधाओं की लगभग 80 पुस्तकों की उन्होंने रचना की थी। इनमें 'माटी की मूरतें' अपने जीवंत रेखाचित्रों के लिए आज भी याद की जाती हैं।

विधान सभा सदस्य

रामवृक्ष बेनीपुरी 1957 में बिहार विधान सभा के सदस्य भी चुने गए थे। सादा जीवन और उच्च विचार के आदर्श पर चलते हुए उन्होंने समाज सेवा के

क्षेत्र में बहुत काम किया था। वे भारतीयता के सच्चे अनुयायी थे और सामाजिक भेदभावों पर विश्वास नहीं करते थे।

दिनकरजी का कथन

रामधारी सिंह दिनकर ने एक बार बेनीपुरीजी के विषय में कहा था कि- 'स्वर्गीय पंडित रामवृक्ष बेनीपुरी केवल साहित्यकार नहीं थे, उनके भीतर केवल वही आग नहीं थी, जो कलम से निकल कर साहित्य बन जाती है। वे उस आग के भी धनी थे, जो राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनों को जन्म देती है, जो परंपराओं को तोड़ती है और मूल्यों पर प्रहार करती है। जो चिंतन को निर्भीक एवं कर्म को तेज बनाती है। बेनीपुरीजी के भीतर बेचौन कवि, बेचैन चिंतक, बेचैन क्रान्तिकारी और निर्भीक योद्धा सभी एक साथ निवास करते थे।'

रामवृक्ष बेनीपुरी की मृत्यु

मानसिक तनाव और दौड़-भाग के कारण रामवृक्ष बेनीपुरी का रक्तचाप काफी बढ़ गया और ये पक्षाघात के शिकार हो गये। वाणी ने इनका साथ छोड़ दिया और इनकी स्मरण-शक्ति लुप्त हो गयी। राष्ट्रपति जब गाँधी स्वाध्याय मंदिर का शिलान्यास करने आये तो रामवृक्ष बेनीपुरी स्वागत के दो शब्द भी नहीं बोल पाये। मंच पर होते हुए भी ये मौन रहे। इनकी आँखें खुशी से रो रही थी और राजेन्द्र बाबू के प्रति कृतज्ञता में दोनों हाथ जुड़े हुए थे। राष्ट्रपति ने भी इनके राजनैतिक जीवन-संघर्ष, त्याग-तपस्या और रचना-कर्म की प्रशंसा की और इनके अचानक बीमारी पर चिंता व्यक्त की। समारोह के बाद ये राजेन्द्र बाबू के साथ ही मुजफ्फरपुर लौटे और अस्पताल में दाखिल हुए। तत्पश्चात् पटना और दिल्ली में भी इलाज हुआ पर ये स्वस्थ न हो सके। इसी दारुण स्थिति में लगभग सात-आठ वर्षों तक ये जिन्दगी व मौत से जूझते रहे। एक दिन तबीयत काफी बिगड़ जाने पर बेहोशी की हालत में इन्हें मुजफ्फरपुर लाया गया और वही पर 7 सितम्बर 1968 ई. में इनका निधन हो गया।

रामवृक्ष बेनीपुरी के निधन के पश्चात् इनकी इच्छानुसार पार्थिव शरीर को गाँव ले जाया गया और 'माटी की मूरतो के बीच इन्हीं के द्वारा रोपे गये मौलसिरी वृक्ष की छाया में इनकी चिता जली।

37

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के महान साहित्यकार, पत्रकार एवं युगप्रवर्तक थे। उन्होंने हिंदी साहित्य की अविस्मरणीय सेवा की और अपने युग की साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना को दिशा और दृष्टि प्रदान की। उनके इस अतुलनीय योगदान के कारण आधुनिक हिंदी साहित्य का दूसरा युग 'द्विवेदी युग' (1900-1920) के नाम से जाना जाता है। उन्होंने सत्रह वर्ष तक हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका सरस्वती का सम्पादन किया। हिन्दी नवजागरण में उनकी महान भूमिका रही। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को गति व दिशा देने में भी उनका उल्लेखनीय योगदान रहा।

जीवन परिचय

महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म उत्तर प्रदेश के (बैसवारा) रायबरेली जिले के दौलतपुर गाँव में 15 मई 1864 को हुआ था। इनके पिता का नाम पं. रामसहाय दुबे था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। धनाभाव के कारण इनकी शिक्षा का क्रम अधिक समय तक न चल सका। इन्हें जी आई पी रेलवे में नौकरी मिल गई। 25 वर्ष की आयु में रेल विभाग अजमेर में 1 वर्ष का प्रवास। नौकरी छोड़कर पिता के पास मुंबई प्रस्थान एवं टेलीग्राफ का काम सीखकर इंडियन मिडलैंड रेलवे में तार बाबू के रूप में नियुक्ति। अपने उच्चाधिकारी से न पटने और स्वाभिमानी स्वभाव के कारण 1904 में झाँसी में रेल विभाग की 200 रुपये मासिक वेतन की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

नौकरी के साथ-साथ द्विवेदी अध्ययन में भी जुटे रहे और हिंदी के अतिरिक्त मराठी, गुजराती, संस्कृत आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

सन् 1903 में द्विवेदी जी ने सरस्वती मासिक पत्रिका के संपादन का कार्यभार सँभाला और उसे सत्रह वर्ष तक कुशलतापूर्वक निभाया। 1904 में नौकरी से त्यागपत्र देने के पश्चात स्थायी रूप से 'सरस्वतीश्के संपादन कार्य में लग गये। 200 रूपये मासिक की नौकरी को त्यागकर मात्र 20 रूपये प्रतिमास पर सरस्वती के सम्पादक के रूप में कार्य करना उनके त्याग का परिचायक है। संपादन-कार्य से अवकाश प्राप्त कर द्विवेदी जी अपने गाँव चले आए। अत्यधिक रुग्ण होने से 21 दिसम्बर 1938 को रायबरेली में इनका स्वर्गवास हो गया।

प्रकाशित कृतियाँ

महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी के पहले लेखक थे, जिन्होंने केवल अपनी जातीय परंपरा का गहन अध्ययन ही नहीं किया था, बल्कि उसे आलोचकीय दृष्टि से भी देखा था। उन्होंने अनेक विधाओं में रचना की। कविता, कहानी, आलोचना, पुस्तक समीक्षा, अनुवाद, जीवनी आदि विधाओं के साथ उन्होंने अर्थशास्त्र, विज्ञान, इतिहास आदि अन्य अनुशासनों में न सिर्फ विपुल मात्रा में लिखा, बल्कि अन्य लेखकों को भी इस दिशा में लेखन के लिए प्रेरित किया। द्विवेदी जी केवल कविता, कहानी, आलोचना आदि को ही साहित्य मानने के विरुद्ध थे। वे अर्थशास्त्र, इतिहास, पुरातत्त्व, समाजशास्त्र आदि विषयों को भी साहित्य के ही दायरे में रखते थे। वस्तुतः स्वाधीनता, स्वदेशी और स्वावलंबन को गति देने वाले ज्ञान-विज्ञान के तमाम आधारों को वे आंदोलित करना चाहते थे। इस कार्य के लिये उन्होंने सिर्फ उपदेश नहीं दिया, बल्कि मनसा, वाचा, कर्मणा स्वयं लिखकर दिखाया।

उन्होंने वेदों से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के संस्कृत-साहित्य की निरंतर प्रवहमान धारा का अवगाहन किया था एवं उपयोगिता तथा कलात्मक योगदान के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टि अपनायी थी। उन्होंने श्रीहर्ष के संस्कृत महाकाव्य नैषधीयचरितम् पर अपनी पहली आलोचना पुस्तक 'नैषधचरित चर्चा ' नाम से लिखी (1899), जो संस्कृत-साहित्य पर हिन्दी में पहली आलोचना-पुस्तक भी है। फिर उन्होंने लगातार संस्कृत-साहित्य का अन्वेषण, विवेचन और मूल्यांकन किया। उन्होंने संस्कृत के कुछ महाकाव्यों के हिन्दी में

औपन्यासिक रूपांतर भी किये, जिनमें कालिदास कृत रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, किरातार्जुनीय प्रमुख हैं।

संस्कृत, ब्रजभाषा और खड़ी बोली में स्फुट काव्य-रचना से साहित्य-साधना का आरंभ करने वाले महावीर प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत और अंग्रेजी से क्रमशः ब्रजभाषा और हिन्दी में अनुवाद-कार्य के अलावा प्रभूत समालोचनात्मक लेखन किया। उनकी मौलिक पुस्तकों में नाट्यशास्त्र(1904 ई.), विक्रमांकदेव चरितचर्या(1907 ई.), हिन्दी भाषा की उत्पत्ति(1907 ई.) और संपत्तिशास्त्र(1907 ई.) प्रमुख हैं तथा अनूदित पुस्तकों में शिक्षा (हर्बर्ट स्पेंसर के 'एजुकेशन' का अनुवाद, 1906 ई.) और स्वाधीनता (जान, स्टुअर्ट मिल के 'ऑन लिबर्टी' का अनुवाद, 1907 ई.)।

द्विवेदी जी ने विस्तृत रूप में साहित्य रचना की। इनके छोटे-बड़े ग्रंथों की संख्या कुल मिलाकर 81 है। पद्य के मौलिक-ग्रंथों में काव्य-मंजूषा, कविता कलाप, देवी-स्तुति, शतक आदि प्रमुख हैं। गंगालहरी, तु तरंगिणी, कुमार संभव सार आदि इनके अनूदित पद्य-ग्रंथ हैं।

गद्य के मौलिक ग्रंथों में तरुणोपदेश, नैषध चरित्र चर्चा, हिंदी कालिदास की समालोचना, नाट्य शास्त्र, हिंदी भाषा की उत्पत्ति, कालीदास की निरंकुशता आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अनुवादों में वेकन विचार, रत्नावली, हिंदी महाभारत, वेणी संसार आदि प्रमुख हैं।

वर्ण्य विषय

हिंदी भाषा के प्रसार, पाठकों के रुचि परिष्कार और ज्ञानवर्धन के लिए द्विवेदी जी ने विविध विषयों पर अनेक निबंध लिखे। विषय की दृष्टि से द्विवेदी जी निबंध आठ भागों में विभाजित किए जा सकते हैं-साहित्य, जीवन चरित्र, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, उद्योग, शिल्प भाषा, अध्यात्म। द्विवेदी जी ने आलोचनात्मक निबंधों की भी रचना की। उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में संस्कृत टीकाकारों की भांति कृतियों का गुण-दोष विवेचन किया और खंडन-मंडन की शास्त्रार्थ पद्धति को अपनाया है।

भाषा

द्विवेदी जी सरल और सुबोध भाषा लिखने के पक्षपाती थे। उन्होंने स्वयं सरल और प्रचलित भाषा को अपनाया। उनकी भाषा में न तो संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है और न उर्दू-फारसी के अप्रचलित शब्दों की भरमार है।

वे गृह के स्थान पर घर और उच्च के स्थान पर ऊँचा लिखना अधिक पसंद करते थे। द्विवेदी जी ने अपनी भाषा में उर्दू और फारसी के शब्दों का निस्संकोच प्रयोग किया, किंतु इस प्रयोग में उन्होंने केवल प्रचलित शब्दों को ही अपनाया। द्विवेदी जी की भाषा का रूप पूर्णत: स्थित है। वह शुद्ध परिष्कृत और व्याकरण के नियमों से बंधी हुई है। उनका वाक्य-विन्यास हिंदी को प्रकृति के अनुरूप है कहीं भी वह अंग्रेजी या उर्दू के ढंग का नहीं।

शैली

द्विवेदी जी की शैली के मुख्यत: तीन रूप दृष्टिगत होते हैं–

परिचयात्मक शैली

द्विवेदी जी ने नये-नये विषयों पर लेखनी चलाई। विषय नये और प्रारंभिक होने के कारण द्विवेदी जी ने उनका परिचय सरल और सुबोध शैली में कराया। ऐसे विषयों पर लेख लिखते समय द्विवेदी जी ने एक शिक्षक की भांति एक बात को कई बार दुहराया है ताकि पाठकों की समझ में वह भली प्रकार आ जाए। इस प्रकार लेखों की शैली परिचयात्मक शैली है।

आलोचनात्मक शैली

हिंदी भाषा के प्रचलित दोषों को दूर करने के लिए द्विवेदी जी इस शैली में लिखते थे। इस शैली में लिखकर उन्होंने विरोधियों को मुंह-तोड़ उत्तर दिया। यह शैली ओजपूर्ण है। इसमें प्रवाह है और इसकी भाषा गंभीर है। कहीं-कहीं यह शैली ओजपूर्ण न होकर व्यंग्यात्मक हो जाती है। ऐसे स्थलों पर शब्दों में चुलबुलाहट और वाक्यों में सरलता रहती है। 'इस म्यूनिसिपाल्टी के चेयरमैन (जिसे अब कुछ लोग कुर्सी मैन भी कहने लगे हैं) श्रीमान बूचा शाह हैं। बाप दादे की कमाई का लाखों रुपया आपके घर भरा है। पढ़े-लिखे आप राम का नाम हैं। चेयरमैन आप सिर्फ इसलिए हुए हैं कि अपनी कार गुजारी गवर्नमेंट को दिखाकर आप राय बहादुर बन जाएं और खुशामदियों से आठ पहर चौंसठ घर-घिरे रहें।'

विचारात्मक अथवा गवेषणात्मक शैली

गंभीर साहित्यिक विषयों के विवेचन में द्विवेदी जी ने इस शैली को अपनाया है। इस शैली के भी दो रूप मिलते हैं। पहला रूप उन लेखों में मिलता

है, जो किसी विवादग्रस्त विषय को लेकर जनसाधारण को समझाने के लिए लिखे गए हैं। इसमें वाक्य छोटे-छोटे हैं। भाषा सरल है। दूसरा रूप उन लेखों में पाया जाता है, जो विद्वानों को संबोधित कर लिखे गए हैं। इसमें वाक्य अपेक्षाकृत लंबे हैं। भाषा कुछ क्लिष्ट है। उदाहरण के लिए -

अप्समार और विक्षिप्तता मानसिक विकार या रोग है। उसका संबंध केवल मन और मस्तिष्क से है। प्रतिभा भी एक प्रकार का मनोविकार ही है। इन विकारों की परस्पर इतनी संलग्नता है कि प्रतिभा को अप्समार और विक्षिप्तता से अलग करना और प्रत्येक परिणाम समझ लेना बहुत ही कठिन है।

महत्त्वपूर्ण कार्य

हिंदी साहित्य की सेवा करने वालों में द्विवेदी जी का विशेष स्थान है। द्विवेदी जी की अनुपम साहित्य-सेवाओं के कारण ही उनके समय को द्विवेदी युग के नाम से पुकारा जाता है।

भारतेंदु युग में लेखकों की दृष्टि की शुद्धता की ओर नहीं रही। भाषा में व्याकरण के नियमों तथा विराम-चिह्नों आदि की कोई परवाह नहीं की जाती थी। भाषा में आशा किया, इच्छा किया जैसे प्रयोग दिखाई पड़ते थे। द्विवेदी जी ने भाषा के इस स्वरूप को देखा और शुद्ध करने का संकल्प किया। उन्होंने इन अशुद्धियों की ओर आकर्षित किया और लेखकों को शुद्ध तथा परिमार्जित भाषा लिखने की प्रेरणा दी।

द्विवेदी जी ने खड़ी बोली को कविता के लिए विकास का कार्य किया। उन्होंने स्वयं भी खड़ी बोली में कविताएं लिखीं और अन्य कवियों को भी उत्साहित किया। श्री मैथिली शरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय जैसे खड़ी बोली के श्रेष्ठ कवि उन्हीं के प्रयत्नों के परिणाम हैं।

द्विवेदी जी ने नये-नये विषयों से हिंदी साहित्य को संपन्न बनाया। उन्हीं के प्रयासों से हिंदी में अन्य भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद हुए तथा हिंदी-संस्कृत के कवियों पर आलोचनात्मक निबंध लिखे गए।

पत्रकारिता में योगदान

हिन्दी पत्रकारिता जगत में जब हम संपादकों के योगदान की चर्चा करते हैं तो उसमें महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम अग्रणी है। वास्तव में द्विवेदी जी ने हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में एक नए युग की स्थापना की। इसमें 'सरस्वती'

की भी बराबर की भूमिका रही। 'सरस्वती' के प्रवेशांक में पत्रिका के उद्देश्य की चर्चा करते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'इसके प्रकाशन का उद्देश्य पाठकों को विविध विषय का ज्ञान कराना है।' वास्तव में 'सरस्वती' पत्रिका का उद्देश्य बहुत व्यापक था। इसमें लगभग सभी विधाओं जैसे-कविता, कहानी, एकांकी, समालोचना और पुस्तक परिचय, कला-सभ्यता, इतिहास, लोकगीत आदि सांस्कृतिक विषयों पर लेख तथा अन्य भाषाओं के साहित्य के अनुवाद को लाने का भरसक प्रयास किया है। 'सरस्वती' बहुर्मुखी एवं व्यापक विषयों पर लेख प्रकाशित करती थी। कुमारी चारलोट एम यंग द्वारा रचित पुस्तक 'बुक ऑफ गोल्डेन डीड्स' से प्रभावित गणेश शंकर का 'आत्मोत्सर्ग' शीर्षक लेख 1909 में सरस्वती में ही प्रकाशित हुआ था।

डॉ. रामविलास शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि 'द्विवेदी जी सीमित अर्थों में साहित्यकार नहीं हैं। उनका उद्देश्य हिंदी प्रदेश में नवीन सामाजिक चेतना का प्रसार करना रहा है, उन्होंने उसे साबित भी किया।' डॉ. शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' में 'सरस्वती' के संदर्भ में कई महत्त्वपूर्ण संकेत किए हैं। सही अर्थों में देखा जाय तो 'सरस्वती' सांस्कृतिक निर्माण की पत्रिका थी। 'सरस्वती' पत्रिका ने न केवल हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में, अपितु समग्र हिंदी साहित्य के विकास की दृष्टि से कई मानदंड स्थापित किए। इस पत्रिका के माध्यम से हिंदी के मानक रूप गढ़े गए और हिंदी साहित्य को परिष्कृत रूप में समृद्ध किया गया। द्विवेदी जी के संपादकत्व में पत्रिका का न सिर्फ साहित्यिक दृष्टिकोण बदला बल्कि 'सरस्वती' अपनी निजी भाषा और सामग्री के माध्यम से पाठक को अपनी ओर आकर्षित करने में भी सफल रही। 'सरस्वती' ने हिंदी भाषा और साहित्य के विकास के लिए जितना कार्य किया, वह बाद की पत्रिकाओं द्वारा न हो सका।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा को न सिर्फ सरल, सुगम एवं सुबोध बनाने का प्रयास किया बल्कि उसके परिमार्जन के साथ-साथ शब्द-चयन, पद-रचना, वाक्य-विन्यास की दृष्टि से भी भाषा को व्याकरण अनुशासित करने का भी पुरजोर प्रयत्न किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने द्विवेदी जी के महत्त्व को रेखांकित करते हुए लिखा है- "यदि द्विवेदी जी न उठ खड़े होते तो जैसी अव्यवस्थित व्याकरण विरूद्ध और ऊटपटांग भाषा चरों ओर दिखाई पड़ती थी, उसकी परंपरा जल्दी न रूकती। उसके प्रभाव से लेखक सावधान हो गए और जिनमें भाषा की समझ और योग्यता थी उन्होंने अपना सुधार किया।" उन्होंने

'सरस्वती' को भाषा संस्कार, साहित्य संस्कार और हिंदी भाषी जाति के मानस संस्कार का प्रतीक बनाया। हिंदी की अनस्थिरता को स्थिरता प्रदान करने एवं गद्य-पद्य की भाषा में एकरूपता लाने में द्विवेदी जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस संदर्भ में उन्होंने अपने एक लेख में लिखा है- 'गद्य और पद्य की भाषा पृथक-पृथक नहीं होनी चाहिए। यह एक हिंदी ही ऐसी भाषा है जिसके गद्य में एक प्रकार की और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा लिखी जाती है। सभ्य समाज की जो भाषा हो उसी भाषा में गद्य-पद्यात्मक साहित्य होना चाहिए।... इसलिए कवियों को चाहिए कि क्रम-क्रम से वे गद्य की भाषा में भी कविता लिखना आरंभ करें। बोलना एक भाषा और कविता में प्रयोग करना दूसरी भाषा, प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है।'

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में हिंदी भाषा विषयक एक लेख प्रकाशित किया। इस लेख में उन्होंने हिंदी में प्रयुक्त होनेवाले अंग्रेजी के शब्दों की उत्पत्ति पर विचार किया था। उन्होंने लिखा था–'जान पड़ता है कि हिंदी ही से अंग्रेजी के शब्द की उत्पत्ति हुई है। यूरोप से पहले-पहल पुर्तगीज भारत आए। उन्होंने भी हिंदी में कुछ शब्द प्रविष्ट करा दिए। उनके द्वारा प्रयुक्त कैमरा हिंदी में कमरा हो गया और आक्सन से नीलाम बना।' 'बिहार बंधु' उनकी शब्दोत्पत्ति विषयक इस स्थापना से सहमत नहीं हुआ। उसने अपने पत्र में प्रकाशित ठाकुर अयोध्या प्रसाद सिंह के लेख का हवाला देते हुए लिखा 'द्विवेदी जी का शब्दोत्पत्ति पर अनुमान और नियंत्रण के संग-संग प्रमाण भी विचित्र ढंग का निकला था। पर ठाकुर अयोध्या प्रसाद ने सारा पोल खोल दिया। एक समय द्विवेदी साहब ने बाबू साहब से प्रार्थना की थी कि आप ऐसी बातों पर नुक्ताचीनी करना छोड़ दीजिए। मगर बाबू साहब ने इस गुड्डी को और आकाश में उड़ा दिया। आश्चर्य हमें तो वहीं होता है कि ऐसी निपुणता रखकर भी लोग हिंदी में मर्मज्ञ होने का अभिमान करते हैं। छिः।' इसी लेख में उसने लिखा 'द्विवेदी जी उर्दू को भी हिंदी का एक स्टाइल मानते हैं और बाबू श्यामसुंदर दास हिंदी और उर्दू को दो भिन्न और पृथक भाषा मानते थे। पर क्या एडीटर के बदलने से पेपर की पालिसी भी बदल गई? धन्य है।'

'बिहार बंधु' और 'भारत मित्र' अपने समय के प्रसिद्ध पत्र थे। दोनों अपने पाठकों को नए विचार, नए संदेश एवं नई प्रेरणाओं से संबलित करने में तल्लीन थे। परंतु दोनों में किसी विषय पर सैद्धांतिक मतभेद हो जाना असंभव नहीं था। हिंदी भाषा के मानकीकरण संबंधी नीति को लेकर प्रचलित भाषिक

अस्थिरता पर दोनों ही पत्रों का ऐतिहासिक विवाद 1902 से 1908 ई. तक चला जो काफी प्रसिद्ध हुआ। इस वाद-विवाद में खुलकर भाग लेनेवालों में 'सरस्वती', 'भारत मित्र', 'हिंदी बंगवासी', 'समालोचक', 'वैश्योपकारक' और 'बिहार बंधु' के ख्यातिलब्ध पत्रकार थे, जिनके दो दल हो गए थे। एक दल का नेतृत्व आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी कर रहे थे तो दूसरे दल का बालमुकुंद गुप्त।

उक्त विवाद लंबे समय तक चला क्योंकि हिंदी के दो महारथियों का वह झगड़ा था, जिससे हिंदी के अनेक विद्वानों के धौरंधरिक संबंध हो गए थे। 1902 से 1907 ई. तक 'बिहार बंधु' के प्रायः प्रत्येक अंक इन्हीं विवादों से भरे हैं। उन्हें देखने से ऐसा लगता है कि इन दोनों पत्रों के भाषागत सैद्धांतिक विवादों से पाठक वर्ग भी ऊब चुका था। मई 1907 के अंक में कलकत्ते के किसी पाठक 'श. हि.' का 'भाइयो, अब क्षमा करो' शीर्षक से एक पत्र प्रकाशित हुआ। पत्रप्रेषक ने दुर्भावनारहित होकर लिखा था ''बिहार बंधु और भारतमित्र के संपादक में आपस में जब तक काम-काज की छेड़-छाड़ चलती थी तो उतना हरज नहीं था, पर आपस की जलन बुझाने के लिए अब फिजूल बकवाद हो रहा है। भारतमित्र तो साग में हल्दी न डालने पर किस तरह वृथा बात बढ़ाए जाता है, वह स्पष्ट है। आप लोग सर्वसाधारण के उपकार के लिए पत्र छापते हैं इसलिए केवल अपनी हवस के लिए पत्र का कीमती कालम खराब करने का अधिकार हमारे जानते किसी संपादक को नहीं है। दोनों ओर के हिमायतियों को भी इस वृथा काम से हाथ खींचने का हम अनुरोध करते हैं।'' उल्लेखनीय है कि इन दोनों पत्रों के विवादों ने हिंदी के संवर्धन का स्वस्थ प्रयास किया। भाषिक विशिष्टता की स्थापना हेतु उन दोनों ने जिस कटु किंतु रचनात्मक परिवेश को अपनाया, वह निश्चय ही सराहनीय था।

डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' में द्विवेदी जी और 'सरस्वती' के वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए लिखा है–"यदि द्विवेदी जी द्वारा संपादित सरस्वती के पुराने अंक उठाकर किसी भी नई-पुरानी पत्रिका के अंकों से मिलाए जाएँ तो ज्ञात होगा कि पुराने हो चुकने पर भी इन अंकों में सीखने-समझने के लिए अन्य पत्रिकाओं की अपेक्षा कहीं अधिक सामग्री है। 'सरस्वती' सबसे पहले ज्ञान की पत्रिका थी। वह हिंदी नवजागरण का मुख पत्र थी और हिंदी भाषी जनता की सर्वमान्य जातीय पत्रिका

भी, ऐसे साहित्य की जो रूढ़िवादी रीतियों का नाश करके नवीन सामाजिक, सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप रचा जा रहा था।

'सरस्वती' मासिक पत्रिका के महान संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लेखक ही नहीं बनाये अपितु कई संपादक भी गढ़े। बाबूराव विष्णु पराड़कर और गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे पत्रकार तैयार किए जिन्हें देश की सामाजिक, सास्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का सम्पूर्ण ज्ञान था। 'सरस्वती' को सहायक संपादक की जरूरत थी। अतएव 2 नवंबर 1911 से आचार्य ने श्री गणेश शंकर विद्यार्थी को पच्चीस रुपये प्रति माह के वेतन पर सहायक संपादक के पद पर नियुक्त कर लिया। शीघ्र ही युवा एवं उत्साही सहायक संपादक ने आचार्य को अपने कार्य व परिश्रम से मुग्ध कर लिया। 'सरस्वती' पत्रिका में काम करने के कारण गणेश शंकर विख्यात हो गये। 'सरस्वती' पत्रिका साहित्यिक थी और गणेश शंकर विद्यार्थी का रुझान राजनीतिक पत्रकारिता की ओर था।

अत: 'अभ्युदय' के संचालकों ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया। 29 दिसंबर, 1912 को इलाहाबाद पहुँचकर 'अभ्युदय' में कार्यभार ग्रहण कर लिया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और गणेश शंकर विद्यार्थी पत्रकारिता के क्षेत्र में पृथक अवश्य हो गए थे, परन्तु उनके पारस्परिक संबंध पहले ही जैसे बने रहे। विद्यार्थी जी आचार्य को 'सदैव गुरु की भाँति सम्मान देते थे और आचार्य कई मामलों में उन्हें अपना दिशा-निर्देशक मानते थे।' 'प्रताप' के प्रकाशन के अवसर पर महावीर प्रसाद द्विवेदी ने गणेश शंकर विद्यार्थी को न केवल आशीर्वाद दिया वरन उन्हें एक सिद्धान्त-सूचक पद भी दिया जो निम्नवत था–'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है। वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।'

महावीर प्रसाद द्विवेदी सिद्धांतत: व्यक्ति स्वातंत्र्य के समर्थक थे, पर व्यवहार के स्तर पर इसके विरोधी थे। इसके प्रमाण में मैथिलीशरण गुप्त को लिखे गए एक पत्र को उद्धृत किया जा सकता है। वे लिखते हैं–"आगे से आप सरस्वती में लिखना चाहें तो इधर-उधर अपनी कविताएं छपाने का विचार छोड़ दीजिए। जिस कविता को हम चाहें, उसे छापेंगे। जिसे न चाहें उसे न कहीं दूसरी जगह छपाइए, न किसी को दिखाइए, ताले में बंद करके रखिए।" इस सन्दर्भ में गणेश शंकर विद्यार्थी का प्रसंग भी ध्यान देने लायक है। विद्यार्थी जी जब सरस्वती को छोड़कर अभ्युदय चले गए थे तो आचार्य ने उन्हें भी हल्की डांट

पिलायी थी। उन्होंने लिखा है–'गणेश ने उनसे (अभ्युदय) सेवा शर्तें तय करने के पश्चात् मुझे सूचना दी। क्योंकि मैं जाने की अनुमति देने के लिए विवश था, इसलिए मैंने आज्ञा दे दी। परन्तु मैंने भी उन्हें ऐसा करने के लिए हल्की सी डांट पिलाई। उनसे मैंने स्पष्ट रूप से पूछा कि मुझ से बिना परामर्श लिए उन्होंने कैसे यह सब मामला तय कर लिया?...मेरी हल्की डांट से गणेश बहुत प्रभावित हुए और अपने किये पर पश्चाताप करने लगे।'

द्विवेदी जी का मानना था कि हमें अपने लिखे हुए पर परिशोधन अथवा संशोधन को स्वीकार करना चाहिए। इस संदर्भ में उनका स्पष्ट मत था कि– "अपना लिखा सभी को अच्छा लगता है परंतु उसके अच्छे-बुरे का विचार दूसरे लोग ही कर सकते हैं। जो लेख हमने लौटाए वह समझ-बूझकर ही लौटाए, किसी और कारण से नहीं। अतएव यदि उसमें किसी को बुरा लगा तो हमें खेद है। यदि हमारी बुद्धि के अनुसार लेख हमारे पास आवें तो उन्हें हम क्यों लौटाएँ। उनको हम आदर स्वीकार करें, भेजने वाले को भी धन्यवाद दें और उसके साथ ही यदि हो सके तो कुछ पुरस्कार भी दें। यदि किसी को सर्वज्ञता का घमंड नहीं है तो वह अपने लेख में दूसरे के द्वारा किए हुए परिशोधन को देखकर कदापि रुष्ट नहीं होगा। लेखक अपने लेख का प्रूफ स्वयं शोध सकता है और संशोधन के समय हमारे किए गए परिवर्तन यदि उसे ठीक न जान पड़े तो वह हमें सूचना देकर वह उसको अपने मनोनुकूल बना सकता है।"

प्रचलित है कि एक शाम के पी जायसवाल और दिनकर 'गप्प-शप्प' के मूड में बैठे थे। जायसवाल जी ने शुरुआत की, 'हिंदी में केवल दोय कवि भये।' दिनकर ने पूछा, 'वे कौन हैं भला?' उन्होंने कहा, 'एक तो वही चंद, और दूसरा यही हरिचंद।' दिनकर ने अकचकाकर पूछा, 'और तुलसीदास?' वे बोले, 'अरे, तुलसिया भी कौनो कवि रहा? उसकी तो बंदरवा न सुधार देता रहा जैसे गुप्तवा की महविरवा।' कहावत है कि तुलसीदास की अधूरी कविताओं को हनुमान जी पूर्ण कर देते थे और इधर तो सर्वविदित ही है कि मैथिलीशरण जी की कविताओं का संशोधन पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी किया करते थे।

द्विवेदी जी की यह खासियत थी कि वह साहित्यिक कृतियों के संदर्भ में किसी भी लाग-लपेट के बगैर रचना केन्द्रित उसका मूल्यांकन करते थे। यही कारण है कि सरस्वती पत्रिका में जितनी भी रचनाएँ प्रकाशित हुई वह हमेशा स्तरीय रहीं। 'सरस्वती' पत्रिका के अंक की संपादकीय में पत्रिका के उद्देश्य एवं महत्ता के संबंध में संपादक ने लिखा है- 'सरस्वती में केवल उत्कृष्ट कोटि

की रचनाओं को ही महत्त्व दिया जाएगा और उनकी उत्कृष्टता का निर्णय लेखकों की प्रसिद्धि के आधार पर नहीं बल्कि रचना के अपने वैशिष्ट्य के आधार पर किया जाएगा।'

जब 'भारत-भारती' पहले-पहल प्रकाशित हुई, द्विवेदी जी ने सरस्वती में उस पर एक लेख लिखा था जो प्रशंसात्मक और अत्यंत प्रभावपूर्ण था। लेख के अंत में द्विवेदी जी ने मैथिलीशरण जी के साथ अपनी मैत्री का भी जिक्र किया था और लिखा था, 'लेकिन मैंने इसका कोई खयाल नहीं रखा है। सत्य, इसके साक्षी तुम हो।' जायसवाल जी जब पाटलिपुत्र में इसकी समीक्षा करने लगे, उन्होंने पुस्तक और लेखक तथा प्रकाशक के नाम एवं मूल्यादि लिखकर केवल एक वाक्य लिखा, 'स्वर्ग से फतवा आया है' और उसके बाद द्विवेदी जी का पूरा-का-पूरा लेख उद्धृत कर दिया। प्रारंभिक काल में 'सरस्वती' से निराला की रचनाएं भले ही वापस लौट आयी हों, परंतु यह सर्वथा सत्य है कि निराला की वास्तविक परख आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने ही की थी। कलकत्ता की विवेकानंद सोसायटी से जब हिन्दी मासिक 'समन्वय' निकालने का निश्चय हुआ, तो सोसायटी के एक विद्वान संन्यासी स्वामी माधवानंद एम. ए. ने, आचार्य द्विवेदी से ही राय मांगी। बिना किसी हिचकिचाहट के आचार्य द्विवेदी ने निराला का नाम बता दिया।

'सरस्वती' ने ही हिंदी पत्रकारिता को ऐसा व्यवस्थित आधारभूत ढांचा दिया जिससे वह वैचारिकता को प्राप्त कर सकी। उस दौर में (तत्कालीन) शायद ही कोई ऐसा विषय रहा होगा जिस पर 'सरस्वती' में लेख न प्रकाशित हुए हो। उस दरमियान किसी भी रचनाकार के लिए 'सरस्वती' में प्रकाशित होना एक उपलब्धि थी। अपने समय में 'सरस्वती' ने हर तरह के लेखकों को जोड़ने का काम किया। एक प्रकार से देखें तो 'सरस्वती' ने उस दौर की तत्कालीन समस्याओं को उजागर करने में हिंदी भाषी समाज के लिए एक मंच का काम किया। काबीलेगौर है द्विवेदी जी के संपादन-काल में भाव और भाषा के साथ-साथ विधागत स्तर पर भी काफी प्रगति हुई। सरस्वती पत्रिका की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है कि इसने हिंदी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा-विषयक सामग्री (साहित्य की समस्त विधाओं) को अनुवाद के जरिए सामने लाने का अनूठा कार्य किया।

'सरस्वती' उस दौर की अकेली ऐसी पत्रिका है जिसने बहुत ही का समय में न सिर्फ साहित्य जगत में बल्कि हिंदी पत्रिकारिता के इतिहास में

अपनी गहरी पैठ बनाई है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने भी इस संदर्भ में लिखा है कि- 'द्विवेदी जी के सरस्वती-सम्पादन का इतिहास अनेक आंदोलनों का इतिहास है। वह उनके व्यक्तित्त्व और तत्कालीन समाज के विकास का इतिहास भी कहा जा सकता है।' 'सरस्वती' के माध्यम से द्विवेदी जी ने रीतिवाद का जमकर विरोध किया। वे रीतिकालीनशृंगारिकता एवं नायिका-भेद के घोर विरोधी थे। उनका मानना था कि रस, भाव, अलंकार, छंद-शास्त्र और निरा नायिका-भेद का वर्णन करने से मानव-सभ्यता (जाति) का विकास संभव नहीं है। इसीलिए वे हमेशा कविता को रीतिवादी कूप से निकालकर काव्य-विषय के विस्तार के पक्षधर थे। एक प्रकार से देखें तो सरस्वती पत्रिका समकालीन रीतिवादी धारा के विरोध में और ब्रज भाषा के स्थान पर खड़ी बोली हिंदी के समर्थन में एक संघर्षरत पत्रिका थी।

द्विवेदी जी के संपादन-काल में समाज-सुधार, स्त्री-शिक्षा, एवं बाल-साहित्य जैसे विषयों को भी 'सरस्वती' में विशेष स्थान दिया गया। नवजागरण की चेतना का प्रसार एवं उसे जनसाधारण तक पहुँचाने में 'सरस्वती' एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी, दोनों ने संबल का काम किया। हिंदी साहित्य की सामयिक अवस्था का चित्रण करने एवं उसका गहरा प्रभाव डालने के लिए 'सरस्वती' में व्यंग्य-चित्रों को भी यथोचित स्थान मिला है। यहाँ तक कि आधुनिक हिंदी कहानी का उदय एवं आधुनिक खड़ी-बोली कविता को प्रचार-प्रसार एवं प्रतिष्ठा भी 'सरस्वती' से ही मिली। खड़ी बोली हिंदी को काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना इस पत्रिका की नायाब उपलब्धि है। मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, राय देवी प्रसाद, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', हरिऔध, नाथू राम 'शंकर' शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों की रचनाएँ प्रकाशित करके द्विवेदी जी ने यह साबित कर दिया कि खड़ी बोली हिंदी में भी उच्च कोटि की कविताएं लिखी जा सकती है। कविता के साथ-साथ कहानी विधा के विकास में भी इस पत्रिका की महती भूमिका रही है। बंग महिला की 'दुलाई वाली', चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था', विश्वंभर नाथ शर्मा की 'रक्षाबंधन', प्रेमचंद की 'सौत', जैसी महत्त्वपूर्ण कहानियाँ द्विवेदी जी के ही सम्पादन में प्रकाशित हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निबंध 'कविता क्या है ?', कामता प्रसाद गुरु का 'हिंदी व्याकरण', मैथिलीशरण गुप्त का 'कविता किस ढंग की हो', एवं सरदार पूर्ण सिंह द्वारा लिखे गए लाक्षणिक निबंध इसी अवधी की देन है। गौर करें तो उपन्यास, नाटक, आत्मकथा, जीवनी, यात्रा-साहित्य एवं डायरी जैसी विधाओं

के अतिरिक्त पुस्तक-समीक्षा के विकास में भी 'सरस्वती' की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

मैथिलीशरण गुप्त, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, कामता प्रसाद गुरू, प्रेमचंद, लोचन प्रसाद पाण्डेय आदि ऐसे कई लेखक हैं, जो 'सरस्वती' पत्रिका के द्वारा ही हिंदी जगत में परिचित एवं अपनी पहचान बना सके। द्विवेदी जी के संपादन काल में 'सरस्वती' में एक भी ऐसा लेख प्रकाशित नहीं हुआ जिससे समाज पर बुरा प्रभाव पड़े। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के द्वारा हिंदी साहित्य में सुरुचि का प्रसार किया और साहित्य के क्षेत्र को खूब विस्तृत किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित पत्रिका 'सरस्वती' में 1917 में चंपारन आंदोलन की कोई खबर नहीं छपी थी, जबकि इस पत्रिका को नवजागरण की सबसे महत्त्वपूर्ण पत्रिका माना जाता रहा है।

38

ब्रिटिशकालीन समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएँ

सरस्वती

सरस्वती हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध रूपगुणसम्पन्न प्रतिनिधि पत्रिका थी। इस पत्रिका का प्रकाशन इण्डियन प्रेस, प्रयाग से सन् 1900 ई. के जनवरी मास में प्रारम्भ हुआ था। 32 पृष्ठ की क्राउन आकार की इस पत्रिका का मूल्य 4 आना मात्र था। 1903 ई. में महावीर प्रसाद द्विवेदी इसके संपादक हुए और 1920 ई. तक रहे। इसका प्रकाशन पहले झाँसी और फिर कानपुर से होने लगा था।

श्यामसुन्दर दास के बाद महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा उनके पश्चात् पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, देवी दत्त शुक्ल, श्रीनाथ सिंह, और श्रीनारायण चतुर्वेदी सम्पादक हुए। 1905 ई. में काशी नागरी प्रचारिणी सभा का नाम मुख्यपृष्ठ से हट गया।

1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसका कार्यभार संभाला। एक ओर भाषा के स्तर पर और दूसरी ओर प्रेरक बनकर मार्गदर्शन का कार्य संभालकर द्विवेदी जी ने साहित्यिक और राष्ट्रीय चेतना को स्वर प्रदान किया। द्विवेदी जी ने भाषा की समृद्धि करके नवीन साहित्यकारों को राह दिखाई। उनका वक्तव्य है–

हमारी भाषा हिंदी है। उसके प्रचार के लिए गवर्नमेंट जो कुछ कर रही है, सो तो कर ही रही है, हमें चाहिए कि हम अपने घरों का अज्ञान तिमिर दूर करने और अपना ज्ञानबल बढ़ाने के लिए इस पुण्यकार्य में लग जाएं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से ज्ञानवर्धन करने के साथ-साथ नए रचनाकारों को भाषा का महत्त्व समझाया व गद्य और पद्य के लिए राह निर्मित की। महावीर प्रसाद द्विवेदी की यह पत्रिका मूलत: साहित्यिक थी और हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त से लेकर कहीं-न-कहीं निराला के निर्माण में इसी पत्रिका का योगदान था परंतु साहित्य के निर्माण के साथ राष्ट्रीयता का प्रसार करना भी इनका उद्देश्य था। भाषा का निर्माण करना साथ ही गद्य-पद्य के लिए खड़ी बोली को ही प्रोत्साहन देना इनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था।

जून1980 के बाद इसका प्रकाशन बन्द हो गया। जिस समय इस पत्रिका का प्रकाशन बन्द हुआ उस समय पत्रिका के संपादक निशीथ राय थे।लगभग अस्सी वर्षों तक यह पत्रिका निकली। अंतिम बीस वर्षों तक इसका सम्पादन पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी तथा बिलकुल अंत में निशीथ राय ने किया।

सम्पादक

निम्नलिखित प्रसिद्ध साहित्यकार सरस्वती पत्रिका के सम्पादक रहे हैं-

सम्पादक मण्डल–जगन्नाथ दास रत्नाकर, श्यामसुन्दर दास, राधाकृष्ण दास, कार्तिक प्रसाद खत्री, किशोरी लाल गोस्वामी–(जनवरी 1900 -- 1901)

'यामसुन्दर दास (1899–1902)

महावीर प्रसाद द्विवेदी (1903–1921)

कामता-प्रसाद गुरु (1920)

पदुमलाल पन्नालाल बख्शी (1921–25 जुलाई, 1927 तथा जनवरी 1952)

देवी दत्त शुक्ल (1925–1929)

हरिकेशव घोष, व्यवस्थापक इण्डियन प्रेस (1926)

उदयनारायण वाजपेयी (सहायक), गणेश शंकर 'विद्यार्थी', देवी दयाल चतुर्वेदी, हरिभाऊ उपाध्याय, देवी प्रसाद शुक्ल, शंभु प्रसाद शुक्ल, ठाकुर प्रसाद मिश्र (1928–1933)

श्रीनाथ सिंह (1934–1938)
लल्लीप्रसाद, उमेश चंद्र मिश्र (संयुक्त सम्पादक, 1935–1945)
श्रीनारायण चतुर्वेदी (1955–1976)
निशीथ राय (1977 से जून 1980)
देवेन्द्र शुक्ल (2020 से..)

पुनः प्रकाशन

दिसम्बर 2017 में समाचार आया कि सरस्वती पुनः प्रकाशित होगी लेकिन कुछ कानूनी अड़चनों से यह सम्भव नहीं हो सका। अब यह पत्रिका लगभग मुद्रित होकर तैयार है और 'कोविड-19' के विदा होते ही प्रयागराज में इसका विमोचन होगा। 'इंडियन प्रेस' के निदेशक श्री सुप्रतीक घोष ने पत्रिका के संपादक के रूप में देवेन्द्र शुक्ल तथा सह सम्पादक अनुपम परिहार को नियुक्त किया है।

17 अक्टूबर 2020 को 'हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयागराज' के 'गांधी सभागार' में उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष श्री हृदय नारायण दीक्षित के द्वारा 'सरस्वती' पत्रिका का लोकार्पण हुआ।

मर्यादा

मर्यादा पत्रिका का पहला अंक नवम्बर सन् 1910 ई. में कृष्णकान्त मालवीय ने 'अभ्युदय' कार्यालय प्रयाग से प्रकाशित हुआ था। इसके प्रथम अंक का प्रथम लेख 'मर्यादा' शीर्षक से पुरुषोत्तमदास टण्डन ने लिखा। 10 वर्षों तक इस पत्रिका को प्रयाग से निकालने के बाद कृष्णकान्त मालवीय ने इसका प्रकाशन ज्ञानमण्डल काशी को सौंप दिया। सन् 1921 ई. से श्री शिवप्रसाद गुप्त के संचालन में और सम्पूर्णानन्द जी के संपादकत्व में 'मर्यादा' ज्ञानमण्डल से प्रकाशित हुई। असहयोग आन्दोलन में उनके जेल चले जाने पर धनपत राय प्रेमचन्द स्थानापन्न संपादक हुए। मर्यादा अपने समय की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका थी। प्रेमचन्द की आरम्भिक कहानियाँ इसमें प्रकाशित हुईं। सन् 1923 ई. में यह पत्रिका अनिवार्य कारणों से बन्द हो गई। इसका अन्तिम अंक प्रवासी विशेषांक के रूप में बनारसी दास चतुर्वेदी के सम्पादन में निकला, जो अपनी विशिष्ट लेख सामग्री के कारण ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

बनारस अखबार

बनारस अखबार का प्रकाशन जनवरी, 1845 में हुआ। यह अखबार गोविन्द नारायण थत्ते के सम्पादन में उत्तर प्रदेश से प्रकाशित हुआ। अखबार के संचालक राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द थे। अधिकांश लोग इस अखबार को ही हिन्दी का पहला अखबार मानते हैं। किंतु इसे हिन्दी भाषी क्षेत्र का प्रथम समाचार पत्र माना जा सकता है।

अरबी तथा फारसी शब्दों का प्रयोग

देवनागरी लिपि के प्रयोग के बावजूद इस अखबार में अरबी और फारसी भाषा के शब्दों की बहुतायत थी, जिसे समझना साधारण जनता के लिए एक कठिन कार्य था। पंडित अंबिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है कि 'बनारस अखबार की निकम्मी भाषा का उत्तरदायित्व यदि किसी एक पुरुष पर है तो वे राजा शिवप्रसाद सिंह हैं।' बनारस से ही 1850 में तारा मोहन मैत्रेय के संपादन में 'सुधाकर' पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह पत्र साप्ताहिक था तथा बंगला एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होता था। भाषा की दृष्टि से समाचार पत्र 'सुधाकर' को हिन्दी प्रदेश का पहला पत्र कहा जाना अधिक उपयुक्त है। 1853 में यह पत्र सिर्फ हिन्दी में ही छपने लगा था।

अन्य अखबार

'बनारस अखबार' एवं 'सुधाकर' के बाद कुछ अन्य अखबारों का भी प्रकाशन हुआ, जिनके नाम निम्नलिखित हैं–

- 'मार्तण्ड' (11 जून, 1846)
- 'ज्ञान दीपक' (1846)
- 'जगदीपक भास्कर' (1849)
- 'सामदण्ड मार्तण्ड' (1850)
- 'फूलों का हार' (1850)
- 'बुद्धि प्रकाश' (1852)
- 'मजहरुल सरुर' (1852)
- 'ग्वालियर गजट' (1853)
- 'मालवा अखबार' (1894)

मुंशी सदासुखलाल के संपादन में आगरा से 'बुद्धि प्रकाश' नाम का यह पत्र पत्रकारिता के दृष्टि से ही नहीं, अपितु भाषा व शैली की दृष्टि से भी खास स्थान रखता है। प्रसिद्ध समालोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस पत्र की भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि 'बुद्धि प्रकाश की भाषा उस समय की भाषा को देखते हुए बहुत अच्छी होती थी।'

हिन्दी प्रदीप

हिन्दी प्रदीप, हिन्दी की एक मासिक पत्रिका थी जिसका प्रथम अंक 1877 ई. में प्रकाशित हुआ। इस पत्र का विमोचन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया था। यह पत्रिका प्रयाग से निकलती थी और इसका सम्पादन बालकृष्ण भट्ट के द्वारा किया जाता था। हिन्दी प्रदीप में नाटक, उपन्यास, समाचार और निबन्ध सभी छपते थे।

हिंदी प्रदीप के मुख्यपृष्ठ पर लिखा था–

शुभ सरस देश सनेह पूरित, प्रकट होए आनंद भरै
बलि दुसह दुर्जन वायु सो मनिदीप समथिर नहिं टरै।
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब या में जरै,
हिंदी प्रदीप प्रकाश मूरख तादि भारत तम हरै॥

प्रदीप से कई लेखकों का अभ्युदय हुआ। इनमें राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, आगम शरण, पंडित माधव शुक्ल, मदन मोहन शुक्ल, परसन और श्रीधर पाठक आदि थे। इनके अतिरिक्त बाबू रतन चंद्र, सावित्री देवी, महावीर प्रसाद द्विवेदी, जगदंबा प्रसाद उनके प्रभाव में थे। पुरुषोत्तम दास टंडन की प्रदीप में 12 रचनाएं प्रकाशित हुई जो उन्होंने 1899 से लेकर 1905 के बीच लिखी थी।

हिंदी प्रदीप में बहुत ही खरी बातें प्रकाशित होती थी। 1909 अप्रैल के चौथे अंक में माधव शुक्ल ने 'बम क्या है' नामक कविता लिखी जो अंग्रेज सरकार को नागवार लगी और उन्होंने पत्रिका पर तीन हजार रुपये का जुर्माना लगा दिया। उस समय भट्ट जी के पास भोजन तक के पैसे नहीं थे, जमानत कहां से भरते। विवश होकर उन्हें पत्रिका बंद करनी पड़ी।

हिन्दी प्रदीप लगभग 33 वर्ष तक प्रकाशित होता रहा और प्रकाशन की सम्पूर्ण अवधि तक पं. भट्ट जी ही संपादक बने रहे। तत्कालीन विषम परिस्थितियों में इतनी लम्बी अवधि तक पत्र का प्रकाशन स्वयं में एक उपलब्धि थी। यह भारतेन्दु युग के सर्वाधिक दीर्घजीवी पत्रों में से एक था।

हिन्दी प्रदीप एक साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मासिक पत्र था। इसमें राजनैतिक वयस्कता थी। समाज के प्रति दायित्व-बोध प्रचुर मात्रा में था। राजनैतिक वयस्कता की परिपक्वता की झलक हिन्दी प्रदीप में प्रकाशित विभिन्न नाटकों और संपादकीय अग्रलेखों से स्पष्ट होती थी। पुस्तक समीक्षा प्रकाशन की पहल हिन्दी प्रदीप ने ही की थी।

भट्ट जी ने पत्रकारिता का प्रारम्भिक ज्ञान रमानन्द चट्टोपाध्याय से प्राप्त किया था जो कायस्थ पाठशाला, प्रयाग के प्रिंसिपल थे। भट्ट जी इसी कॉलेज में संस्कृत के शिक्षक नियुक्त हुए। प्रिंसिपल रहते हुए ही श्री चट्टोपाध्याय अंग्रेजी मासिक माडर्न रिव्यू का सम्पादन किया करते थे।

14 मार्च 1878 को वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट परित हुआ जिसके तहत भारतीय प्रेस की स्वतंत्रता समाप्त कर दी गई। इस अधिनियम की निर्भीक व तीखी आलोचना कर 'हिन्दी प्रदीप' ने संपूर्ण भारतीय पत्रकारिता का मार्गदर्शन किया था। हिन्दी प्रदीप में 'हम चुप न रहें' शीर्षक से अग्रलेख प्रकाशित हुआ था जिसमें पाठकों से इस एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन करने का आग्रह किया गया था। तत्पश्चात अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने अधिनियम का विरोध किया और परिणामस्वरूप लॉर्ड रिपन को 19 जनवरी 1882 को यह एक्ट वापस लेना पड़ा।

देवनागरी लिपि को न्यायालय-लिपि और कार्यालय-लिपि की मान्यता प्रदान कराने की दिशा में हिन्दी प्रदीप का बहुमूल्य योगदान रहा है। अपने प्रकाशन के दसवें माह से ही इस पत्र ने इस विषय में जोरदार आन्दोलन किया और सम्पूर्ण हिन्दी भाषी जनता को जागरूक किया। भट्ट जी ने हिन्दी प्रदीप के माध्यम से 1878 में कहा था, 'खैर हिन्दी भाषा का प्रचार न हो सके तो नागरी अक्षरों का बरताव ही सरकारी कामों में हो, तब भी हम लोग अपने को कृतार्थ मानें।' 1896-97 के दौरान हिन्दी प्रदीप ने देशी अक्षर अर्थात देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा का संयुक्त प्रश्न खड़ा कर दिया। उस समय कहा गया था कि हमारे अक्षर और हमारी भाषा अदालतों में पदास्थापित नहीं हैं।

यद्यपि भट्ट जी हिन्दी के मुददे को भी बार-बार उठाते रहे किन्तु उर्दू भाषा व उसके अपनाने वालों की भावना का खयाल रखते हुए उनका अधिक जोर देवनागरी लिपि पर ही था। सन् 1898 उन्होंने हिन्दी प्रदीप के माध्यम से कहा था, 'भाषा उर्दू रहे। अक्षर हमारे हो जाएं, तो हम और वे दोनों मिलकर एक साथ अपनी तरक्की कर सकते हैं। और सच पूछे तो जिसे वे हिन्दी कहते हैं, वह भी उनकी भाषा है। वही हिन्दी जो सर्व साधारण में प्रचलित है।'

भारतमित्र

भारतमित्र सन् 1878 में कलकता से प्रकाशित एक हिन्दी समाचार पत्र था। भारत मित्र कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) से प्रकाशित होने वाला समाचार पत्र था। भारतमित्र के पहले वैतनिक सम्पादक पण्डित हरमुकुन्द शास्त्री थे, जिन्हें लाहौर से बुलाया गया था। यह पत्र लम्बे समय (37 वर्षों) तक निरन्तर चलता रहा। राजा, प्रजा, राज्य-व्यवस्था, वाणिज्य, भाषा और सबके ऊपर देशहित की चिंता-चेतना जगानेवाला 'भारतमित्र' एक तेजस्वी राजनीतिक पत्र के रूप में चर्चित और विख्यात हुआ। 1899 ई. में बालमुकुन्द गुप्त इसके संपादक हुए और उसी वर्ष उनकी मृत्यु हुई।

'भारतमित्र' का स्वदेशी के प्रति विशेष आग्रह था। समग्र जातीय चेतना का विकास इसका लक्ष्य था। स्मरणीय है, समाचार-पत्र की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करनेवाला वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट 14 मार्च, 1878 ई. को लागू हुआ था। उस संदर्भ में 17 मार्च, 1878 के 'भारतमित्र' की संपादकीय टिप्पणी की भाषा विपत्ति को आहूत करने वाली भाषा है। उस समय राजा तक प्रजा के कष्ट तथा नाना प्रकार के अभाव की जानकारी पहुँचाने वाले सशक्त अभियोग-माध्यम-पत्रों की आजादी की माँग सरकारी दृष्टि से कदाचित् सबसे बड़ा अपराध था, किंतु राष्ट्रवाद और देश-प्रीति का यही तकाजा था। 'भारतमित्र' संपादक के सामने ब्रिटिश सरकार की नीति स्पष्ट थी और उसके प्रतिरोध में जागरूक कौशल से आबोहवा तैयार करनी थी। शायद यही कारण है कि 'भारतमित्र' की संपादकीय टिप्पणी में राजभक्ति का मूलम्मा भी दिखाई पड़ता है।

लीडर

लीडर एक अंग्रेजी पत्र है जिसका प्रारंभ मदन मोहन मालवीय जी ने 'अभ्युदय' के पश्चात् 24 अक्टूबर, 1910 को किया था। 'लीडर' के हिन्दी संस्करण 'भारत' का आरम्भ सन् 1921 में हुआ। मालवीय जी 'लीडर' के प्रति सदा संवेदनशील रहे, डेढ़ वर्ष बीतते-बीतते 'लीडर' घाटे की स्थिति में जा पहुँचा। महामना उस दौरान काशी हिंदू विश्वविद्यालय के लिए धन एकत्र करने में लगे हुए थे, जब 'लीडर' के संचालकों ने मालवीय जी को घाटे की स्थिति से अवगत कराया तो वे विचलित हो उठे। उन्होंने कहा कि, ''मैं

लीडर को मरने नहीं दूंगा।" काशी विश्वविद्यालय की स्थापना का कार्य बीच में ही रोककर मालवीय जी 'लीडर' के लिए आर्थिक व्यवस्था के कार्य में जुट गए। पहली झोली उन्होंने अपनी पत्नी के आगे यह कहते हुए फैलाई कि ''यह मत समझो कि तुम्हारे चार ही पुत्र हैं। दैनिक लीडर तुम्हारा पांचवां पुत्र है। अर्थहीनता के कारण यह संकट में पड़ गया है। तो क्या मैं पिता के नाते उसे मरते हुए देख सकता हूं।" मालवीय जी के अथक प्रयासों से 'लीडर' बच गया।

अभ्युदय

अभ्युदय एक ऐतिहासिक साप्ताहिक पत्र है जिसकी शुरूआत पं. मदन मोहन मालवीय ने की थी। सन् 1907 में बसंत पंचमी के दिन हिंदी पत्रकारिता ने नया उदय देखा। यह उदय मालवीय जी के समाचार पत्र 'अभ्युदय' के रूप में हुआ था, यह पत्र साप्ताहिक था। मालवीय जी ने 'अभ्युदय' के लिए लिए जो संपादकीय नीति तैयार की थी, उसका मूल तत्त्व था स्वराज। महामना ने 'अभ्युदय' में ग्रामीण लोगों की समस्याओं को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया था। जिसका उदाहरण 'अभ्युदय' के पृष्ठों पर लिखा यह वाक्य था- 'कृपा कर पढ़ने के बाद अभ्युदय किसी किसान भाई को दे दीजिए'।

उद्देश्य

मालवीय जी की पत्रकारिता का ध्येय ही राष्ट्र की स्वतंत्रता था, जिसके लिए वे जीवनपर्यंत प्रयासरत रहे। उन्होंने 'अभ्युदय' में कई क्रांतिकारी विशेषांक प्रकाशित किए। इनमें 'भगत सिंह अंक' व 'सुभाष चंद्र बोस' विशेषांक भी शामिल हैं। जिसके कारण 'अभ्युदय' के संपादक कृष्णकांत मालवीय को जेल तक जाना पड़ा, 'अभ्युदय' के क्रांतिकारी लेखों में मालवीय जी की छाप दिखाई पड़ती थी। गांवों से संबंधित विषयों को समाचार पत्र में स्थान देने के अलावा लेखकों को मानदेय देने का प्रचलन भी मालवीय जी ने ही प्रारंभ किया था। 'अभ्युदय' में प्रकाशित पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेख के साथ ही उन्होंने लेखकों को मानदेय देने की शुरुआत की थी। उनका यह कार्य इसलिए भी प्रशंसनीय था क्योंकि उस समय 'अभ्युदय' की आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं थी।

हिन्दोस्थान

हिन्दोस्थान 19 वी सदी में कालाकांकर रियासत से प्रकाशित होने वाला एक दैनिक समाचार पत्र था। कालाकांकर नरेश राजा रामपाल सिंह ने नवंबर, 1858 ई. में आपने कालाकाँकर से ही 'हिंदोस्थान' नाम का हिंदी दैनिक निकाला जिसका साप्ताहिक अंग्रेजी संस्करण भी इसी नाम से निकलता था। इन दोनों पत्रों के संपादक राजा रामपाल सिंह स्वयं ही रहे परंतु संपादन का काम पं. मदनमोहन मालवीय, पं. प्रताप नारायण मिश्र, बाल मुकुंद गुप्त आदि करते थे। अंग्रेजी साप्ताहिक के संपादन के लिए आप एक अंग्रेज सहकरी को इंग्लैंड से लाए थे। 'हिंदोस्थान' में शब्दों की वर्तनी सामान्य से भिन्न रहती थी, जैसे 'जितना' को 'ज्यतना', 'कितना को 'क्यतना', 'मैनेजर' को 'म्यनेजर'।

कवि वचन सुधा

कवि वचन सुधा भारतेन्दु हरिशचंद्र द्वारा सम्पादित एक हिन्दी समाचार पत्र था। इसका प्रकाशन 15 अगस्त 1867 को वाराणसी आरम्भ हुआ जो एक क्रांतिकारी घटना थी। यह कविता-केन्द्रित पत्र था। इस पत्र ने हिन्दी साहित्य और हिन्दी पत्रकारिता को नये आयाम प्रदान किए। हिन्दी के महान समालोचक डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं- 'कवि वचन सुधा का प्रकाशन करके भारतेन्दु ने एक नए युग का सूत्रपात किया।'

आरम्भ में भारतेन्दु 'कवि वचन सुधा' में पुराने कवियों की रचनाएँ छापते थे, जैसे चंद बरदाई का रासो, कबीर की साखी, जायसी का पद्मावत, बिहारी के दोहे, देव का अष्टयाम और दीनदयालु गिरि का अनुराग बाग। लेकिन शीघ्र ही पत्रिका में नए कवियों को भी स्थान मिलने लगा। पत्रिका के प्रवेशांक में भारतेन्दु ने अपने आदर्श की घोषणा इस प्रकार की थी -

खल जनन सों सज्जन दुखी मति होंहि, हरिपद मति रहै।
अपधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै॥
बुध तजहि मत्सर, नारि नर सम होंहि, जग आनंद लहै।
तजि ग्राम कविता, सुकविजन की अमृतवानी सब कहै।

'कवि वचन सुधा' में साहित्य तो छपता ही था, उसके अलावा समाचार, यात्रा, ज्ञान-विज्ञान, धर्म, राजनीति और समाज नीति विषयक लेख भी प्रकाशित होते थे। इससे पत्रिका की जनप्रियता बढ़ती गई। लोकप्रिया इतनी कि उसे

मासिक से पाक्षिक और फिर साप्ताहिक कर दिया गया। प्रकाशन के दूसरे वर्ष यह पत्रिका पाक्षिक हो गई थी और 5 सितंबर, 1873 से साप्ताहिक।

कवि वचन सुधा के द्वितीय प्रकाशन वर्ष में मस्टहेड के ठीक नीचे निम्नलिखित पद छपता था–

निज-नित नव यह कवि वचन सुधा सकल रस खानि।
पीवहुं रसिक आनंद भरि परमलाभ जिय जानि।
सुधा सदा सुरपुर बसै सो नहिं तुम्हरे जोग।
तासों आदर देहु अरु पीवहु एहि बुध लोग।

भारतेन्दु की टीकाटिप्पणियों से अधिकरी तक घबराते थे और 'कवि वचन सुधा' के 'पंच' पर रुष्ट होकर काशी के मजिस्ट्रेट ने भारतेन्दु के पत्रों को शिक्षा विभाग के लिए लेना भी बंद करा दिया था। सात वर्षों तक 'कवि वचन सुधा' का संपादक-प्रकाशन करने के बाद भारतेन्दु ने उसे अपने मित्र चिंतामणि धड़फले को सौंप दिया और 'हरिश्चंद्र मैंग्जीन' का प्रकाशन 15 अक्टूबर, 1873 को बनारस से आरम्भ किया। 'हरिश्चंद्र मैंग्जीन' के मुख्यपृष्ठ पर उल्लेख रहता था कि यह 'कवि वचन सुधा' से संबद्ध है।

आज

आज हिन्दी भाषा का एक दैनिक समाचार पत्र है। इस समय 'आज' वाराणसी, कानपुर, गोरखपुर, पटना, इलाहाबाद, तथा रांची से प्रकाशित हो रहा है।

इस पत्र की स्थापना भारत के महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी शिव प्रसाद गुप्त ने 5 सितम्बर 1920 को की थी। कुछ वर्षों (1943 से 1947 तक) को छोड़कर पण्डित बाबूराव विष्णु पराडकर 1920 से 1955 तक 'आज' के सम्पादक रहे।

हिन्दी-समाचार पत्रों के इतिहास में 'आज' का प्रकाशन उल्लेखनीय घटना थी। काशी के बाबू शिवप्रशाद गुप्त हिन्दी में ऐसे दैनिक पत्र की कल्पना लेकर विदेश भ्रमण से लौटे (1919 ई) जो 'लन्दन टाइम्स' जैसा प्रभावशाली हो। गुप्तजी ने ज्ञान मण्डल की स्थापना की और 5 सितम्बर 1920 ई. को 'आज' का प्रकाशन हुआ और प्रकाशजी इसके प्रथम सम्पादक बने। 1924 ई से लेकर 13 अगस्त 1942 ई तक पराड़करजी 'आज' के प्रधान सम्पादक रहे। इन तीन दशकों में 'आज' और पराड़करजी ने हिन्दी पत्रकार-कला को नया

स्वरूप, नई गति और नई दिशा प्रदान की। 'आज' ने हिन्दी पत्रकारिता का मानदण्ड स्थापित किया। दिल्ली से काशी तक अपना हिन्दी दूरमुद्रण यन्त्र लगाने वाला यह पहला पत्र था। 'आज' ने हिन्दी को अनेक नये शब्द प्रदान किए। इनमें सर्वश्री, श्री, राष्ट्रपति मुद्रास्फीति, लोकतन्त्र, स्वराज्य, वातावरण, कार्रवाई, अन्तर्राष्ट्रीय और चालू जैसे शब्द हैं। लोकमान्य तिलक की प्रेरणा से जन्मा 'आज' महात्मा गाँधी के आन्दोलनों का अग्रदूत बना। सत्यग्रहियों की नामावलियों को छापने का साहस केवल 'आज' ने किया। ब्रिटिश शासनकाल में सरकार के कोप व दमन के कारण 'आज' का प्रकाशन रुका तो साइक्लोस्टाइल में 'रणभेरी' का प्रकाशन कर पराड़करजी ने राष्ट्रीय जागरण की गति को मन्द पड़ने नहीं दिया।

'आज' के अग्रलेखों और टिप्पणियों ने 'आज' के महत्त्व को बढ़ाया। 'आज' के अग्रलेख लेखकों में सर्वश्री सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्र देव और श्रीप्रकाश भी थे। सन् 1930 के बाद पं कमलापति त्रिपाठी भी सम्पादकीय लेखकों में शामिल हो गए। पराड़करजी तथा कमलापतिजी के प्रभावी अग्रलेखों ने इस पत्र को हिन्दी का श्रेष्ठ दैनिक बना दिया। भाषा तथा शैली की दृष्टि से भी 'आज' ने असंख्य पाठकों को अच्छी हिन्दी सिखाई। 'आज' में 'खुदा की राह पर' शीर्षक से नियमित व्यंग्य का स्तम्भ रहता था जिसके लेखकों में सूर्यनाथ तकरु और बेढ़ब बनारसी प्रमुख थे। 'आज' से बेचन शर्मा 'उग्र' का साहित्यिक जीवन प्रारम्भ हुआ। 'उग्र' इसमें व्यंग्य लिखते थे। प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, डॉ. भगवानदास जैसे मनीषी भी इसमें लिखते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन और समाज सुधार का यह प्रबल समर्थक रहा है। 'आज' में वर्मा, थाइलैण्ड, मारिशस स्थित संवाददाताओं के समाचार नियमित रूप से छपते रहते हैं। गाँव की चिठ्टी, चतुरी चाचा की चिठ्ठी इसके विशेष गोचर रहे हैं। जिलों और नगरों के विशेष संस्करण निकालना 'आज' की अपनी विशेषता है। 'आज' के सम्पादकों के नाम हैं- सर्वश्री प्रकाश, बाबूराव विष्णु पराडकर, कमलापति त्रिपाठी, विद्याभास्कर, श्रीकांत ठाकुर, रामकृष्ण रघुनाथ बिडिलकर। वर्तमान में शार्दूल विक्रम गुप्त इस पत्र के सम्पादक हैं।

बंगाल गजट

बंगाल गजट भारत में प्रकाशित होने वाला एक अंग्रेजी भाषा का पहला समाचार पत्र था। इसके प्रकाशक जेम्स आगस्टस हिक्की थे। यह एक

साप्ताहिक पत्र था जो कोलकाता से सन् 1780 में आरम्भ हुआ। हिक्की गजट के प्रकाशन का एक कारण बाजार के लिए सूचनाएं उपलब्ध कराना था। यह मानना कि वह अंग्रेजी प्रशासन के विरोध के लिए निकाला गया गलत और भ्रामक है। हाँ यह जरूर है कि उसमें अंग्रेजी प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी के समाचार प्रमुखता से होते थे।

मुद्रित पत्रकारिता की शुरुआत

ईस्ट इंडिया कंपनी के एक कर्मचारी जेम्स आगस्टस हिक्की ने पहली बार कलकत्ता से चार पृष्ठों के एक अंग्रेजी समाचार पत्र 'बंगाल गजट का प्रकाशन आरंभ किया। इस तरह भारत में मुद्रित पत्रकारिता प्रारंभ करने का श्रेय हिक्की को जाता है। 'बंगाल गजट आर कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर' नामक यह पत्र 'बंगाल गजट' या 'हिक्की गजट' के नाम से भी प्रसिद्ध था, क्योंकि इसका प्रकाशन हिक्की किया करता था।

'हिक्की गजट' के प्रवेशांक में हिक्की ने स्वयं को आनरेबल कंपनी का मुद्रक घोषित किया। हिक्की ने पत्रकारिता का कार्य क्यों शुरू किया, इसके बारे में उसने अपने पत्र में लिखा है। उसका कहना था कि कंपनी के अधिकारियों द्वारा भारत में जो लूट मचाई गई थी, उससे वह आहत था। अन्य कर्मचारियों की तरह वह भी यह सब देखते हुए चुप नहीं बैठ सकता था। इसी वजह से अपने मन और आत्मा की स्वतंत्रता हासिल करने के लिए उसने पत्रकारिता का काम शुरू किया। यह पत्र एक ऐसा साप्ताहिक होने का दावा करता था, जिसकी मुख्य सामग्री राजनीतिक और वाणिज्यिक थी। 'बंगाल गजट' के पहले अंक में हिक्की ने अपने पत्र के उद्देश्यों के बारे में लिखा-

"A weekly political and commercial paper, open to all parties but influenced by none." राजनीतिक और वाणिज्यिक खबरों के अलावा इस पत्र में शादी-ब्याह व अन्य तत्कालीन सामाजिक विषयों जैसे बाजार भाव आदि की भी जानकारियां प्रकाशित की जाती थीं। इस प्रकार समाचारों के प्रति कौतूहल हिक्की ने ही पैदा किया था। संपादक के नाम पत्र कालम को प्रारंभ करने का श्रेय भी 'बंगाल गजट' को ही जाता है। इस कालम के माध्यम से यह भी पता चलता है कि पत्र जनता की भावनाओं को अभिव्यक्ति देने का पक्षधर था। यह एक लोकतांत्रिक सोच को ही दर्शाता है। 25 मार्च, 1780 के अंक में फिलन थ्रोप्स के नाम से संपादक के नाम एक पत्र छपा था, जिसमें कोलकाता के

पोर्तगीज 'मशान घाट की गंदगी के बारे में शिकायत की गई थी। उन दिनों ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों ने निजी व्यापार चलाकर तथा अन्य तरीकों से भारी लूट मचा रखी थी। हिक्की ने इन सब गड़बड़ियों का भांडा-फोड़ करना शुरू किया। इसके लिए समाचार पत्र से अच्छा माध्यम और क्या हो सकता था। हिक्की के गजट की महारत ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मियों की निजी जिंदगी का भांडा-फोड़ करने में थी। अपने कृत्यों को सबके सामने लाया जाना उस समय के अंग्रेज अधिकारियों को नागवार गुजरा। उन्होंने हिक्की को रोकने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाने शुरू कर दिये। हिक्की ने जब वारेन हेस्टिंग्स की पत्नी और कुछ अन्य आला अफसरों के विरुद्ध व्यक्तिगत और तीखे प्रहार किये, तब उसे जीओपी (जनरल पोस्ट आफिस) के द्वारा समाचार पत्र भेजने की सुविधा से वंचित कर दिया गया। हिक्की ने इन सब के बावजूद अपना काम जारी रखा। उसने भ्रष्ट अंग्रेज अधिकारियों के खिलाफ कठोर और निंदात्मक भाषा का प्रयोग करना शुरू किया। 'बंगाल गजट' ने तत्कालीन गवरनर जनरल वारेन हेस्टिंग्स को भी नहीं छोड़ा। अपने पत्र के माध्यम से हेस्टिंग्स को अनेक नामों से हिक्की ने पुकारना शुरू किया, जैसे-Mr. Wronghead, The Dictator, The Great Moughal आदि।

अपने पत्र के एक अंक में हिक्की ने हेस्टिंग्स और उनकी पत्नी तथा मुख्य न्यायाधीश सर एलिज इम्पी के बारे में चरित्र हननकारी बातें लिखीं। इस वजह से उस पर मानहानि का मुकदमा चलाया गया। दोष सिद्ध होने पर उसे भारी जुर्माने चुकाने पड़े तथा जेल की सलाखों के पीछे भी बंद रहना पड़ा। इन सबके बावजूद भी हिक्की ने अपना काम जारी रखा। इस बीच यूरोपीय लोगों की अगुवाई में करीब चार सौ हथियारबंद लोगों की भीड़ ने हिक्की के प्रेस पर धावा बोल दिया। हिक्की से जमानत मांगी गई, जिसे वह नहीं दे सका और परिणामस्वरूप उसे जेल भेज दिया गया। उस पर चले मुकदमे में एक आरोप में एक साल की कैद और दो सौ रुपये जुर्माने की सजा हुई, वहीं दूसरे आरोप में मुख्य न्यायाधीश ने वारेन हेस्टिंग्स को पांच हजार रुपये क्षतिपूर्ति के रूप में चुकाने का आदेश पारित किया। इस तरह भारत में पत्रकारिता पर शासकीय अंकुश और दबाव उसके जन्म के साथ ही शुरू हो गया।

हिक्की की पत्रकारिता पर वारेन हेस्टिंग्स ने पहला प्रहार 14 नवंबर, 1780 को यह आदेश जारी करके किया- आम सूचना दी जाती है कि एक साप्ताहिक समाचार पत्र जिसका नाम बंगाल गजट आर कलकत्ता जनरल

एडवरटाइजर है, जो जे. ए. हिक्की द्वारा मुद्रित किया जाता है, के अंकों में निजी जिंदगी को कलंकित करने वाले अनेक अनुचित अंश पाये गये हैं, जो शांति भंग करने वाले हैं, अत: इसे जीओपी के माध्यम से प्रसारित होने की और अधिक अनुमति नहीं दी जा सकती। यह भारत में समाचार पत्र और शासन के बीच टकराव की प्रथम घटना थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में जिस जेम्स आगस्टस हिक्की को पत्रकारिता के प्रादुर्भाव का श्रेय जाता है, उसी के खाते में व्यवस्था से टकराने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए प्रताड़ना के रूप में कीमत चुकाने का सम्मान भी दर्ज है।

प्रकाशन बंद

अपने ऊपर लगाए गये जुर्मानों और मुकदमों से तंग आकर हिक्की अंतत: पूरी तरह से टूट गया। मार्च, 1782 में इस पत्र का प्रकाशन बंद हो गया। 'हिकीज गजट के 29 जनवरी, 1780 से 16 मार्च, 1782 तक प्रकाशित होने की पुष्टि होती है, यद्यपि इसके सभी अंक उपलब्ध नहीं हैं। राष्ट्रीय पुस्तकालय कोलकाता के दुर्लभ ग्रंथ संग्रह में केवल 29 जनवरी, 1780 और 5 जनवरी, 1782 के अंक उपलब्ध हैं। 'बंगाल गजट' का प्रकाशन बंद होने का कारण सिर्फ हिक्की के ऊपर लगाए गए आरोप ही नहीं थे, बल्कि इसके दूसरे भी वजह थे। 'बंगाल गजट के संरक्षक फिलिप फ्रांसिस को भी हिक्की के मुफलिसी के दिनों में ही इंग्लैंड वापस लौट जाना पड़ा। इस वजह से हिक्की बिल्कुल अकेला पड़ गया और उसके पत्र को सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा। गर्वनर जनरल हेस्टिंग्स ने न केवल पत्र के प्रकाशन के लिए उपयोग में लाए जाने वाले टाइप्स जब्त कर लिए बल्कि हिक्की के प्रेस को बंद भी करवा दिया।

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों के दौरान भारत में रह रहे कुछ यूरोपीयों के अंदर तत्कालीन ईस्ट इंडिया कंपनी की नीतियों के विरूद्ध गहन आक्रोश और असंतोष व्याप्त था। कलकत्ता इस विक्षोभ का केन्द्र बिन्दू बना। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप ही 'हिक्की गजट' का प्रकाशन हुआ और उसे देश का पहला समाचार पत्र होने का गौरव प्राप्त हुआ। इससे ही प्रेरणा लेकर भारत में अन्य प्रमुख स्थानों जैसे- मद्रास (अब चेन्नई), बंबई (अब मुंबई) और दिल्ली जैसे जगहों से भी अंग्रेजी के साथ-साथ कई अन्य भारतीय भाषाओं में भी समाचार पत्रों का प्रकाशन शुरू हुआ।

❐❐❐